लाला गोकलचन्द जी नाहर जौहरी
का
संक्षिप्त परिचय

---:o:---

इस खानदान के पूर्वजों का मूल निवास स्थान लाहौर था यहां से इस खानदान के पूर्व पुरुष पूज्य लाला निधूमल जी देहली आये। तबही से यह खानदान देहली में ही निवास कर रहा है। तथा आज भी लाहौरी के नाम से प्रसिद्ध है। लाला निधूमल जी के पुत्र लाला सोभूमल जी नामक हुवे। आपके पुत्र जीतमल जी के बुधसिंह जी तथा चुन्नीलाल जी नामक दो पुत्र हुवे। लाला बुधसिंह जी के शादीराम जी नामक एक पुत्र हुवे।

लाला शादीराम जी का सं० १८८५ में जन्म हुआ आपने छोटी उमर से ही अपने व्यापार में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था। आपने गोटे किनारी का काम शुरू किया इस व्यापार में आपको बहुत लाभ हुआ। आपका सं० १९३८ में स्वर्गवास हुआ। आपके २ पुत्र लाला भैरोंप्रसाद जी व लाला गोकलचन्द जी हुवे, लाला भैरोंप्रसाद जी का जन्म सं० १९१७ में हुआ।

लाला गोकलचंद जी का जन्म सं० १९२४ में हुआ, आप स्थानकवासी समाज में बड़े प्रतिष्ठित सज्जन हैं। आपने सं० १९४६ में जवाहरात का व्यापार शुरू किया। इस व्यापार में आपको काफी सफलता प्राप्त हुई। इस समय आपकी फर्म पर जवाहरात तथा किराये व्याज का व्यवसाय होता है।

आपकी धार्मिक भावना बढ़ी चढ़ी है आपने कई धार्मिक कार्यों में सहायतायें प्रदान की हैं। आपको सं० १९६२ में दिल्ली की जैन समाज ने जैन बारादरी का काम सुपुर्द किया। जिस समय यह काम सोंपा गया था, उस समय उस संस्था में १८) रु० मासिक

की आमदनी थी, आपने अपनी बुद्धिमानी से आमदनी बढ़ाकर करीब (१२००) र की करदी तथा देहली में बहुत विशाल स्थानक बनवाया इस स्थानक के लिये आप से भी चन्दा नहीं लिया। अब तक इस स्थानक में दो लाख रुपये लग चुके है मकान बन रहा है।

धार्मिक प्रेम के साथ ही साथ आपका विद्यादान की तरफ विशेष लक्ष्य र आपने सन् १९२० में महावीर जैन मिडिल स्कूल स्थापित किया। जो सन् १९२८ स्कूल हो गया। जिसका मासिक खर्च १२००) है। इस प्रकार आपके प्रय महावीर जैन लाइब्रेरी, महावीर जैन कन्या पाठशाला, महावीर जैन विद्यालय सार्वजनिक संस्थायें स्थापित हुईं। जिनसे देहली की जनता बहुत लाभ उठा रही है।

आपने सोनीपत मे वहां के स्थानकवासी भाईयों के लिये ११५००) रु० में मकान खरीद कर स्थानक स्थापित किया।

महावीर जैन लाइब्रेरी (महावीर भवन) चांदनी चौक में सन् १९२४ मे स्था की गई, पुस्तकालय मे करीब ५००० पुस्तकें और हस्त लिखित ग्रन्थ हैं। ४०० वर्ष प के हस्त लिखित शास्त्र हैं, और १०० साल तक के छापे के ग्रन्थ हैं। पुस्तकाल व्यवस्थापक सर्व श्रीमान लाला गोकलचन्द जी साहब की हार्दिक शुभ कामनाओं से १० वर्ष में बहुत उन्नति की है और आशा है कि आगामी को भी ऐसी ही उन्नति ह रहेगी।

—— ——:0: ——

तत्त्वार्थसूत्र-
जैनाऽऽगम-समन्वय

[जैनागम मूलपाठ, संस्कृतच्छाया, भाषाटीका सहित]

समन्वय कर्ता —

जैन धर्म दिवाकर

उपाध्याय मुनि श्री आत्मारामजी महाराज (पंजाबी)

तत्त्वार्थ भाषाकार—

प्रोफेसर चन्द्रशेखर शास्त्री M. O. Ph.

काव्य-साहित्य-तीर्थ-आचार्य, प्राच्यविद्यावारिधि, आयुर्वेदाचार्य,

भूतपूर्व प्रोफेसर काशी हिंदू विश्वविद्यालय

प्रकाशक—

लाला शादीराम गोकुलचंद जौहरी

चांदनी चौक, देहली.

मुद्रक—

पं० सीताराम भार्गव,

लक्ष्मी प्रेस, एस्प्लेनेड रोड, देहली.

प्रथम बार १०००	महावीर निर्वाण सम्वत् २४६१. सन् १९३४ इस्वी.	मूल्य सजिल्द २॥) बिना जिल्द २)

तत्त्वार्थ भाषाकार के दो शब्द

———:o:———
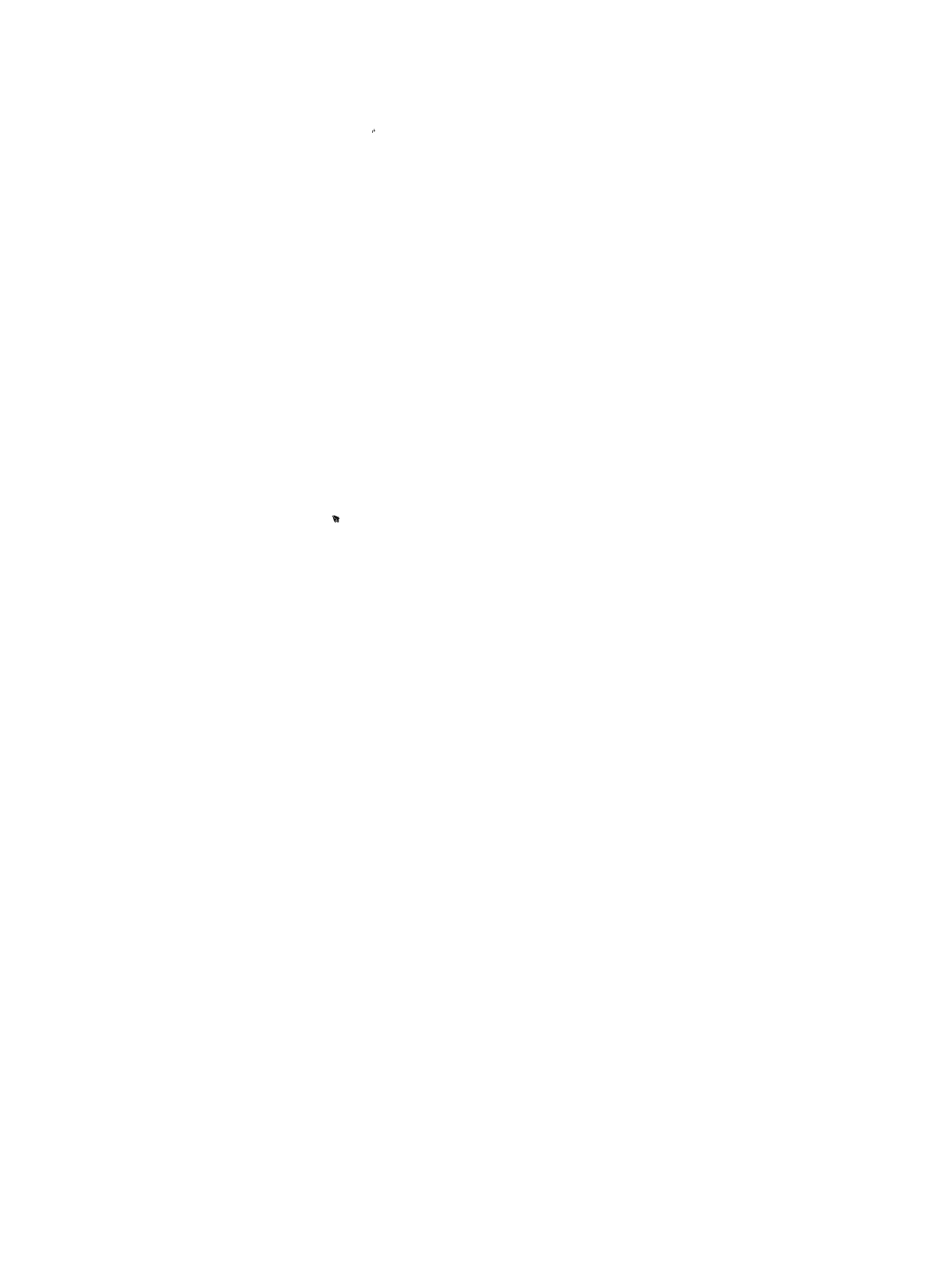
तत्त्वार्थसूत्र के सूत्रों की जैन आगम पाठों से तुलना करने वाले इस "तत्त्वार्थसूत्र जैनागमसमन्वय" ग्रन्थ को पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया जाता है। पूज्य उपाध्याय जी महाराज का यह प्रयत्न अत्यन्त प्रशंसनीय है। क्योंकि आगम ग्रन्थों से तत्त्वार्थसूत्र के समन्वय करने का यह सौभाग्य सब से प्रथम आप को ही प्राप्त हुआ है। आशा है कि आप के इस प्रयत्न से स्थानक वासियों तथा श्वेताम्बरों में तत्त्वार्थसूत्र का अधिक परिशीलन और दिगाम्बरों में जैन आगमों के अध्ययन एवं स्वाध्याय का अच्छा प्रचार हो जावेगा।

इस ग्रन्थ में इस बात के लिये विशेष प्रयत्न किया गया है कि यह विद्यार्थियों और स्वाध्याय प्रेमी दोनों के लिये उपयोगी हो सके। अतएव इसकी संस्कृत छाया में अत्यन्त सुगम सन्धियां ही दी गई हैं। प्रायः स्थल, बिना संधियों के ही रखे गये हैं।

मूल ग्रन्थ में ऊपर तत्त्वार्थसूत्र के सूत्रों को देकर उनके नीचे प्राकृत आगम प्रमाण दिये गये हैं। उनके नीचे उन पाठों की संस्कृत छाया, फिर उनकी भाषा टीका और अन्त में आवश्यक स्थानों पर सूत्र और आगम पाठों का समन्वय करने वाली संगति दी गई है।

जो आगम पाठ शीघ्रता के कारण मूल ग्रन्थ में छपते समय नहीं दिये जा सके थे, उनको परिशिष्ट नं० १ में दिया गया है। परिशिष्ट नं० २ में मेरा लिखा हुआ, तत्त्वार्थ सूत्र भाषा है। इसमें तत्त्वार्थसूत्र के सूत्रों का अर्थ सरल हिन्दी भाषा में सूत्रों के अंक दे २ कर इस प्रकार से लिखा गया है कि वह भी एक स्वतन्त्र ग्रंथ सा ही बन गया है। इसमें भाव खोलने वाले शब्द छोटे कोष्टक -( )- में और वाक्य पूरे करने वाले शब्द बड़े कोष्टक -[ ]- में दिये गये हैं। परिशिष्ट नं० ३ में दिगम्बर सूत्र पाठ और श्वेताम्बर सूत्रपाठों का अंतर दिखलाया गया है।

इस ग्रंथ की विषानुक्रमणिका भी एक विशेषता है। सूत्रों की विषयानुक्रमणिका में प्रायः सूत्रों को ही देने की एक परिपाटी है। किंतु यहां प्रत्येक अध्याय का मोटे २ विषयों में विभाग करके वही विषय विषयानुक्रमणिका और परिशिष्ट नं० २ दोनों स्थान में दिये गये हैं। इससे एक बड़ा लाभ यह भी है कि ग्रन्थ का विषय (Analysis) बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है।

अन्त में इतना निवेदन है कि इसमें कहीं मेरे प्रमादवश तथा कहीं प्रेस की कृपा से प्रूफ सम्बन्धी भूलें रह गई हैं। आशा है कि पाठक उनके लिये क्षमा करेंगे। इसके अतिरिक्त यदि कोई महानुभाव इस समन्वय के विषय में आगम पाठ संबंधी या और कोई विशेष सूचना दें तो उसका भी स्वागत किया जावेगा। इस प्रकार की त्रुटियों की सूचना मिलते रहने से उनको इस ग्रन्थ के अगले संस्करण में दूर करने का प्रयत्न किया जावेगा।

चन्द्रशेखर शास्त्री M. O. Ph.,
काव्य-साहित्य-तीर्थ-आचार्य,
प्राच्यविद्यावारिधि, आयुर्वेदाचार्य
भूतपूर्व प्रोफेसर बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी

देहली,
ता० १ नवम्बर सन् १९३४ इ०

प्रस्तावना

प्रिय सुज्ञपुरुषों ! इस अनादि संसार चक्र में परिभ्रमण करते हुए आत्मा को मनुष्य जन्म और आर्यत्व भाव की प्राप्ति हो जाने पर भी श्रुतिधर्म की प्राप्ति दुर्लभ ही है । इसके अतिरिक्त सम्यग्दर्शन की निर्भरता भी सम्यक् श्रुत पर ही है । अतएव उक्त सर्व साधन मिल जाने पर भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिये सम्यक् श्रुत का अध्ययन अवश्य करना चाहिये ।

अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि उक्त प्राप्ति के लिये अध्ययन करने योग्य कौन २ ग्रन्थ ऐसे हैं जिनको सम्यक् श्रुत का प्रतिपादक कहा जाना चाहिये । इसके लिये यह उत्तर अत्यन्त युक्तिपूर्ण है कि जिन ग्रंथों के प्रणेता सर्वज्ञ अथवा सर्वज्ञ सदृश महानुभाव हैं वह आगम ही अध्ययन करने योग्य हैं । क्योंकि जिसका वक्ता आप्त (सर्वज्ञ) होता है वही आगम सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में कारण होता है ।

यद्यपि सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति क्षायिक, क्षायोपशमिक अथवा औपशमिक भाव पर निर्भर है तथापि सम्यक् श्रुत को उसकी उत्पत्ति में कारण माना गया है । अतएव सिद्ध हुआ कि सम्यक् श्रुत का अध्ययन अवश्य करना चाहिये ।

श्वेताम्बर—स्थानकवासी सम्प्रदाय के अनुसार सम्यक् श्रुत का प्रतिपादन करने वाले ३२ आगम ही प्रमाणकोटि में माने जाते हैं, जो निम्न प्रकार हैं :—

११ अङ्ग, १२ उपाङ्ग, ४ मूल, ४ छेद और ३२ वां आवश्यक सूत्र ।

इनके अतिरिक्त इन आगमों के आधार से एवं इनके अविरुद्ध बने हुए ग्रंथों को न मानने में भी उक्त सम्प्रदाय आग्रहशील नहीं है ।

उक्त शास्त्रों के विषय में विशेष परिचय प्राप्त करने के लिये इस विषय के जैन ऐतिहासिक ग्रंथ देखने चाहियें ।

अनेक महानुभावों ने उक्त आगमों के आधार पर अनेक प्रकार के ग्रन्थों की रचना की है । जिनका अध्ययन जैन समाज में अत्यन्त आदर और पूज्य भाव से

किया जा रहा है इन लेखकों में से भी जिन महानुभावों ने आगमों में से आवश्यक विषयों का संग्रह कर जनता का परमोपकार किया है उनको अत्यन्त पूज्य दृष्टि से देखा जाता है और उनके ग्रंथ जैन समाज में अत्यन्त आदरणीय समझे जाते हैं। वर्तमान ग्रंथ तत्त्वार्थसूत्र (मोक्ष शास्त्र) की गणना उन्हीं आदरणीय ग्रंथों में है। इस ग्रंथ में इसके रचयिता ने आगमों में से आवश्यक विषयों का संग्रह कर जनता का परमोपकार किया है। इसमें तत्त्वों का संग्रह समयोपयोगी तथा सूक्ष्म दृष्टि से किया गया है। इसके कर्ता ने आगमों की मूल भाषा अर्द्ध मागधी से विषयों का संग्रह कर उनको संस्कृत भाषा के सूत्रों में प्रगट किया है। इससे जान पड़ता है कि उस समय संस्कृत भाषा में सूत्र रूप में लिखने की प्रथा विद्वानों में आदर पाने लगी थी। सूत्रकार ने अपने ग्रंथ में जैन तत्त्वों का दिग्दर्शन विद्वानों के भावानुसार संस्कृत भाषा में किया। प्रायः विद्वानों का मत है कि तत्त्वार्थसूत्र के रचयिता का समय विक्रम की प्रथम शताब्दी है। संस्कृत भाषा उस समय विकसित हो रही थी। जिस प्रकार इस ग्रंथ के कर्ता ने इस संग्रह में अपनी अनुपम प्रतिभा का परिचय दिया है, उसी प्रकार अनेक विद्वानों ने इसके ऊपर भिन्न २ टीकाओं की रचना करके जैन तत्त्वों का महत्व प्रगट किया है। और इस ग्रंथ को आगम के समान ही प्रमाण कोटि में स्थान देकर इसके महत्व को बहुत अधिक बढ़ा दिया है।

पूज्यपाद उमास्वाति जी महाराज ने जैन तत्त्वों को आगमों से संग्रह कर जैन और जैनेतर जनता का बड़ा भारी उपकार किया है।

यद्यपि इस सूत्र को संग्रह ही माना गया है, किन्तु यह ग्रन्थ सूत्रकार की काल्पनिक रचना नहीं है। कारण कि इस ग्रन्थ में जिन २ विषयों का संग्रह किया गया है उन सब का आगमों में स्पष्ट रूप से वर्णन है। अतः स्वाध्याय प्रेमियों को योग्य है कि वह भक्ति और श्रद्धा पूर्वक आगम तथा सूत्र दोनों का ही स्वाध्याय करें। जिससे भेद भाव मिटकर जैन समाज उन्नति के शिखर पर पहुँच जावे।

अब रहा यह प्रश्न कि क्या यह ग्रन्थ वास्तव में संग्रह ग्रंथ है? सो

आगमों का स्वाध्याय करने वाले तो इस ग्रन्थ को आगमों से संग्रह किया हुआ मानते ही हैं। इसके अतिरिक्त आचार्यवर्य हेमचन्द्रसूरि ने अपने बनाये हुए 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' नाम के व्याकरण में पूज्यपाद उमास्वाति जी महाराज को संग्रह कर्ताओं में उत्कृष्ट संग्रह कर्ता माना है। जैसा कि उन्होंने उक्त ग्रन्थ की स्वोपज्ञवृत्ति में कहा है।

उत्कृष्टेऽनूपेन २। २। ३९

उत्कृष्टार्थादनूपाभ्यां युक्ताद्द्वितीया स्यात्। अनुसिद्धसेनं कवयः। उपोमास्वातिं संगृहीतारः॥ ३९॥

स्वोपज्ञ बृहद्वृत्ति में भी उक्त आचार्यवर्य ने उक्त सूत्र की व्याख्या में कहा है:—

"उत्कृष्टेऽर्थे वर्तमानात् अनूपाभ्यां युक्ताद् गौणान्नाम्नो द्वितीया भवति। अनुसिद्धसेनं कवयः। अनुमल्लवादिनं तार्किकाः। उपोमास्वातिं संगृहीतारः। उपजिनभद्रक्षमाश्रमणं व्याख्यातारः। तस्मादन्ये हीना इत्यर्थः॥ ३९॥"

आचार्य हेमचन्द्र का समय विक्रम की १२ वीं शताब्दी सभी विद्वानों को मान्य है। आपके कथन से यह भलीप्रकार सिद्ध हो जाता है कि पूज्य पाद उमास्वाति संग्रह करने वालों में सबसे बढ़कर संग्रह करने वाले माने गये हैं। आगमों से संग्रह किया जाने से यह ग्रन्थ भी संग्रह ग्रंथ माना गया है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि भगवान् उमास्वाति ने संग्रह किस रूप में किया है। सो इसका उत्तर यह है कि इस ग्रन्थ में दो प्रकार से संग्रह किया गया है। कहीं पर तो शब्दशः संग्रह है, अर्थात् आगम के शब्दों को संस्कृत रूप दे दिया गया है और कहीं पर अर्थसंग्रह है, अर्थात् आगम के अर्थ को लक्ष्य में रखकर सूत्र की रचना की गई है। कहीं २ पर आगम में आये हुए विस्तृत विषयों को संक्षेप रूप से वर्णन किया गया है।

'आगमों से किस प्रकार इस शास्त्र का उद्धार किया गया है?' इस विषय को स्पष्ट करने के लिये ही वर्तमान ग्रन्थ विद्वत्समाज के सन्मुख रखा जा रहा है। इस का यह भी उद्देश्य है कि विद्वान् लोग आगमों के स्वाध्याय का लाभ उठा सकें।

इस ग्रंथ में सूत्रों का आगमों से समन्वय किया गया है। इसमें पहिले तत्त्वार्थ सूत्र का सूत्र, फिर आगम प्रमाण, उसके पश्चात् उस आगम पाठ की संस्कृत छाया और अंत में आगम पाठ की भाषा टीका दी गई है, जिससे पाठकवर्ग आगम और सूत्र के शब्द और अर्थों का भलीप्रकार ज्ञान प्राप्त कर सकें।

सूत्रों के सामान्य अर्थ इस ग्रंथ के अंत में परिशिष्ट नं० २ में दे दिये गये हैं।

यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस ग्रन्थ में दिये हुए आगम प्रमाण आगमोद्धार समिति द्वारा मुद्रित हुए आगमों से दिये गये हैं।

पाठकों के सन्मुख सूत्र के पाठ से आगमों के पाठ का यह समन्वय उपस्थित किया जाता है। यदि आगम ग्रंथ के कोई विद्वान समन्वय में कहीं त्रुटि समझें तो उसको स्वयं समन्वय कर पूर्ण पाठ से अवगत करने की कृपा करें। क्योंकि—'सर्वारम्भाहि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः।'

यह ग्रन्थ इतना महत्त्वपूर्ण है कि प्रत्येक व्यक्ति के स्वाध्याय करने योग्य है। वास्तव में यह तत्त्वार्थसूत्र आगमग्रन्थों की कुंजी है। अतः जिन २ विद्यालयों, हाईस्कूलों और कालेजों में तत्त्वार्थसूत्र पाठ्य क्रम में नियत किया हुआ है उन २ संस्थाओं के अध्यक्षों को योग्य है कि वह सूत्रों के साथ ही साथ बालकों को आगम के समन्वय पाठों का भी अध्ययन करावें। जिससे उन बालकों को आगमों का भी भली भांति ज्ञान हो जावे।

कुछ लोग यह शंका भी कर सकते हैं कि 'संभव है कि श्वेताम्बर आगमों में तत्त्वार्थसूत्र के इन सूत्रों की ही व्याख्या की गई हो।' सो इस विषय में यह बात स्मरण रखने की है कि जैन इतिहास के अन्वेषण से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि आगम ग्रन्थों का अस्तित्त्व उमास्वाति जी महाराज से भी पहिले था। इसके अतिरिक्त तत्त्वार्थसूत्र और जैन आगमों का अध्ययन करने से यह स्वयं ही प्रगट हो जावेगा कि कौन किस

का अनुकरण है । अतएव सिद्ध हुआ कि आगमों का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये, जिस से सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की प्राप्ति होने पर निर्वाणपद की प्राप्ति हो सके ।

श्री श्री श्री १००८ आचार्यवर्य श्री पूज्य पाद मोतीराम जी महाराज, उनके शिष्य श्री श्री श्री १००८ गणावच्छेदक तथा स्थविर पद विभूषित श्री गणपति राय जी महाराज, उनके शिष्य श्री श्री श्री १०८ गणावच्छेदक श्री जयराम दास जी महाराज और उनके शिष्य श्री श्री श्री १०८ प्रवर्तक पद विभूषित श्री शालिग्राम जी महाराज की ही कृपा से उन का शिष्य मैं इस महत्त्वपूर्ण कार्य को पूर्ण कर सका हूँ ।

गुरुचरणरज सेवी —

जैनमुनि-उपाध्याय-आत्माराम.

आवश्यक सूचना

पाठकों से सविनय निवेदन है कि सम्पादक जी की रुग्णावस्था के कारण प्रूफ आदि के ठीक न देखने से, कतिपय स्थलों में त्रुटियें रहगई हैं, अतः यदि सुज्ञ पाठकों द्वारा हमें सूचनाऐं मिलती रहें तो हम द्वितीय संस्करण में ठीक करने की चेष्टा करेंगे।

तथा--यदि कोई आगमाभ्यासी आगम पाठों से और भी सुचारु रूप से समन्वय करने की कृपा करें, तो हमको सूचित करदें जैसे कि--तत्त्वार्थसूत्र के ५ अध्याय के २६ वाँ सूत्र, "एगत्तेण पुहत्तेण खंधाय परमाणु य—(एकत्वेन पृथकत्वेन स्कन्धाश्चपरमाणवश्च) उत्तराध्ययन सूत्र अ० ३६ गाथा ११--इस पाठ से सम्बन्ध रखता है। इसी प्रकार की अन्य सूचनाओं से भी सूचित करें, ताकि उन पर आवश्यक ध्यान दिया जा सके।

ग्रन्थ के अंतिम भाग में तत्त्वार्थ सूत्र भाषा के नाम से परिशिष्ट दिया गया है। उसमें तत्त्वार्थ के मूलसूत्रों का अर्थ किया गया है। परन्तु सत्वरतादि कारणों से अर्थ सम्बन्धी कतिपय स्थल संदिग्ध एवं अस्पष्ट से रह गये हैं। अतः वाचक महोदय उन २ स्थलों को सावधानी से पढ़ें।

समन्वयकर्ता ने जो दिगम्बर सूत्र पाठों के साथ समन्वय किया है, वह उनके अपने उदार भावों का संसूचक है। जिससे दिगम्बर विद्वान भी आगमों के स्वाध्याय से लाभ उठायें और परस्पर प्रेमभाव सम्पादन कर जैन धर्म का संगठित शक्ति से प्रचार करें। जिस से जनता जैनधर्म के तत्त्वों को भली भाँति धारण कर सके।

प्रकाशक.

श्री तत्त्वार्थसूत्रजैनाऽऽगमसमन्वय

की

विषयानुक्रमणिका

शुभ-संवाद

अतीव हर्ष के साथ, सूचित किया जाता है कि—विक्रमाब्द १९९१ कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी—चातुर्मास्य समाप्ति के दिन महावीर भवन में, प्राकृत साहित्य एवं जैनागमों के प्रतिष्ठा-प्राप्त विद्वान्

उपाध्याय जैनमुनि श्री आत्मारामजी महाराज (पंजाबी),

श्री श्वेताम्बर स्थानक बासी जैन संघ देहली द्वारा

'जैन धर्म दिवाकर'

पद से विभूषित किये गये हैं।

निवेदक—

शादीराम गोकुलचंद जौहरी

धन्यवाद

[१] २५०) रु० के मूल्य की पुस्तकों के ग्राहक श्रीमान् सेठ छोटेलाल जी पहलावत, अलवर।

[२] ५०० प्रति के कागज का मूल्य श्रीमान् लाला कुन्दनलाल जी पारख सुपुत्र लाला शादीराम जी मालिक फर्म मानसिंह जी मोतीराम जी जौहरी मालीवाड़ा देहली ने दिया।

[३] शेष सम्पूर्ण व्यय श्री महावीर जैन भवन चांदनी चौक देहली के कोष में से दिया गया है।

भवदीय—

गोकुलचंद नाहर।

॥ नमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स ॥

जैनमुनि—उपाध्याय—श्रीमदात्माराम—महाराज—
संगृहीतः

तत्त्वार्थसूत्र-
जैनाऽऽगमसमन्वयः ।

प्रथमाध्यायः ।

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि† मोक्षमार्गः ।

तत्वार्थसूत्र अध्याय १, सूत्र १,

नादंसणिस्स नाणं, नाणेण विणा न हुन्ति चरणगुणा ।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं ॥

उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २८ गाथा ३०

तिविधे सम्मे पण्णत्ते, तं जहा—नाणसम्मे दंसणसम्मे चरित्तसम्मे ।

स्थानाङ्गसूत्र स्था० ३ उद्देश ४ सूत्र १९४.

---

† सम्मदंसणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-णिसग्गसम्मद्दंसणे चेव अभिगमसम्मद्दंसणे चेव । णिसग्गसम्मद्दंसणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा - पडिवाई चेव अपडिवाई चेव । अभिगमसम्मद्दंसणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा — पडिवाई चेव अपडिवाई चेव ।

स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान २ उद्दे० १ सूत्र ७०.

मोक्खमग्गगइं तच्चं, सुणेह जिणभासियं ।
चउकारणसंजुत्तं, नाणदंसणलक्खणं ॥
नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
एस मग्गु त्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥
नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
एयं मग्गमणुप्पत्ता, जीवा गच्छन्ति सोग्गइं ॥

उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २८ गाथा १-३

दुविहे नाणे पण्णत्ते, तं जहा-पच्चक्खे चेव परोक्खे चेव १ । पच्चक्खे नाणे दुविहे पन्नत्ते, तं जहा-केवलनाणे चेव णोकेवलनाणे चेव २ । केवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-भवत्थकेवलनाणे चेव सिद्धकेवलणाणे चेव ३ । भवत्थकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-सजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव, अजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव ४ । सजोगिभवत्थकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-पढमसमयसजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव, अपढमसमयसजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव ५, अहवा चरिमसमयसजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव अचरिमसमयसजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव ६ । एवं अजोगिभवत्थकेवलनाणेऽवि ७-८ । सिद्धकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-अणंतरसिद्धकेवलणाणे चेव परंपरसिद्धकेवलणाणे चेव ९ । अणंतरसिद्धकेवलनाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-एक्काणंतरसिद्धकेवलणाणे अणेक्काणंतरसिद्धकेवलणाणे चेव १० । परंपरसिद्धकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-एक्कपरंपरसिद्धकेवलणाणे चेव अणेक्कपरंपरसिद्धकेवलणाणे चेव ११ । णोकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-ओहिणाणे चेव मणपज्जवणाणे चेव १२ । ओहिणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-भवपच्चइए चेव खओवसमिए चेव १३ । दोण्हं भवपच्चइए पन्नत्ते, तं जहा-देवाणं चेव नेरइयाणं चेव १४ । दोण्हं खओवसमिए पण्णत्ते, तं जहा-मणुस्साणं चेव पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव १५ । मणपज्जवणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-उज्जुमति चेव विउलमति चेव १६ । परोक्खे णाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-आभिणिबोहियणाणे चेव सुयनाणे चेव १७ । आभिणिबोहियणाणे दुविहे पण्णत्ते,

छाया— नादर्शिनिनो ज्ञानं, ज्ञानेन विना न भवन्ति चारित्रगुणाः ।
अगुणिनो नास्ति मोक्षः, नास्त्यमोक्षस्य निर्वाणम् ॥
त्रिविधं सम्यग् प्रज्ञप्तं तद्यथा ज्ञानसम्यग्
दर्शनसम्यक् चारित्रसम्यग् ।
मोक्षमार्गगतिं तथ्यां, शृणुत जिनभाषिताम् ।
चतुःकारणसंयुक्तां, ज्ञानदर्शनलक्षणाम् ॥
ज्ञानं च दर्शनं चैव, चारित्रं च तपस्तथा ।
एष मार्ग इति प्रज्ञप्तः, जिनैर्वरदर्शिभिः ॥
ज्ञानं च दर्शनं चैव, चारित्रं च तपस्तथा ।
एतं मार्गमनुप्राप्ताः, जीवा गच्छन्ति सुगतिं ॥

तं जहा – सुयनिस्सिए चेव असुयनिस्सिए चेव १८ । सुयनिस्सिए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–अत्थोग्गहे चेव वंजणोग्गहे चेव १९ । असुयनिस्सितेऽवि एमेव २० । सुयनाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा – अंगपविट्ठे चेव अंगबाहिरे चेव २१ । अंगबाहिरे दुविहे पण्णत्ते. तं जहा – आवस्सए चेव आवस्सयवइरित्ते चेव २२ । आवस्सयवतिरित्ते दुविहे पण्णत्ते, तं जहा – कालिए चेव उक्कालिए चेव २३ ॥

स्थानाङ्गसूत्र० स्थान २, उद्दे० १ सूत्र ७१.

दुविहे धम्मे पण्णत्ते, तं जहा – सुयधम्मे चेव चरित्तधम्मे चेव । सुयधम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–सुत्तसुयधम्मे चेव अत्थसुयधम्मे चेव । चरित्तधम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा – आगारचरित्तधम्मे चेव अणगारचरित्तधम्मे चेव ।

दुविहे संजमे पण्णत्ते,* तं जहा – सरागसंजमे चेव वीतरागसंजमे चेव । सराग-संजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा – सुहुमसंपरायसरागसंजमे चेव बादरसंपरायसरागसंजमे चेव । सुहुमसंपरायसरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–पढमसमयसुहुमसंपरायसरागसंजमे चेव अपढमसमयसु० । अथवा चरमसमयसु० अचरिमसमयसु० । अहवा सुहुमसंपराय-सरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा – संकिलेसमाणए चेव विसुज्झमाणए चेव । बादर-

* 'अणगारचरित्तधम्मे दुविहे पण्णत्ते,' इत्यपि पाठान्तरम् ।

भाषाटीका — सम्यग्दर्शन के बिना सम्यग्ज्ञान होना असम्भव है, ज्ञान के बिना चारित्र के गुण प्रगट नहीं हो सकते, चारित्रगुण हीन का कर्मों से मोक्ष नहीं हो सकता और बिना कर्मों का मोक्ष (छुटकारा) हुए निर्वाण होना असम्भव है।

सम्यक् तीन प्रकार का कहा गया है। ज्ञानसम्यक्, दर्शनसम्यक् और चारित्र-सम्यक्।

जिनेन्द्र भगवान् की कही हुई वास्तविक मोक्ष मार्ग की गति को सुनो। वह गति निम्नलिखित चार कारणों से युक्त है और ज्ञान तथा दर्शन उसके लक्षण हैं।

लोकालोक को देखने वाले जिन भगवान् ने ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप यह चार कारण उस मोक्ष मार्ग के बतलाये हैं।

उन ज्ञान, दर्शन, चारित्र, और तप के मार्ग को प्राप्त करने वाले जीव उत्कृष्ट गति (मोक्ष) को प्राप्त करते हैं।

संपरायसरागसंजमे दुविहे पएणत्ते, तं जहा—पढमसमयबादर० अपढमसमयबादरसं०। अहवा चरिमसमय० अचरिमसमय०। अहवा बायरसंपरायसरागसंजमे दुविहे पएणत्ते, तं जहा—पडिवाति चेव अपडिवाति चेव। वीयरागसंजमे दुविहे पएणत्ते, तं जहा—उवसंतकसायवीयरागसंजमे चेव खीणकसायवीयरागसंजमे चेव। उवसंतकसायवीयराग-संजमे दुविहे पएणत्ते, तं जहा—पढमसमयउवसंतकसायवीतरागसंजमे चेव अपढमसमय-उव०। अहवा चरिमसमय० अचरिमसमय०। खीणकसायवीतरागसंजमे दुविहे पएणत्ते, तं जहा—छउमत्थखीणकसायवीयरागसंजमे चेव केवलिखीणकसायवीयरागसंजमे चेव। छउमत्थखीणकसायवीयरागसंजमे दुविहे पएणत्ते, तं जहा—सयंबुद्धछउमत्थखीणकषाय० बुद्धबोहियछउमत्थ०। सयंबुद्धछउमत्थ० दुविहे पएणत्ते, तं जहा—पढमसमय० अपढम-समय०। अथवा चरिमसमय० अचरिमसमय०। केवलिखीणकसायवीतरागसंजमे दुविहे पएणत्ते, तं जहा—सजोगिकेवलिखीणकसाय० अजोगिकेवलिखीणकसायवीयराग०। सजोगिकेवलिखीणकसायसंजमे दुविहे पएणत्ते, तं जहा—पढमसमय० अपढमसमय०। अहवा चरिमसमय० अचरिमसमय०। अजोगिकेवलिखीणकसाय० संजमे दुविहे पएणत्ते, तं जहा—पढमसमय० अपढमसमय०। अहवा चरिमसमय० अचरिमसमय०॥

स्थानांगसूत्र स्थान २ उद्दे० १ सूत्र ७२.

तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥

त० सू० अ० १, सू० २

तहियाणं तु भावाणं, सब्भावे उवएसणं ।
भावेणं सद्दहन्तस्स, सम्मतं तं वियाहियं ॥

उत्तरा० अ० २८ गाथा १५

छाया— तथ्यानां तु भावानां, सद्भाव उपदेशनम् ।
भावेन श्रद्दधतः सम्यक्त्वं तद् व्याख्यातम् ॥

भाषा टीका — वास्तविक भावों के अस्तित्व के उपदेश देने तथा उसी भाव से उसका श्रद्धान करने को सम्यक्त्व कहा गया है।

संगति — जीव, अजीव आदि तत्त्वों के उसी स्वरूप का उपदेश देना जो वास्तविक है और जिसका जैन शास्त्रों में वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त जिस रूप से उसको जानकर उनका उपदेश किया जाता है उसी भाव से उनमें श्रद्धान रखना सम्यग्दर्शन है।

तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥

त० सू० अ० १, सू० ३

सम्मद्दंसणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—णिसग्गसम्मद्दंसणे चेव अभिगमसम्मद्दंसणे चेव ॥

स्थानाङ्ग सूत्र स्थान २, उद्देश १, सूत्र ७०

छाया— सम्यग्दर्शनं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—निसर्गसम्यग्दर्शनं चैव अभिगमसम्यग्दर्शनं चैव ॥

भाषा टीका — वह सम्यग्दर्शन दो प्रकार का होता है, एक निसर्ग सम्यग्दर्शन दूसरा अभिगम सम्यग्दर्शन।

संगति — निसर्ग शब्द का अर्थ स्वभाव है, और अभिगम शब्द का अर्थ ज्ञान है। जो सम्यग्दर्शन पिछले भव अथवा उत्तम संस्कार आदि के स्वभाव से स्वयं ही आत्मा में प्रगट हो उसे निसर्ग सम्यग्दर्शन कहते हैं, किन्तु जो सम्यग्दर्शन आचार्य,

गुरु, उत्तम उपदेश देने वाले आदि के द्वारा ज्ञान प्राप्त करके हो उसे अभिगम अथवा अधिगम सम्यग्दर्शन कहते हैं।

जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ॥

अ० १, सू० ४

नव सब्भावपयत्था पराणत्ते, तं जहा-जीवा अजीवा पुराणं पावो आसवो संवरो निज्जरा बंधो मोक्खो स्थानाङ्ग स्थान ९, सूत्र ६६५

छाया— नव सद्भावपदार्थाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा जीवाः अजीवाः पुण्यं पापः आस्रवः संवरः निर्जरा बन्धः मोक्षः ॥

भाषा टीका—सद्भाव पदार्थ नौ प्रकार के बतलाये गये हैं, और वह इस प्रकार हैं—जीव, अजीव, पुराय, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष।

संगति—'तत्त्व' शब्द का मूल 'तत्' है। जिसका अर्थ वह होता है। अतएव 'तत् पना' अथवा 'वह पना' 'तत्त्व' है। दूसरे शब्दों में तत्त्व शब्द का अर्थ सद्भाव अथवा अस्तित्व है। संक्षेप से सात तत्त्व रूप से वर्णन किये जाने में यह तत्त्व कहलाते हैं और विशेष रूप से वर्णन करने में यह पदार्थ कहलाते हैं। उस समय आस्रव और बन्ध से पाप और पुराय प्रथक् कर लिये जाते हैं। संक्षेप विविक्षा में पाप और पुराय का आस्रव और बन्ध में अन्तर्भाव कर दिया गया है। स्थानाङ्ग में विस्तृत कथन होने से नौ पदार्थों का वर्णन किया गया है। किन्तु सूत्रों में संग्रह नय के आश्रित होकर ही संक्षेप से कथन किया गया है। अत: यहां सात तत्वों का वर्णन है।

नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ॥

अ० १, सू० ५

जत्थ य जं जाणेज्जा निक्खेवं निक्खिवे निरवसेसं।
जत्थवि अ न जाणेज्जा चउक्कगं निक्खिवे तत्थ ॥

आवस्सयं चउव्विहं पराणत्ते, तं जहा—नामावस्सयं ठवणावस्सयं दव्वावस्सयं भावावस्सयं ॥ अनुयोगद्वार सूत्र, सूत्र ८

छाया— यत्र च यं जानीयात् निक्षेपं निक्षिपेत् निरवशेषं ।
यत्रापि च न जानीयात् चतुष्कं निक्षिपेत् तत्र ॥
आवश्यकं चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—नामावश्यकं,
स्थापनावश्यकं, द्रव्यावश्यकं, भावावश्यकं ।

भाषा टीका — जिसका ज्ञान हो उसको पूर्ण रूप से निक्षेप के रूप में रक्खे। किन्तु यदि किसी वस्तु का ज्ञान न हो तो उसको भी निम्नलिखित चार प्रकार से वर्णन करे — आवश्यक चार प्रकार के कहे गये हैं — नामावश्यक, स्थापनावश्यक, द्रव्यावश्यक और भावावश्यक।

संगति — निक्षेप 'रखने' अथवा 'उपस्थित करने' को कहते हैं। जैन शास्त्रों में वस्तु तत्त्व को शब्दों में रखने, उपस्थित करने अथवा वर्णन करने के चार ढंग बतलाये गये हैं। जिन्हें निक्षेप कहते हैं। अनुयोग द्वार सूत्र का इतना विशेष कथन है कि जिसको जाने उसका भी निक्षेप रूप में वर्णन करे और जिसको न जाने उसको जितना भी समझे कम से कम उतने का अवश्य चार निक्षेप रूप में वर्णन करे। क्यों कि इस प्रकार वस्तुतत्त्व अच्छा समझ में आ जाता है।

प्रमाणनयैरधिगमः ॥

अ० १, सू० ६

दव्वाण सव्वभावा, सव्वपमाणेहिं जस्स उवलद्धा ।
सव्वाहिं नयविहीहिं, वित्थाररुइ त्ति नायव्वो ॥

उत्तराध्ययन अ० २८ गा० २४

छाया— द्रव्याणां सर्वभावाः, सर्वप्रमाणैर्यस्योपलब्धाः ।
सर्वैर्नयविधिभिः विस्ताररुचिरिति ज्ञातव्यः ॥

भाषा टीका — जिसको द्रव्यों के सब भाव सब प्रमाणों और सब नयों से प्राप्त (ज्ञात) हो चुके हैं, [उसको] विस्तार रुचि जानना चाहिये।

संगति — सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रय तथा जीव आदि सात तत्वों को चारों निक्षेपों के अतिरिक्त प्रमाण और नय भी जान सकते हैं। किन्तु प्रमाण में समग्र कथन

होता है और नयों में विशेष कथन होता है। एक २ नय में एक २ अपेक्षा से बहुत विशेष कथन किया जाता है। अत: प्रमाण से विचार करने के उपरान्त विस्तार से विचार करने के लिये नयों के सब भेदों से विचार करे। क्योंकि प्रमाण वस्तु के सर्वदेश का सामान्य वर्णन करता है और नय वस्तु के एक देश का विशेष वर्णन करती है।

अब रत्नत्रय तथा सात तत्वों पर विचार करने का एक और प्रकार बतलाते हैं—

निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः ॥

अ० १, सू० ७

निद्दे से पुरिसे कारण कहिं केसु कालं कइविहं ॥

अनुयोगद्वार सूत्र सू० १५१

छाया— निर्देशः पुरुषः कारणं कुत्र केषु कालः कतिविधं ।

भाषा टीका— निर्देश, पुरुष, कारण, कहाँ (किस स्थान में), किनमें, काल, कितनी प्रकार का।

संगति— सूत्र में निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान का वर्णन है, अनुयोगद्वार सूत्र में पृष्ठ २६४ में इस विषय का बहुत अधिक विस्तार से वर्णन किया गया है, यहां तो केवल थोड़े से नाम छांट लिये गये हैं, किन्तु तो भी इनमें और उनमें विशेष भेद नहीं है। निर्देश तो दोनों में है ही, स्वामित्व और पुरुष में, साधन और कारण में, अधिकरण और कहाँ में, स्थिति और काल में तथा विधान और कितनी प्रकार में कोई विशेष अन्तर न होकर केवल शाब्दिक अंतर है। तो भी अनुयोग के द्वार वाक्यों में 'किनमें' शब्द अधिक है। क्योंकि आगम में विशेष कथन और सूत्र में सूक्ष्मकथन होता है।

सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च ॥

अ० १, सू० ८

से किं तं अणुगमे ? नवविहे पण्णत्ते, तं जहा—संतपयपरूवणया १ दव्वपमाणं च २ खित्त ३ फुसणा य ४ कालो य ५ अंतरं ६ भाग ७ भाव ८ अप्पाबहुं चेव ।

अनुयोग द्वार सू० ८०

छाया— अथ किं तत् अनुगमः? नवविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—सत्पदप्ररूपणता द्रव्यप्रमाणं च क्षेत्रं स्पर्शनं च कालश्च अन्तरं भागः भावः अल्पबहुत्वं चैव।

प्रश्न — अनुगम (ज्ञान होने का प्रकार) क्या है?

उत्तर — वह नौ प्रकार का कहा गया है—

सत्पदप्ररूपणता, द्रव्यप्रमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाग, भाव और अल्पबहुत्व।

संगति — सत् और सत्पदप्ररूपणता में भेद नहीं है। द्रव्यप्रमाण और संख्या भी प्रथक् भाव वाले नहीं हैं। तत्वार्थसूत्र के शेष पद आगम में वैसे के वैसे ही हैं। आगम वाक्य में भाग अधिक है, जिसका सूत्रकार ने संक्षेप से वर्णन करने के कारण द्रव्य प्रमाण के साथ संख्या में अन्तर्भाव किया है। इस प्रकार आगम तथा सूत्र दोनों में कुछ भी भेद नहीं है।

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥

अ० १ सूत्र ६

पंचविहे णाणे पण्णत्ते, तं जहा—आभिणिबोहियणाणे सुयनाणे ओहिणाणे मणपज्जवणाणे केवलणाणे ॥

स्थानांगसूत्र स्थान ५ उद्दे० ३ सू० ४६३
अनुयोगद्वार सूत्र १
नन्दिसूत्र १
भगवतीसूत्र शतक ८ उद्देश २ सूत्र ३१८

छाया— पञ्चविधं ज्ञानं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—आभिनिबोधिकज्ञानं श्रुतज्ञानं अवधिज्ञानं मनःपर्ययज्ञानं केवलज्ञानम् ॥

भाषा टीका — ज्ञान पांच प्रकार का कहा गया है-आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान और केवलज्ञान।

संगति — इस आगम वाक्य तथा सूत्र में मतिज्ञान के अतिरिक्त और कोई अन्तर नहीं है। सो यह अन्तर भी कुछ अन्तर नहीं है। क्योंकि तत्वार्थसूत्र के इसी

अध्याय के तेरहवें सूत्र में मति का नाम अभिनिबोध भी माना गया है। अतएव अभिनिबोध सम्बन्धी ज्ञान स्वभाव से ही आभिनिबोधिक ज्ञान हुआ।

तत्प्रमाणे।

अ० १, सू० १०

आद्ये परोक्षम्।

अ० १ सू० ११

प्रत्यक्षमन्यत्।

अ० १ सू० १२

से किं तं जीवगुणप्पमाणे?, तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—णाणगुणप्पमाणे दंसणगुणप्पमाणे—चरित्तगुणप्पमाणे।

अनुयोगद्वारसूत्र १४४

दुविहे नाणे पण्णत्तं, तं जहा—पच्चक्खे चेव परोक्खे चेव १, पच्चक्खे नाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—केवलणाणे चेव णोकेवलणाणे चेव २,............ णोकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—ओहिणाणे चेव मणपज्जवणाणे चेव,..............परोक्खे णाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—आभिणिबोहियणाणे चेव, सुयणाणे चेव।

स्थानांगसूत्र स्थान २ उद्दे० १, सू० ७१.

छाया— अथ किं तत् जीवगुणप्रमाणम्? त्रिविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—ज्ञानगुणप्रमाणं दर्शनगुणप्रमाणं चारित्रगुणप्रमाणम्॥

द्विविधं ज्ञानं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—प्रत्यक्षं चैव परोक्षञ्चैव। प्रत्यक्षं ज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—केवलज्ञानञ्चैव नोकेवलज्ञानञ्चैव। नोकेवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—अवधिज्ञानं चैव मनःपर्ययज्ञानञ्चैव। परोक्षं ज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—आभिनिबोधिकज्ञानं चैव श्रुतज्ञानं चैव॥

प्रश्न—जीव का गुण प्रमाण क्या है?

उत्तर—वह तीन प्रकार का है, ज्ञानगुणप्रमाण, दर्शनगुणप्रमाण, और चारित्रगुणप्रमाण।

ज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—प्रत्यक्ष और परोक्ष।

प्रत्यक्ष ज्ञान भी दो प्रकार का कहा गया है—केवल ज्ञान और नोकेवलज्ञान। नोकेवलज्ञान भी दो प्रकार है—अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान।

परोक्षज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान।

संगति—सूत्रकार की अपेक्षा आगमों में सदा ही विस्तार से वर्णन किया गया है। सूत्रकार केवल ज्ञान को ही प्रमाण मानते हैं। किन्तु आगम ने ज्ञान, दर्शन और चारित्र तीनों को ही प्रथक् २ प्रमाण माना है। अनेकान्त नय को मानने वाले जैनधर्म की यह कैसी उत्तम सुन्दरता है। प्रमाण रूप में ज्ञान के भेदों में आगम और सूत्र में कुछ भी अन्तर नहीं है। आगम में एक सुन्दरता विशेष है, वह हैं प्रत्यक्ष के दो भेद—केवलज्ञान और नोकेवलज्ञान। क्योंकि जैन शास्त्र के अनुसार निश्चय नय से तो केवलज्ञान ही प्रत्यक्ष हो सकता है। अवधि और मनः पर्ययज्ञान वास्तव में नोकेवलज्ञान ही हैं। अतः यह निश्चयनय से नहीं, वरन् सद्भूत व्यवहार नय से प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। प्रत्यक्ष के क्षेत्र को विधर्मियों की दृष्टि से सदा बढ़ाने की आवश्यकता पड़ती रही। यहां तक कि कालान्तर में परोक्षज्ञान मति ज्ञान के एक रूप को भी व्यवहारनय से संव्यवहारिक प्रत्यक्ष कह कर मानना पड़ा। अतः यहां सूत्रकार और आगम में कुछ भी अन्तर नहीं है।

"मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्" ॥ १. १३.

ईहाअपोहवीमंसामग्गणा य गवेसणा।
सन्ना सई मई पन्ना सव्वं आभिणिबोहिअं ॥

नन्दिसूत्र प्रकरण मतिज्ञानगाथा ८०

छाया— ईहाऽपोहविमर्शमार्गणाः च गवेषणा।
संज्ञा स्मृतिः मतिः प्रज्ञा सर्वं आभिनिबोधिकम् ॥

भाषा टीका—ईहा, अपोह, विमर्श, मार्गणा, गवेषणा, संज्ञा, स्मृति, मति, और प्रज्ञा यह सब आभिनिबोधिक ज्ञान ही हैं।

संगति—आगम वाक्य और सूत्र में मति, स्मृति, संज्ञा, और अभिनिबोध तो दोनों

जगह मिलते हैं। आगम के शेष वाक्यों का स्वरूप एक प्रकार के विचार करने का है। क्यों कि 'ईहनमीहा' जानने की विशेष इच्छा करना ईहा, विशेष तलाश करना अपोह, विशेष विचारना विमर्श तथा विशेष तलाश करना मार्गणा कहलाता है। किसी वस्तु के ऊपर 'चिन्तनम्' चिन्ता करना-विचार करना चिन्ता कहलाता है। अतएव जान पड़ता है कि सूत्रकार ने चिंता पद से उपरोक्त सब शब्दों को प्रगट किया है। आगमवाक्य में विशेष कथन होने के कारण प्रज्ञा शब्द अधिक है, किन्तु वह भी मति का ही पर्याय वाची है।

"तदिन्द्रियाऽनिन्द्रियनिमित्तम् ॥" १. १४.

से किं तं पच्चक्खं ? पच्चक्खं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—इन्दियपच्चक्खं नोइन्दियपच्चक्खं च।

नन्दिसूत्र ३,
अनुयोगद्वार १४४,

छाया— अथ किं तत् प्रत्यक्षं ? प्रत्यक्षं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—इन्द्रियप्रत्यक्षं नोइन्द्रियप्रत्यक्षञ्च ॥

प्रश्न—वह प्रत्यक्ष क्या है ?

उत्तर—वह प्रत्यक्ष दो प्रकार का है—इन्द्रियप्रत्यक्ष और नोइन्द्रियप्रत्यक्ष।

संगति—सूत्र में मतिज्ञान के उत्पन्न होने के कारण बतलाये गये हैं कि वह मतिज्ञान इन्द्रिय (पांच) और अनिन्द्रिय (मन) से उत्पन्न होता है। फिर यही छै कारण मतिज्ञान के ३३६ भेदों में गिन लिये गये हैं। आगम ने कारण विवक्षा न देकर भेदविवक्षा से वही कथन किया है। यह ऊपर दिखला दिया गया है कि मतिज्ञान को (सांव्यवहारिक) प्रत्यक्ष भी कहा जाने लगा था।

"अवग्रहेहावायधारणाः ॥" १. १५.

से किं तं सुअनिस्सिअं ? चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा—"उग्गह १ ईहा २ अवाओ ३ धारणा ४"

नन्दिसूत्र २७

छाया— अथ किं तत् श्रुतनिःसृतम् ? चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—अवग्रहः ईहा अवायः धारणा ।

भाषा टीका—वह श्रुत निःसृत क्या है ? वह चार प्रकार का कहा गया है—अवग्रह, ईहा, अवाय, और धारणा ।

संगति—यहां इन चारों का ज्ञान होने की अपेक्षा से मतिज्ञान को श्रुतनिःसृत अर्थात् सुन कर निकला हुआ अथवा शास्त्र सुन कर जाना हुआ माना गया है ।

"बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम्" ।

१. १६.

छव्विहा उग्गहमती पराणत्ता, तं जहा—खिप्पमोगिरहति बहुमोगिरहति बहुविधमोगिरहति धुवमोगिरहति अणिस्सियमोगिरहइ असंदिद्धमोगिरहइ । छव्विहा ईहामती पराणत्ता, तं जहा—खिप्पमीहति बहुमीहति जाव असंदिद्धमीहति । छव्विधा अवायमती पराणत्ता, तं जहा—खिप्पमवेति जाव असंदिद्धं अवेति । छव्विधा धारणा पराणत्ता, तं जहा—बहुं धारेइ पोराणं धारेति दुद्धरं धारेति अणिस्सितं धारेति असंदिद्धं धारेति ।

स्थानांग स्थान ६, सूत्र ५१०

जं बहु बहुविह खिप्पा अणिस्सिय निच्छिय धुवे यर विभिन्ना, पुणरोग्गहादओ तो तं छत्तीसत्तिसयभेदं ।

इयि भासयारेण,

छाया— षड्विधा अवग्रहमतिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—क्षिप्रमवगृह्णाति बहुमवगृह्णाति बहुविधमवगृह्णाति ध्रुवमवगृह्णाति अनिःसृतमवगृह्णाति असंदिग्धमवगृह्णाति । षड्विधा ईहामतिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—क्षिप्रमीहति बहुमीहति यावदसंदिग्धमीहति । षड्विधा अवायमतिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—क्षिप्रमवैति यावदसंदिग्धमवैति । षड्विधा धारणा प्रज्ञप्ता,

तद्यथा—बहुं धारयति बहुविधं धारयति पुराणं धारयति दुर्द्धरं
धारयति अनिश्रितं धारयति असंदिग्धं धारयति ।
यत् बहुबहुविधक्षिप्रानिश्रितनिश्चितध्रुवेतरविभिन्ना ।
यत्पुनरवग्रहादयोऽतस्तत्षट्त्रिंशदधिकत्रिशतभेदं ॥

इति भाष्यकारेण.

भाषा टीका—अवग्रह मति ज्ञान छै प्रकार का होता है—क्षिप्र, बहुविध, ध्रुव, अनिःसृत और असंदिग्ध। इसी प्रकार ईहामति के भी छै भेद होते हैं। अवायमति के भी यही छै भेद हैं और धारणा के निम्नलिखित छै भेद हैं—बहु, बहुविध, पुराण, दुर्द्धर, अनिःश्रित और असंदिग्ध। अवग्रह आदि के इन छै भेदों के अतिरिक्त छै इनके उलटे भेद भी हैं—बहु का अल्प, बहुविध का एकविध, क्षिप्र का अक्षिप्र, अनिःसृत का निःसृत, निश्चित का अनिश्चित तथा ध्रुव का अध्रुव। इन सब भेदों को जोड़ने से मतिज्ञान के ३३६ भेद होते हैं। ऐसा भाष्यकार ने कहा है।

संगति—उपरोक्त भेदों में धारणा के भेदों में क्षिप्र तथा ध्रुव के स्थान में पुराण और दुर्द्धर आता है। भाष्यकार के भेदों में अनुक्त के स्थान में निश्चित आता है। किन्तु यह भेद कोई बड़ा भेद नहीं है। मतिज्ञान से बाहिर न यह हैं न वह हैं। मुख्य बात मतिज्ञान के भेद सम्बन्धी है, जिसके विषय में आगम और तत्त्वार्थसूत्र दोनों एक मत हैं। अतएव इसमें कुछ भी भेद नहीं समझना चाहिये।

"अर्थस्य" ॥

१. १७.

से किं तं अत्थुग्गहे ? अत्थुग्गहे छव्विहे पराणत्ते, तं जहा—सोइन्दियअत्थुग्गहे, चक्खिंदियअत्थुग्गहे, घाणिंदियअत्थुग्गहे, जिब्भिदियअत्थुग्गहे, फासिंदिय अत्थुग्गहे, नोइन्दिय अत्थुग्गहे।

नन्दिसूत्र ३०.

छाया— अथ किं सः अर्थावग्रहः? अर्थावग्रहः षड्विधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियार्थावग्रहः, चक्षुरिन्द्रियार्थावग्रहः, घ्राणेन्द्रियार्थावग्रहः, जिह्वे-

न्द्रियार्थावग्रहः, स्पर्शनेन्द्रियार्थावग्रहः, नोइन्द्रियार्थावग्रहः ॥

प्रश्न — अर्थावग्रह क्या है। उत्तर—अर्थावग्रह छै प्रकार का कहा गया है—कर्ण इन्द्रिय अर्थावग्रह, चक्षु इन्द्रिय अर्थावग्रह, नासिका इन्द्रिय अर्थावग्रह, रसना इन्द्रिय अर्थावग्रह, स्पर्शन इन्द्रिय अर्थावग्रह और नो इन्द्रिय (मन) अर्थावग्रह ।

संगति—मतिज्ञान के उपरोक्त सब भेद 'अर्थ' अथवा प्रगटरूप पदार्थ के हैं। सूत्र में अर्थ को प्रगटरूप पदार्थ और व्यञ्जन को अप्रगट रूप पदार्थ कहा गया है। इस सूत्र में प्रगट रूप पदार्थ का उपसंहार किया गया है। अस्तु, प्रगट रूप पदार्थ के भेदों का विस्तार निम्नलिखित है।

मतिज्ञान के अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा यह चार भेद हैं। फिर प्रत्येक के बहु बहुविध आदि के भेद से बारह २ भेद हैं, जो बारह को चार से गुणा देने से अड़तालीस हुए। इनमें से प्रत्येक भेद का ज्ञान पांचों इन्द्रिय और मन की अपेक्षा छै २ प्रकार से होता है। अस्तु अड़तालीस को छै में गुणा देने से २८८ भेद प्रगट रूप (अर्थ) मतिज्ञान के हुए। अगले सूत्रों में बतलाया जावेगा कि अप्रगट रूप पदार्थ के ४८ भेद होते हैं। जिनको २८८ में जोड़ने से मतिज्ञान के कुल भेद ३३६ होते हैं।

"व्यञ्जनस्यावग्रहः" ॥

१. १८

"न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम्" ॥

१. १९

सुय निस्सिए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अत्थोग्गहे चेव बंजणोवग्गहे चेव ॥

स्थानांग स्थान २ उद्देश १ सूत्र ७१.

से किं तं बंजणुग्गहे ? बंजणुग्गहे चउव्विहे पणत्ते, तं जहा— "सोइन्दियबंजणुग्गहे, घाणिंदियबंजणुग्गहे, जिब्भिदियबंजणुग्गहे, फासिंदियबंजणुग्गहे सेतं बंजणुग्गहे ॥

नन्दिसूत्र सूत्र २९.

छाया— श्रुतनिश्रित' द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—अर्थावग्रहश्चैव व्यञ्जनावग्रह-श्चैव ।

अथ किं सः व्यञ्जनावग्रहः ? व्यञ्जनावग्रहश्चतुर्विधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः, घ्राणेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः, जिव्हेन्द्रिय-व्यञ्जनावग्रहः, स्पर्शनेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः, सोऽयं व्यञ्जनावग्रहः ॥

भाषा टीका — शास्त्र के अनुसार वह ज्ञान दो प्रकार का होता है — अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रह ।

प्रश्न—व्यञ्जनावग्रह क्या है ?

उत्तर—व्यञ्जनावग्रह चार प्रकार का होता है— कर्ण इन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह, घ्राण इन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह, रसना इन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह, स्पर्शन इन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह । यह व्यञ्जनावग्रह है ।

संगति—इस सूत्र में बताया गया है कि यद्यपि अर्थ (प्रगट रूप पदार्थ) के अवग्रह ईहा, अवाय और धारणा चार भेद होते हैं, किन्तु अप्रगट रूप पदार्थ का केवल अवग्रह ही होता है । अन्य ईहा आदि नहीं होते । अप्रगट रूप पदार्थ की दूसरी विशेषता यह होती है कि यह पांचों इन्द्रियों और छटे मन सभी से नहीं होता, वरन् चक्षु के अतिरिक्त केवल चार इन्द्रियों से ही होता है । व्यञ्जनावग्रह में चक्षु और मन से काम लेना नहीं पड़ता । अस्तु व्यञ्जनावग्रह बहुविध आदि के भेद से बारह प्रकार का होता है । उनमें से प्रत्येक भेद का ज्ञान चार इन्द्रियों (स्पर्शन-रसन-घ्राण और कर्ण) से हो सकता है । अतः बारह को चार से गुणा देने पर अप्रगट रूप पदार्थ (व्यञ्जन) के अड़तालीस भेद हुए। जिनको प्रगट रूप पदार्थ के २८८ भेदों में जोड़ने से मतिज्ञान के कुल ३३६ भेद होते हैं।

"श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् ॥"

१. २०.

मईपुव्वं जेण सुअं न मई सुअपुव्विआ ॥

नन्दि० सूत्र २४.

सुयनाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अंगपविट्ठे चेव अंग बाहिरे चेव ॥

स्थानांग स्था० २, उद्देश १, सू० ७१.

से किं तं अंगपविट्ठं ? दुवालसविहं पण्णत्तं, तं जहा—आयारो १ सुयगडे २ ठाणं ३ समवाओ ४ विवाहपण्णत्ती ५ नायाधम्मकहाओ ६ उवासगदसाओ ७ अंतगडदसाओ ८ अणुत्तरोववाइअदसाओ ६ पण्हावागरणाइं १० विवागसुअं ११ दिट्ठिवाओ १२ ॥

नन्दि० सूत्र ४४.

छाया— मतिपूर्वं येन श्रुतं न मतिः श्रुतपूर्विका ।

श्रुतज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—अङ्गप्रविष्टश्चैव अङ्गबाह्यश्चैव ॥
अथ किं तदङ्गप्रविष्टं ? द्वादशविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—आचाराङ्गः १ सूत्रकृताङ्गः २ स्थानांगः ३ समवायाङ्गः ४ व्याख्याप्रज्ञप्त्यंगः ५ ज्ञातृधर्मकथाङ्गः ६ उपासकदशाङ्गः ७ अन्तकृद्दशाङ्गः ८ अनुत्तरोपपादिकदशांङ्गः ९ प्रश्नव्याकरणाङ्गः १० विपाकश्रुताङ्गः ११ दृष्टिवादाङ्गः १२ ॥

भाषा टीका—श्रुत ज्ञान मतिपूर्वक होता है। मतिज्ञान श्रुतज्ञान पूर्वक नहीं होता । श्रुतज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—अङ्ग प्रविष्ट और अङ्गबाह्य ।

प्रश्न—अङ्गप्रविष्ट क्या है ?

उत्तर—वह बारह प्रकार का है—१ आचारांग, २. सूत्रकृतांग, ३. स्थानांग, ४. समवायांग. ५. व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग, ६. ज्ञाताधर्मकथांग, ७. उपाशकदशांग, ८ अन्तकृत दशांग, ९ अनुत्तरोपपादिकदशांग, १०. प्रश्नव्याकरणांग, ११ विपाकश्रुतांग, और १२ दृष्टिवादांग हैं।

अङ्ग बाह्य में कालिक आदि अनेक भेद तथा आवश्यक के छै भेद वर्णन किये गये हैं।

संगति—यहां सूत्रकार और आगमप्रमाण में तनिक भी भेद नहीं है ।

“ भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ॥ ”

१ । २१

दोण्हं भवपच्चइए पण्णत्ते, तं जहा—देवाणं चेव नेरइयाणं चेव ।

स्थानांग स्थान २, उद्देश १, सूत्र ७१.

से किं तं भवपच्चइअं ? दुण्हं, तं जहा—देवाण य नेइरयाण य ।।

नन्दि० सूत्र ७.

छाया— द्वयोः भवप्रत्ययिकः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—देवानां चैव नारकाणां चैव ।।

भाषा टीका—भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान दो के ही होता है—देवों के और नारकियों के ।

"क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥"

१ २२.

से किं तं खाओवसमिअं ? खाओवसमिअं दुण्हं, तं जहा—मणूसाण य पंचिंदियतिरिक्खजोणियाण य । को हेऊ खाओवसमिअं ? खाओवसमियं तयावरणिज्जाणं कम्माणं उदिण्णाणं खएणं अणुदिण्णाणं उवसमेणं ओहिनाणं समुप्पज्जइ ।।

नन्दिसूत्र सूत्र ८

दोण्हं खओवसमिए पण्णत्ते, तं जहा—मणुस्साणं चेव पंचिदियतिरिक्खजोणियाणं चेव ।

स्थानांग स्था० २, उद्दे० १ सूत्र ७१.

छव्विहे ओहिनाणे पण्णत्ते, तं जहा— अणुगामिए, अणाणुगामिते, वड्ढमाणते, हीयमाणते, पडिवाती अपडिवाती ।।

स्थानांग स्थान ६ सूत्र ५२६.

छाया— अथ किं तत्क्षायोपशमिकं ? क्षायोपशमिकं द्वयोः, तद्यथा—मनुष्याणाञ्च पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाञ्च । को हेतुः क्षायोपशमिकं ? क्षायोपशमिकं तदावरणीयानां कर्मणाम् उदीर्णानां क्षयेण अनुदीर्णानामुपशमेनावधिज्ञानं समुपद्यते ।।

द्वयो: क्षायोपशमिक: प्रज्ञप्तस्तद्यथा—मनुष्याणाञ्च पञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्योनिकानाञ्चैव।

षड्विधमवधिज्ञानं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—अनुगामिक:, अननुगामिक:, वर्द्धमान:, हीयमान:, प्रतिपाती, अप्रतिपाती,

प्रश्न—क्षायोपशमिक अवधिज्ञान क्या होता है?

उत्तर—क्षायोपशमिक दो के ही होता है—मनुष्यों के और तिर्यञ्चों के।

प्रश्न—यह क्षायोपशमिक किस कारण से कहलाता है?

उत्तर—पके हुए अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षय से और विपाक को प्राप्त न होने वाले अवधिज्ञानावरणीय कर्म के उपशम से क्षायोपशमिक अवधिज्ञान उत्पन्न होता है।

क्षायोपशमिक अवधिज्ञान दो के ही होता है—मनुष्यों के तथा पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों के।

यह अवधिज्ञान छै *प्रकार का होता है—अनुगामिक, अननुगामिक, वर्द्धमान, हीयमान, प्रतिपाती और अप्रतिपाती।

संगति—आगम बिलकुल स्पष्ट है, उसमें विशेष कथन है। सूत्र में तो सूक्ष्म कथन हुआ ही करता है।

"ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ॥"

१. २३.

मणपज्जवणाणे दुविहे पराणत्ते, तं जहा—उज्जुमति चेव विउलमति चेव ॥

स्थानांगसूत्र स्थान २ उद्दे० १, सू० ७१.

छाया— मन:पर्ययज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा — ऋजुमतिश्चैव विपुलमतिश्चैव।

भाषा टीका—मन:पर्यय ज्ञान दो प्रकार का होता है—ऋजुमती और विपुलमति।

"विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥"

१. २४.

---

* पन्नवणासूत्र पद ३३वें में अवस्थित और अनवस्थित भेद भी आते हैं।

उज्जुमई णं अणंते अणंतपएसिए खंधे जाणइ पासइ ते चेव विउलमई, अब्भहियतराए विउलतराए विसुद्धतराए वितिमिरतराए जाणइ पासइ, इत्यादि ॥

नन्दिसूत्र सूत्र १८.

छाया— ऋजुमतिः अनन्तान् अनन्तप्रदेशकान् स्कन्धान् जानाति पश्यति तांश्चैव विपुलमतिः, अभ्यधिकतरं विपुलतरं विशुद्धतरं वितिमिरतरं जानाति पश्यति, इत्यादि ।

भाषा टीका—ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान अनन्तप्रदेश वाले अनन्त स्कन्धों को जानता और देखता है। विपुलमति भी उन सबको जानता और देखता है। किन्तु यह उससे बड़े, अधिक, विशुद्धतर तथा अधिक निर्मल को जानता और देखता है।

संगति—सूत्रकार का कथन है कि विपुलमति मनःपर्ययज्ञान ऋजुमति की अपेक्षा अधिक विशुद्ध है तथा अप्रतिपाती होता है। चरित्र से न गिरने को अप्रतिपाती कहते हैं। अर्थात् विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त करने पर उपशम श्रेणि न बांधकर क्षपक श्रेणि पर चढ़ता है और क्रमशः चार घातिया कर्मों को नष्ट कर मोक्ष प्राप्त करता है। सारांश यह है कि विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान वाला चारित्र से कभी नहीं गिर सकता। अतएव उसको अप्रतिपाती कहा है। जब कि ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञान वाले की चारित्र से गिरने की आशंका हो सकती है। आगम में इन दोनों में विशुद्धि का ही भेद माना है। अप्रतिपात से वह सहमत नहीं है। जान पड़ता है कि अप्रतिपाती सिद्धान्त मतान्तर सिद्धान्त है।

"विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्यययोः।"

१. २५.

..... इड्ढीपत्त अपमत्त संजय सम्मदिट्ठि पज्जतग संखेज्जवासाउअ कम्मभूमिअ गब्भवक्कंतिअ मणुस्साणं मणपज्जवनाणं समुप्पज्जइ।

तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा—दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ इत्यादिकम् ॥

नन्दिसूत्र मनःपर्ययज्ञानाधिकार.

छाया— ऋद्धिप्राप्ताप्रमत्तसंयतसम्यग्दृष्टिपर्याप्तकसंख्येयवर्षायुष्ककर्मभूमिकगर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां मनःपर्ययज्ञानं समुत्पद्यते ।

तत्समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतः भावतः इत्यादिकम् ॥

भाषा टीका—मनःपर्यय ज्ञान केवल उन जीवों के ही होता है जो गर्भज मनुष्य हों, उनमें भी कर्म भूमि के हों, उनमें भी संख्यात वर्ष की आयु वाले हों—असंख्यात वर्ष की आयु वाले नहीं; फिर उनमें भी पर्याप्तक हों अपर्याप्तक न हों, उनमें भी सम्यग्दृष्टि हों, फिर उनमें भी सप्तम गुणस्थान अप्रमत्तसंयत वाले हों, और फिर उनमें भी ऋद्धिप्राप्त हों।

संक्षेप से मनःपर्यय ज्ञान चार प्रकार से होता है— द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से इत्यादि ।

संगति — सूत्र में बतलाया गया है कि अवधि और मनःपर्यय ज्ञान में क्या भेद है। मनःपर्यय ज्ञान अवधिज्ञान की अपेक्षा अधिक विशुद्ध होता है। अवधिज्ञान का क्षेत्र तीन लोक हैं, जब कि मनःपर्यय ज्ञान का क्षेत्र केवल मध्यलोक, उसमें भी अढ़ाई द्वीप और उसमें भी वह कर्मभूमियां हैं जहां केवल चौथा काल या उसकी सन्धि हो। अवधिज्ञान के स्वामी चारों गतियों में हैं, किन्तु मनःपर्यय ज्ञान के स्वामी ऊपर आगम वाक्य के अनुसार बहुत थोड़े होते हैं। अवधि ज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान के विषय में भी बड़ा भेद है जैसा कि अगले सूत्रों से प्रगट होगा। आगम में यह सब बातें बड़े विस्तार से आई हैं। यह सम्भव नहीं हो सका कि इन सब बातों को दिखलाने वाले छोटे वाक्य उद्धृत किये जाते। किन्तु यह अवश्य है कि आगम और सूत्र दोनों में इस विषय पर मत भेद नहीं है।

"मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु,"

१. २६.

..... तत्थ दव्वओणं आभिणिबोहियणाणी आएसेणं सव्वाइं दव्वाइं जाणइ न पासइ, खेत्तओणं आभिणिबोहियणाणी आए- सेणं सव्वं खेत्तं जाणइ न पासइ, कालओणं आभिणिबोहिय- णाणी आएसेणं सव्वकालं जाणइ न पासइ, भावओणं आभि- णिबोहियणाणी आएसेणं सव्वे भावे जाणइ न पासइ।

नन्दिसूत्र सूत्र ३७.

से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ। तत्थ दव्वओणं सुअणाणी उवउत्ते सव्वदव्वाइं जाणइ पासइ, खित्तओणं सुअणाणी उवउत्ते सव्वं खेत्तं जाणइ पासइ, कालओणं सुअणाणी उवउत्ते सव्वं कालं जाणइ पासइ, भावओणं सुअणाणी उवउत्ते सव्वे भावे जाणइ पासइ।

नन्दिसूत्र सूत्र ५८.

छाया— तत्र द्रव्यत: आभिनिबोधिकज्ञानी आदेशेन सर्वाणि द्रव्याणि जानाति न पश्यति। क्षेत्रत: आभिनिबोधिकज्ञानी आदेशेन सर्वं क्षेत्रं जानाति न पश्यति। कालत: आभिनिबोधिक ज्ञानी आदेशेन सर्वं कालं जानाति न पश्यति, भावत: आभिनिबोधिकज्ञानी आदेशेन सर्वाणि भावानि जानाति न पश्यति।

अथ समासतश्चतुर्विध: प्रज्ञप्तस्तद्यथा—द्रव्यत: क्षेत्रत: कालत: भावत:। तत्र द्रव्यत: श्रुतज्ञानी उपयुक्त: सर्वद्रव्याणि जानाति पश्यति, क्षेत्रत: श्रुतज्ञानी उपयुक्त: सर्वं क्षेत्रं जानाति पश्यति, कालत: श्रुतज्ञानी उपयुक्त: सर्वं कालं जानाति पश्यति, भावत: श्रुतज्ञानी उपयुक्त: सर्वाणि भावानि जानाति पश्यति।

भाषा टीका— द्रव्य की अपेक्षा मतिज्ञान वाला आदेश से सब द्रव्यों को जानता है किन्तु देखता नहीं। क्षेत्र की अपेक्षा मतिज्ञान वाला आदेश से सब क्षेत्र को जानता

है किन्तु देखता नहीं। काल की अपेक्षा मतिज्ञान वाला आदेश से सभी काल को जानता है किन्तु देखता नहीं। भाव की अपेक्षा मतिज्ञान वाला आदेश से सब भावों को जानता है, किन्तु देखता नहीं।

श्रुतज्ञान संक्षेप से चार प्रकार से होता है—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भावसे।

द्रव्य की अपेक्षा उपयोग युक्त श्रुतज्ञानी सब द्रव्यों को जानता और देखता है। क्षेत्र की अपेक्षा उपयोग युक्त श्रुतज्ञानी सब क्षेत्र को जानता और देखता है। काल की अपेक्षा उपयोग युक्त श्रुतज्ञानी सब काल को जानता और देखता है। भाव की अपेक्षा उपयोग युक्त श्रुतज्ञानी सब भावों को जानता और देखता है।

संगति—आगम में उसी बात को विस्तार से कहा गया है, जिसको सूत्र मे संक्षेप से कहा है। सूत्र कहता है कि मति तथा श्रुत ज्ञान के विषयों का निबन्ध द्रव्य की थोड़ी पर्यायों में है. अर्थात् मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान जानते तो सब द्रव्यों को हैं किन्तु उनकी सब पर्यायों को नहीं जानते, वरन् थोड़ी पर्यायों को जानते हैं।

"रूपिष्ववधेः।"

१.२७

……ओहिनाणी जहन्नेणं अणंताइं रूविदव्वाइं जाणइ पासइ। उक्कोसेणं सव्वाइं रूविदवाइं जाणइ पासइ।

नन्दिसूत्र सूत्र १६

छाया— अवधिज्ञानी जघन्येन अनन्तानि रूपिद्रव्याणि जानाति पश्यति। उत्कर्षेण सर्वाणि रूपिद्रव्याणि जानाति पश्यति।

भाषा टीका— अवधिज्ञानी जघन्य रूप से अनन्त रूपी द्रव्यों को जानता और देखता है। उत्कृष्ट रूप से वह सभी रूपी द्रव्यो को जानता और देखता है।

संगति—अवधिज्ञान केवल रूपी द्रव्य को ही जानता है, अरूपी द्रव्यों को नहीं जान सकता। रूपी द्रव्यों में अवधिज्ञान अधिक से अधिक परमाणु तक को जान तथा देख सकता है।

"तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य।"

१ २८.

सव्वत्थोवा मणपज्जवणाणपज्जवा। ओहिणाणपज्जवा अणंतगुणा इत्यादि।

भगवती सूत्र शत० ८ उद्देश २ सूत्र ३२३.

छाया— सर्वस्तोकाः मनःपर्ययज्ञानपर्यवाः। अवधिज्ञानपर्यवाः अनन्तगुणाः इत्यादि।

भाषा टीका— मनःपर्यय ज्ञान की पर्याय सब से कम होती है। किन्तु अवधिज्ञान की पर्याय उससे अनन्त गुणी होती हैं।

संगति— जिस द्रव्य को अवधिज्ञान जानता है। मनःपर्यय ज्ञान उसमे भी अनन्तव भाग सूक्ष्म पदार्थ को जानता है।

"सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य।"

१ २९

तं समासओ चउव्विहं ···· अह सव्वदव्वपरिणाम-भावविण्णत्तिकरणमणंतं, सासयमप्पडिवाई एगविहं केवलं णाणं।

नन्दि० सूत्र २२.

छाया— तत्समासतश्चतुर्विधं ······ । अथ सर्वद्रव्यपरिणामभावविज्ञप्तिकरणमनन्तं, शाश्वतमप्रतिपाती एकविधं केवलं ज्ञानम्।

भाषा टीका— संक्षेप से वह चार प्रकार का होता है — केवल ज्ञान सब द्रव्यों के परिणाम और भावों को बतलाने का कारण है, अनन्त है, निरन्तर रहता है, अप्रतिपाती है अर्थात् इसको प्राप्त करके गिर नहीं सकते। इस प्रकार केवल ज्ञान एक प्रकार का होता है।

संगति— सारांश यह है कि केवल ज्ञान सब द्रव्यों की सब पर्यायों को जानता है।

"एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः।"

१. ३०.

जे णाणी ते अत्थेगतिया दुणाणी अत्थेगतिया तिणाणी, अत्थेगतिया चउणाणी अत्थेगतिया एगणाणी। जे दुणाणी ते नियमा आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी य, जे तिणाणी ते आभिणिबोहियणाणी सुतणाणी ओहिणाणी य, अहवा आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी मणपज्जवणाणी य, जे चउणाणी ते नियमा आभिणिबोहियणाणी सुतणाणी ओहिणाणी मणपज्जवणाणी य, जे एगणाणी ते नियमा केवलणाणी।

जीवाभि० प्रतिपत्ति १ सूत्र ४१.

छाया— ये ज्ञानिन. ते सन्त्येकका: द्विज्ञानिन: सन्त्येकका: त्रिज्ञानिन: सन्त्येकका: चतुर्ज्ञानिन: सन्त्येकका: एकज्ञानिनः। ये द्विज्ञानिन: ते नियमात् आभिनिबोधिकज्ञानी श्रुतज्ञानी च, ये त्रिज्ञानिनस्ते आभिनिबोधिकज्ञानी श्रुतज्ञानी अवधिज्ञानी च, अथवा आभिनिबोधिकज्ञानी श्रुतज्ञानी मन:पर्ययज्ञानी च, ये चतुर्ज्ञानिनस्ते नियमात् आभिनिबोधिकज्ञानी श्रुतज्ञानी अवधिज्ञानी मन:पर्ययज्ञानी च, ये एकज्ञानिनस्ते नियमात् केवलज्ञानी।

भाषा टीका — ज्ञानियां में किन्हीं के दो ज्ञान होते हैं, किन्हीं के तीन ज्ञान होते हैं, किन्हीं के चार ज्ञान होते हैं और किन्हीं के केवल एक ज्ञान ही होता है। दो ज्ञान वालों के मति और श्रुति होते हैं। तीन ज्ञान वालों के मति, श्रुति और अवधि होते हैं अथवा मवि, श्रुति और मन:पर्यय ज्ञान होते हैं। चार ज्ञान वालों के मति, श्रुति, अवधि और मन:पर्यय ज्ञान होते हैं। एक ज्ञान वालों के केवल ज्ञान ही होता है।

संगति — एक आत्मा में एक समय कम से कम एक और अधिक से अधिक चार ज्ञान तक हो सकते हैं। पांचों कभी एक आत्मा में एक साथ नहीं हो सकते।

"मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥
१. ३१.

"सदसतोरविशेषाद् यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥
१. ३२.

अण्णाणपरिणामेणं भंते कतिविधे पण्णत्ते? गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—मइअण्णाण परिणामे, सुयअण्णाण परिणामे, विभंगणाणपरिणामे ॥

प्रज्ञापना पद १३ ज्ञानपरिणामविषय
स्थानांग सूत्र स्थान ३ उद्देश्य ३ सूत्र २८७

से किं तं मिच्छासुयं? जं इमं अण्णाणिएहिं मिच्छादिट्ठिएहिं सच्छंदबुद्धिमइ विगप्पिअं, इत्यादि ।

नन्दि० सूत्र ४२.

अविसेसिआ मई मइनाणं च मइअन्नाणं च इत्यादि ।

नन्दि० सूत्र २५.

छाया— अज्ञानपरिणामः भदन्त ! कतिविधः प्रज्ञप्तः? गौतम! त्रिविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—मत्यज्ञानपरिणामः श्रुताज्ञानपरिणामः, विभंगज्ञान-परिणामः ।

अथ किं तन्मिथ्याश्रुतं? यदिदं अज्ञानिभिः मिथ्यादृष्टिभिः स्वच्छन्दबुद्धिमतिविकल्पितम् ।

अविशेषिका मतिः मतिज्ञानं मत्यज्ञानश्च इत्यादि ।

प्रश्न — भगवन् अज्ञान परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर — गौतम ! वह तीन प्रकार का कहा गया है — मति अज्ञान अथवा कुमति, श्रुताज्ञान अथवा कुश्रुत, तथा विभंग ज्ञान अथवा कुअवधि ।

प्रश्न — वह मिथ्याश्रुत क्या है ?

उत्तर — स्वच्छन्द बुद्धि वाले अज्ञानी मिथ्यादृष्टियों के बनाये हुए शास्त्र को मिथ्याश्रुत कहते हैं ।

सामान्य रूप से मति मतिज्ञान भी होता है और अज्ञान भी होता है।

संगति — मति, श्रुत और अवधि ज्ञान तो होते ही हैं, अज्ञान भी होते हैं। इनके अज्ञान होने का कारण सूत्र में शराबी का उदाहरण देकर स्पष्ट किया है। जिस प्रकार शराबी मद्य पीकर अच्छे या बुरे के ज्ञान से शून्य होकर माता तथा पत्नी को समान समझता है उसी प्रकार अज्ञानी के मति, श्रुत अथवा अवधि यदि पंचाग्नि आदि तप के कारण प्रगट हो भी जावें तो वह कुमति, कुश्रुत और विभंग कहलाते हैं। आगम में इसका विस्तार से वर्णन किया गया है और सूत्र में इसी को कुछ अक्षरों में ही समाप्त कर दिया गया है।

"नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्द-समभिरूढैवम्भूताः नयाः ॥

१. ३३.

सत्तमूलणया पण्णत्ता, तं जहा – णेगमे, संगहे, ववहारे, उज्जुसूए, सद्दे, समभिरूढे, एवंभूए।

अनुयोगद्वार १३६.
स्थानांग स्थान ७ सूत्र ५५२

छाया— सप्तमूलनयाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा – नैगमः, संग्रहः, व्यवहारः, ऋजुसूत्रः, शब्दः, समभिरूढः, एवंभूतः।

भाषा टीका — मूल नय सात कही गई हैं — नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत।

संगति — यहां आगम और सूत्र के शब्द प्रायः मिलते जुलते हैं।

इति श्री जैनमुनि-उपाध्याय-श्रीमदात्माराम-महाराज-संग्रहीते
तत्वार्थसूत्रजैनाऽऽगमसमन्वये

❀ प्रथमाध्यायः समाप्तः ॥ १ ॥ ❀

द्वितीयाऽध्यायः

———:o:———

"औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥"

अध्याय २. सूत्र १.

छव्विधे भावे पण्णत्ते, तं जहा—ओदइए उपसमिते खत्तिते खतोवसमिते पारिणामिते सन्निवाइए ।

स्थानांग स्थान ६, सूत्र ५३७.

छाया— षड्विधः भावः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—औदयिकः, औपशमिकः, क्षायिकः, क्षायोपशमिकः, पारिणामिकः, सन्निपातिकः ॥

भाषा टीका — भाव छै प्रकार के होते हैं — औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, पारिणामिक और सन्निपातिक ।

संगति — सूत्र में पांच भाव होते हुए भी आगम में छै भाव विशेष कथन की अपेक्षा से हैं ।

"द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम्" ॥

२ २.

"सम्यक्त्वचारित्रे ॥"

२. ३.

"ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥"

२. ४

"ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमाऽसंयमाश्च ॥"

२ ५.

"गतिकषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः॥"

२. ६.

"जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥"

२. ७.

से किं तं उदइए ? दुविहे पराणत्ते, तं जहा—उदइए अ उदयनिप्फराणे अ। से किं तं उदइए ? अट्ठराहं कम्मपयडीणं उदएणं, से तं उदइए। से किं तं उदयनिप्फन्ने ? दुविहे पराणत्ते, तं जहा—जीवोदयनिप्फन्ने अ अजीवोदयनिप्फन्ने अ। से किं तं जीवोदयनिप्फन्ने ? अणेगविहे पराणत्ते, तं जहा—णेरइए तिरिक्खजोणिए मणुस्से देवे पुढविकाइए जाव तसकाइए कोहकसाई जाव लोहकसाई इत्थीवेदए पुरिसवेदए णपुंसगवेदए कराहलेसे जाव सुक्कलेसे मिच्छादिट्ठी अविरए असराणी अराणाणी आहारए छउमत्थे सजोगी संसारत्थे असिद्धे, से तं जीवोदयनिप्फन्ने। से किं तं अजीवोदयनिप्फन्ने ? अणेगविहे पराणत्ते, तं जहा—उरालिअं वा सरीरं उरालिअसरीरपओगपरिणामिअं वा दव्वं, वेउव्विअं वा सरीरं वेउव्वियसरीरपओगपरिणामिअं वा दव्वं, एवं आहारगं सरीरं तेअगं सरीरं कम्मगसरीरं च भाणिअव्वं, पओगपरिणामिए वराणे गंधे रसे फासे, से तं अजीवोदयनिप्फराणे। से तं उदयनिप्फराणे, से तं उदइए।

से किं तं उवसमिए ? दुविहे पराणत्ते, तं जहा—उवसमे

अ उवसमनिप्फरणे अ। से किं तं उवसमे? मोहणिज्जस्स कम्मस्स उवसमेणं, से तं उवसमे। से किं तं उवसमनिप्फण्णे? अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा – उवसंतकोहे जाव उवसंतलोभे उवसंतपेज्जे उवसंतदोसे उवसंतदंसणमोहणिज्जे उवसंतमोहणिज्जे उवसमिआ सम्मत्तलद्धी उवसमिआ चरित्तलद्धी उवसंतकसायछउमत्थवीयरागे, से तं उवसमनिप्फण्णे। से तं उवसमिए।

से किं तं खइए? दुविहे पण्णत्ते तं जहा—खइए अ खयनिप्फण्णे अ। से किं तं खइए? अट्ठण्हं कम्मपयडीणं खए णं, से तं खइए। से किं तं खयनिप्फण्णे? अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा – उप्पण्णणाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली खीणआभिणिबोहियणाणावरणे खीणसुअणाणावरणे खीणओहिणाणावरणे खीणमणपज्जवणाणावरणे खीणकेवलणाणावरणे अणावरणे निरावरणे खीणावरणे णाणावरणिज्जकम्मविप्पमुक्के; केवलदंसी सव्वदंसी खीणनिद्दे खीणनिद्दानिद्दे खीणपयले खीणपयलापयले खीणथीणगिद्धी खीणचक्खुदंसणावरणे खीणअचक्खुदंसणावरणे खीणओहिदंसणावरणे खीणकेवलदंसणावरणे अणावरणे निरावरणे खीणावरणे दरिसणावरणिज्जकम्मविप्पमुक्के; खीणसायावेअणिज्जे खीणअसायावेअणिज्जे अवेअणे निव्वेअणे खीणवेअणे सुभासुभवेअणिज्जकम्मविप्पमुक्के; खीणकोहे जाव खीणलोहे खीणपेज्जे खीणदोसे खीणदंसणमोहणिज्जे खीणचरित्तमोहणिज्जे अमोहे निम्मोहे खीणमोहे मोह-

णिज्जकम्मविप्पमुक्के; खीणणेरइआउए खीणतिरक्खजोणि-आउए खीणमणुस्साउए खीणदेवाउए अणाउए निराउए खीणा-उए आउकम्मविप्पमुक्के; गइजाइसरीरंगोवंगबंधणसंघयण संठाणअणेगबोंदिविंदसंघायविप्पमुक्के खीणसुभनामे खीण-असुभणामे अणामे निण्णामे खीणनामे सुभासुभणामकम्म-विप्पमुक्के; खीणउच्चागोए खीणणीआगोए अगोए निग्गोए खीणगोए उच्चणीयगोत्तकम्मविप्पमुक्के; खीणदाणंतराए खीण-लाभंतराए खीणभोगंतराए खीणउवभोगंतराए खीणविरियंतराए अणंतराए णिरंतराए खीणंतराए अंतरायकम्मविप्पमुक्के; सिद्धे बुद्धे मुत्ते परिणिव्वुए अंतगडे सव्वदुक्खप्पहीणे, से तं खयनिप्फ-ण्णे, से तं खइए।

से किं तं खओवसमिए? दुविहे पण्णत्ते, तं जहा – खओ-वसमिए य खओवसमनिप्फण्णे य। से किं तं खओवसमे? चउण्हं घाइकम्माणं खओवसमेणं, तं जहा—णाणावरणिज्जस्स दंसणावरणिज्जस्स मोहणिज्जस्स अंतरायस्स खओवसमेणं, से तं खओवसमे। से किं तं खओवसमनिप्फण्णे? अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा—खओवसमिआ आभिणिबोहिअ-णाणलद्धी जाव खओ-वसमिआ मणपज्जवणाणलद्धी खओवसमिआ मइअण्णाणलद्धी खओवसमिया सुअ-अण्णाणलद्धी खओवसमिआ विभंगणाण-लद्धी खओवसमिआ चक्खुदंसणलद्धी अचक्खुदंसणलद्धी ओहि-दंसणलद्धी एवं सम्मदंसणलद्धी मिच्छादंसणलद्धी सम्ममिच्छा-

दंसणलद्धी खओवसमिआ सामाइअचरित्तलद्धी एवं छेदोवट्ठावणलद्धी परिहारविसुद्धिअलद्धी सुहुमसंपरायचरित्तलद्धी एवं चरित्ताचरित्तलद्धी खओवसमिआ दाणलद्धी एवं लाभ० भोग० उपभोगलद्धी खओवसमिआ वीरिअलद्धी एवं पंडिअवीरिअलद्धी बालवीरिअलद्धी बालपंडिअवीरिअलद्धी खओवसमिआ सोइन्दियलद्धी जाव खओवसमिआ फासिंदियलद्धी खओवसमिए आयारंगधरे एवं सुअगडंगधरे ठाणंगधरे समवायंगधरे विवाहपण्णत्तिधरे नायाधम्मकहा० उवासगदसा० अंतगडदसा० अणुत्तरोववाइअदसा० पण्हावागरणधरे विवागसुअधरे खओवसमिए दिट्ठिवायधरे खओवसमिए णवपुव्वी खओवसमिए जाव चउद्दसपुव्वी खओसमिए गणी खओवसमिए वायए, से तं खओवसमनिप्फण्णे। से तं खओवसमिए।

से किं तं पारिणामिए? दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—साइपारिणामिए अ अणाइपारिणामिए अ। से किं तं साइपारिणामिए? अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा—

जुण्णसुरा जुण्णगुलो जुण्णघयं जुण्णतंदुला चेव।
अब्भा य अब्भरुक्खा संभा गंधव्वणगरा य ॥ २४ ॥

उक्कावाया दिसादाहा गज्जियं विज्जूणिग्घाया जूवया जक्खादित्ता धूमिआ महिआ रयुग्घाया चंदोवरागा सूरोवरागा चंदपरिवेसा सूरपरिवेसा पडिचंदा पडिसूरा इन्दधणू उदगमच्छा कपिहसिया अमोहा वासा वासधरा गामा णगरा घरा पव्वता

पायाला भवणा निरया रयणप्पहा सक्करप्पहा वालुअप्पहा पंकप्पहा धूमप्पहा तमप्पहा तमतमप्पहा सोहम्मे जाव अच्चुए गेवेज्जे अणुत्तरे ईसिप्पभाए परमाणुपोग्गले दुपएसिए जाव अणंतपएसिए, से तं साइपरिणामिए। से किं तं अणाइपरिणामिए? धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए जीवत्थिकाए पुग्गलत्थिकाए अद्धासमए लोए अलोए भवसिद्धिआ अभवसिद्धिआ, से तं अणाइपरिणामिए। से तं परिणामिए।

अनुयोगद्वार सूत्र षटभावाधिकार।

छाया — अथ किं सः औदयिकः? द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—औदयिकश्च उदयनिष्पन्नश्च। अथ किं सः औदयिकः? अष्टानां कर्मप्रकृतीनां उदयेन अथ सः औदयिकः। अथ किं सः उदयनिष्पन्नः? द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—जीवोदयनिष्पन्नश्च अजीवोदयनिष्पन्नश्च। अथ किं सः जीवोदयनिष्पन्नः? अनेकविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—नैरयिकः तिर्यग्योनिकः मनुष्यः देवः पृथ्वीकायिकः यावत् त्रसकायिकः क्रोधकषायी यावत् लोभकषायी स्त्रीवेदकः पुरुषवेदकः नपुंसकवेदकः कृष्णलेश्यः यावत् शुक्ललेश्यः मिथ्यादृष्टिः अविरतः असंज्ञी अज्ञानी आहारकः छद्मस्थः सयोगी संसारस्थोऽसिद्धः। अथ सः जीवोदयनिष्पन्नः। अथ किं सः अजीवोदयनिष्पन्नः? अनेकविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—औदारिकं वा शरीरं औदारिकशरीरप्रयोगपरिणामिकं वा द्रव्यं, वैक्रियिकं वा शरीरं वैक्रियिकशरीरप्रयोगपरिणामिकं वा द्रव्यं, आहारकं शरीरं तैजसं शरीरं कार्माणशरीरं च भणितव्यम्, प्रयोगपरिणामिकः वर्णः गन्धः रसः स्पर्शः, अथ सः अजीवोदयनिष्पन्नः। अथ सः उदयनिष्पन्नः, अथ सः औदयिकः।

अथ किं सः औपशमिकः? द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—उपशमश्च उपशमनिष्पन्नश्च। अथ किं सः उपशमः? मोहनीयस्य कर्मणः उपशमः, अथ सः उपशमः। अथ किं सः उपशमनिष्पन्नः? अनेकविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—उपशान्तक्रोधः यावत् उपशान्तलोभः उपशान्तप्रेम उपशान्तदोषः उपशान्तदर्शनमोहनीयः उपशान्तमोहनीयः उपशमिका सम्यक्त्वलब्धिः उपशमिका चारित्रलब्धिः उपशान्तकषायछद्मस्थवीतरागः, अथ स उपशमनिष्पन्नः। अथ सः उपशमिकः।

अथ किं सः क्षायिकः? द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—क्षायिकश्च क्षयनिष्पन्नश्च। अथ किं सः क्षायिकः? अष्टानां कर्मप्रकृतीनां क्षयः, अथ सः क्षायिकः। अथ किं सः क्षयनिष्पन्नः? अनेकविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—उत्पन्नज्ञानदर्शनधरः अर्हज्जिनः केवली क्षीणआभिनिबोधिकज्ञानावरणः क्षीणश्रुतज्ञानावरणः क्षीणावधिज्ञानावरण. क्षीणमनःपर्ययज्ञानावरणः क्षीणकेवलज्ञानावरणः अनावरणः निरावरणः क्षीणावरणः ज्ञानावरणीयकर्मविप्रमुक्तः; केवलदर्शी सर्वदर्शी, क्षीणनिद्रः क्षीणनिद्रानिद्रः क्षीणप्रचलः क्षीणप्रचलाप्रचल. क्षीणस्त्यानगृद्धी, क्षीणचक्षुदर्शनावरणः क्षीणाचक्षुदर्शनावरण. क्षीणाऽवधिदर्शनावरणः क्षीणकेवलदर्शनावरणः अनावरणः निरावरण. दर्शनावरणीयकर्मविप्रमुक्तः; क्षीणसातावेदनीयः क्षीणासातावेदनीयः अवेदनः निर्वेदनः क्षीणवेदनः शुभाशुभवेदनीयकर्मविप्रमुक्तः; क्षीणक्रोधः यावत् क्षीणलोभः क्षीणप्रेम क्षीणदोषः क्षीणदर्शनमोहनीयः क्षीणचारित्रमोहनीय. अमोहः निर्मोहः क्षीणमोहः मोहनीयकर्मविप्रमुक्तः; क्षीणनैरयिकायुष्कः क्षीणतिर्यग्योनिकायुष्कः क्षीणमनुष्यायुष्कः क्षीणदेवायुष्कः अनायुष्कः निरायुष्कः क्षीणायुष्कः आयुकर्मविप्रमुक्तः; गतिजातिशरीरांगोपाङ्गबंधनसंघातनसंहननसंस्थानानेकशरीर– (बोंदि)

निर्नाम: क्षीणनाम: शुभाशुभनामकर्मविप्रमुक्त: ; क्षीणोच्चगोत्र: क्षीणनीचगोत्र: अगोत्र: निर्गोत्र: क्षीणगोत्र: उच्चनीचगोत्रकर्मविप्रमुक्त: ; क्षीणदानान्तराय: क्षीणलाभान्तराय: क्षीणभोगान्तराय: क्षीणोपभोगान्तराय: क्षीणवीर्यान्तराय: अनन्तराय: निरन्तराय: क्षीणान्तराय: अन्तरायकर्मविप्रमुक्त: ; सिद्ध: बुद्ध: मुक्त: परिनिर्वृत: अन्तकृत् सर्वदु:खप्रहीण:, अथ स: क्षयनिष्पन्न: । अथ स: क्षायिक: ।

अथ किं स: क्षायोपशमिक: ? द्विविध: प्रज्ञप्तस्तद्यथा–क्षायोपशमिकश्च क्षायोपशमनिष्पन्नश्च । अथ किं स: क्षयोपशम: ? चतुर्णां घातिकर्मणां क्षयोपशम:, तद्यथा–ज्ञानावरणीयस्य दर्शनावरणीयस्य मोहनीयस्य अन्तरायस्य क्षयोपशम:, अथ स: क्षयोपशम: । अथ किं स: क्षयोपशमनिष्पन्न: । अनेकविध: प्रज्ञप्तस्तद्यथा –क्षयोपशमिका आभिनिबोधिकज्ञानलब्धि: यावत् क्षयोपशमिका मन:पर्ययज्ञानलब्धि: क्षयोपशमिका मत्यज्ञानलब्धि: क्षयोपशमिका श्रुताज्ञानलब्धि: क्षयोपशमिका विभंगज्ञानलब्धि: क्षयोपशमिका चक्षुदर्शनलब्धि: अचक्षुदर्शनलब्धि: अवधिदर्शनलब्धि: एवं सम्यग्दर्शनलब्धि: मिथ्यादर्शनलब्धि: सम्यङ्मिथ्यादर्शनलब्धि: क्षयोपशमिका सामायिकचारित्रलब्धि: एवं छेदोपस्थापनालब्धि: परिहारविशुद्धिकलब्धि: सूक्ष्मसाम्परायचारित्रलब्धि: एवं चरित्राचरित्रलब्धि: क्षयोपशमिका दानलब्धि: एवं लाभ० भोग० उपभोगलब्धि: क्षयोपशमिका वीर्यलब्धि: एवं पंडितवीर्यलब्धि: बालवीर्यलब्धि: बालपण्डितवीर्यलब्धि: क्षयोपशमिका-श्रोत्रेंद्रियलब्धि: यावत् क्षयोपशमिका स्पर्शनेन्द्रियलब्धि: क्षयोपशमिक: आचाराङ्गधर: एवं सूत्रकृतांगधर: स्थानाङ्गधर: समवायाङ्गधर: व्याख्याप्रज्ञप्तिधर: ज्ञाताधर्मकथाङ्गधर: उपासकदशाङ्ग-

धर : अन्तकृद्दशाङ्गधर : अनुत्तरोपपातिकदशाङ्गधरः प्रश्नव्याकरणाङ्गधर : विपाकश्रुतधर : क्षयोपशमिक : दृष्टिवादधर : क्षयोपशमिक : नवपूर्वी यावत् क्षयोपशमिक : चतुर्दशपूर्वी क्षयोपशमिक: गणि: क्षयोपशमिक : वाचक :, अथ स : क्षयोपशमनिष्पन्न :, अथ स : क्षयोपशमिक : ।

अथ किं स : पारिणामिक : ? द्विविध : प्रज्ञप्तस्तद्यथा--सादिपारिणामिकश्च अनादिपारिणामिकश्च। अथ किं स: सादिपारिणामिक: ? अनेकविध: प्रज्ञप्तस्तद्यथा — जीर्णसुरा जीर्णगुड जीर्णघृतं जीर्णतंदुलाश्चैव । अभ्राणि च अभ्रवृक्षा: सन्ध्या गन्धर्वनगराणि च । उल्कापाता : दिग्दाहा : गर्जितविद्युन्निर्घाता : यूपका : यक्षादीप्तकानि धूमिका महिका रज उद्घात: चन्द्रोपरागा सूर्योपरागा : चन्द्रपरिवेषा : सूर्यपरिवेषा : प्रतिचन्द्र : प्रतिसूर्य इन्द्रधनु : उदकमत्स्या : [इन्द्रधनु : खण्डानि] कपिहसितानि अमोघा वर्षा : वर्षधरा : ग्रामा : नगरा : गृहाणि पर्वता : पाताला : भूवनानि नारका : रत्नप्रभा शर्करप्रभा बालुकप्रभा पङ्कप्रभा धूमप्रभा तम:प्रभा तम:तम:प्रभा सौधर्म यावत् अच्युत : ग्रैवेयक : अनुत्तर : ईषित्प्रागभारा परमाणुपुद्गल द्विप्रदेशिक : यावत् अनन्तप्रदेशिक :, अथ स : सादिपारिणामिक : । अथ किं स : अनादिपारिणामिक ? धर्मास्तिकाय: अधर्मास्तिकाय: आकाशास्तिकाय: जीवास्तिकाय: पुद्गलास्तिकाय: अद्धासमय: लोक : अलोक : भव्यसिद्धिका अथ स : अनादिपारिणामिक : । अथ स : पारिणामिक : ।

भाषा टीका—औदयिक किसे कहते हैं? वह दो प्रकार का होता है — औदयिक और उदयनिष्पन्न । औदयिक किसे कहते हैं? आठों कर्मों की प्रकृतियों के उदय से औदयिक भाव होता है । उदयनिष्पन्न किसे कहते हैं? वह दो प्रकार का होता है —

जीवोदय निष्पन्न तथा अजीवोदय निष्पन्न। जीवोदय निष्पन्न किसे कहते हैं? वह अनेक प्रकार का कहा गया है — नारकी, तिर्यंच मनुष्य, देव, पृथ्वी कायिक से लगाकर त्रस काय तक, क्रोधकषाय वाले से लगाकर लोभ कषाय वाले तक, स्त्री वेद वाले, पुरुषवेद वाले, नपुंसक वेद वाले, कृष्णलेश्या वाले से लगाकर शुक्ललेश्या वाले तक, मिथ्यादृष्टि, अविरत, असंज्ञी, अज्ञानी, आहारक, छद्मस्थ, सयोगी, संसारी और असिद्ध। इसको जीवोदय निष्पन्न कहते हैं। अजीवोदय निष्पन्न किसे कहते हैं? वह अनेक प्रकार का होता है — औदारिक शरीर अथवा औदारिक शरीर के प्रयोग के परिणाम वाला द्रव्य, वैक्रियिक शरीर अथवा वैक्रियिकशरीर के प्रयोग के परिणाम वाला द्रव्य, इसी प्रकार आहारक शरीर, तेजस शरीर और कार्माण शरीर भी अजीवोदय निष्पन्न हैं। प्रयोग के परिणाम वाले वर्ण, गंध, रस और स्पर्श भी अजीवोदय निष्पन्न हैं। यह उदय निष्पन्न है। इस प्रकार औदयिक भाव का वर्णन किया गया॥

औपशमिक किसे कहते हैं? वह दो प्रकार का कहा गया है — उपशम और उपशम निष्पन्न। उपशम किसे कहते हैं? मोहनीय कर्म के उपशम (दबजाने) को उपशम कहते हैं। उपशम निष्पन्न किसे कहते हैं? वह अनेक प्रकार का कहा गया है। उपशान्त क्रोध से लगाकर उपशान्त लोभ तक, उपशान्त राग, उपशान्त दोष (द्वेष), उपशान्त दर्शन-मोहनीय, उपशान्त मोहनीय, उपशमिक सम्यक्त्वलब्धि, उपशमिक चारित्रलब्धि और उपशान्तकषाय छद्मस्थ वीतराग। इसको उपशम निष्पन्न कहते हैं। इस प्रकार उपशमिक भाव का वर्णन किया गया।

क्षायिक किसे कहते हैं? वह दो प्रकार का होता है— क्षायिक और क्षयनिष्पन्न। क्षायिक किसे कहते है? आठों कर्म प्रकृतियों के क्षय को क्षायिक कहते हैं। क्षय-निष्पन्न किसे कहते हैं? वह अनेक प्रकार का है — उत्पन्न हुए ज्ञान और दर्शन के धारक, अर्हन्तजिन, केवली, मतिज्ञानावरणीय को नष्ट करने वाले, श्रुतज्ञानावरणीय को नष्ट करने वाले, अवधिज्ञानावरणीय को नष्ट करने वाले, मनःपर्ययज्ञानावरणीय को नष्ट करने वाले, केवलज्ञानावरणीय को नष्ट करने वाले, केवलदर्शी, सर्वदर्शी; निद्रादर्शनावरणीय को नष्ट करने वाले, निद्रानिद्रा को नष्ट करने वाले, प्रचलादर्शनावरणीय को नष्ट करने वाले, प्रचलाप्रचला को नष्ट करने वाले, स्त्यानगृद्धि को नष्ट करने वाले, चक्षुदर्शनावरणीय को नष्ट करने वाले, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय को नष्ट करने वाले, केवल-

दर्शनावरणीय को नष्ट करने वाले, आवरणरहित, आवरण को निकालने वाले, इस प्रकार दर्शनावरणीय कर्म से सब प्रकार छूटे हुए; साता वेदनीय को नष्ट करने वाले, असाता वेदनीय को नष्ट करने वाले, वेदना रहित, वेदना को दूर करने वाले, वेदना को नष्ट करने वाले, शुभ और अशुभ वेदनीय कर्म से सब प्रकार छूटे हुए; क्रोध मान, माया लोभ को नष्ट करने वाले, प्रेम (राग) को नष्ट करने वाले, दोष को दूर करने वाले, दर्शन मोहनीय को नष्ट करने वाले, चारित्रमोहनीय को नष्ट करने वाले, मोह रहित, मोह को दूर करने वाले, मोह को नष्ट करने वाले—इस प्रकार मोहनीय कर्म से सब प्रकार छूटे हुए; नरक आयु को नष्ट करने वाले, तिर्यंच आयु को नष्ट करने वाले, मनुष्य आयु को नष्ट करने वाले, देव आयु को नष्ट करने करने वाले, आयु कर्म रहित, आयु कर्म को दूर करने वाले, इस प्रकार आयु कर्म से सब प्रकार छूटे हुए; गति, जाति, शरीर, अङ्गोपाङ्ग, बन्धन, संघात, संस्थान और अनेक शरीरों के समूह के संघात से छूटे हुए, शुभ नाम कर्म को नष्ट करने वाले, अशुभ नाम कर्म को नष्ट करने वाले, नाम कर्म रहित, नाम कर्म को दूर करने वाले, नाम कर्म को नष्ट करने वाले और इस प्रकार शुभ तथा अशुभ नाम कर्म से छूटे हुए; उच्च गोत्र कर्म को नष्ट करने वाले, नीच गोत्र कर्म को नष्ट करने वाले, गोत्र रहित, गोत्र कर्म को दूर करने वाले, गोत्र कर्म को नष्ट करने वाले, और इस प्रकार उच्च तथा नीच गोत्र कर्म से सब प्रकार छूटे हुए; दानान्तराय को नष्ट करने वाले, लाभान्तराय को नष्ट करने वाले, भोगान्तराय को नष्ट करने वाले, उपभोगान्तराय को नष्ट करने वाले, वीर्यान्तराय कर्म को नष्ट करने वाले, अन्तराय कर्म रहित, अन्तराय कर्म को दूर करने वाले, अन्तरायकर्म को नष्ट करने वाले—इस प्रकार अन्तराय कर्म से सब प्रकार छूटे हुए; सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, निर्वाण प्राप्त, कर्मों का अन्त करने वाले, सब प्रकार के दुःखों से सर्वथा मुक्त भाव को क्षय निष्पन्न कहते हैं, इस प्रकार क्षायिकभाव का वर्णन किया गया।

क्षायोपशमिक भाव किसे कहते हैं ? वह दो प्रकार का होता है—क्षायोपशमिक और क्षयनिष्पन्न। क्षयोपशम किसे कहते हैं ? चार घातिया कर्मों के क्षयोपशम होने को क्षायोपशमिक कहते हैं। वह इस प्रकार हैं—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय का क्षयोपशम क्षयोपशम कहलाता है। क्षयोपशम निष्पन्न किसे कहते हैं ? वह अनेक प्रकार का कहा गया है—क्षयोपशमिक मतिज्ञान लब्धि से लगाकर क्षयोपशम मनःपर्यय ज्ञान लब्धि तक, क्षयोपशमिक मत्यज्ञान लब्धि, क्षयोपशम श्रुताज्ञानलब्धि, क्षयोपशमिक

विभंगज्ञानलब्धि; क्षयोपशमिक चक्षुदर्शनलब्धि, अचक्षुदर्शनलब्धि, अवधिदर्शनलब्धि, सम्यग्दर्शनलब्धि, मिथ्यादर्शनलब्धि, सम्यक्मिथ्यादर्शनलब्धि, सामायिकचारित्रलब्धि, छेदोपस्थापनालब्धि, परिहारविशुद्धिकलब्धि, सूक्ष्मसाम्परायचारित्रलब्धि, चारित्राचारित्र-लब्धि; क्षयोपशमिक दानलब्धि, लाभलब्धि, भोगलब्धि, उपभोगलब्धि, क्षयोपशमिक वीर्य-लब्धि, इसी प्रकार पंडितवीर्यलब्धि, बालवीर्यलब्धि, बालपंडितवीर्यलब्धि; क्षयोपशमिक कर्णेन्द्रियलब्धि से लगाकर क्षयोपशमिक स्पर्शनेन्द्रियलब्धि तक; क्षयोपशमिक आचा-रांगधारी, इसी प्रकार सूत्रकृतांगधारी, स्थानांगधारी, समवायांगधारी, व्याख्याप्रज्ञप्ति-धारी, ज्ञाताधर्मकथांगधारी, उपासकदशांगधारी, अन्तकृद्दशांगधारी, अनुत्तरोपपातिक-दशांगधारी, प्रश्नव्याकरणांगधारी, विपाकश्रुतधारी, क्षयोपशमिक दृष्टिवादधारी, क्षयोपशमिक नवपूर्व से लगाकर क्षयोपशमिक चतुर्दश पूर्व तक धारण करने वाले, क्षयोपशमिक गणि और क्षयोपशमिक वाचक । यह क्षयोपशम निष्पन्न है। इस प्रकार क्षयोपशमिक भाव का वर्णन हुआ।

पारिणामिक भाव किसे कहते हैं ? वह दो प्रकार का होता है—सादि पारिणा-मिक और अनादि पारिणामिक। सादि पारिणामिक किसे कहते हैं ? वह अनेक प्रकार का बतलाया गया है—पुरानी शराब, पुराना गुड़, पुराना घी और पुराने चावल, बादल, अभ्रवृक्ष (झाड़ के आकार मे परिणमित बादल), सन्ध्या, गन्धर्वों के नगर, उल्कापात, दिशाओं का जलना, गरजती हुई बिजली का शब्द, शुक्लपक्ष के प्रथम तीन दिन मे सन्ध्या समय सूर्य की प्रभा तथा चन्द्रमा की प्रभा का एकत्र होना (यूपक), एक ही दिशा मे थोड़े थोड़े अन्तर से बिजली की सी चमक का दिखाई देना—भूत प्रेत आदि का चमत्कार (यक्षादीप्तक), धुंए के समान दूर से धुंधला दिखाई देने वाला पदार्थ कुहरा (धूमिका), पाला (महिका), धूल के उड़ने के कारण उत्पन्न हुआ अन्धकार-आंधी (रज उद्घात), चन्द्र ग्रहण, सूर्य ग्रहण, चन्द्रमा के आसपास का मण्डल (चन्द्रपरिवेष), सूर्य के आस पास का मण्डल (सूर्यपरिवेष), चन्द्रमा के सामने दूसरे चन्द्रमा का दिखलाई देना—चन्द्रमा की परछाई या प्रतिबिम्ब (प्रतिचन्द्र), सूर्य के सामने दूसरे सूर्य का दिखलाई देना—सूर्य की परिछाई या प्रतिबिम्ब (प्रतिसूर्य), इन्द्र धनुष, इन्द्रधनुष के टुकड़े, आकाश में अकस्मात दिखाई देने वाली भयङ्कर ज्वाला (कपिहसित), बिना बादलों की बिजली (अमोघ); भरत आदि क्षेत्र, भरत आदि

क्षेत्रों की मर्यादा बांधने वाले कुलाचल पर्वत (वर्षधर पर्वत) ग्राम, नगर, घर, पर्वत, पाताल, लोक, नारकी, रत्नप्रभा, शर्करप्रभा, बालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमप्रभा, तमतम प्रभा, सौधर्मस्वर्ग से लगाकर अच्युत स्वर्ग तक, ग्रैवेयक, अनुत्तर, सिद्धशिला (ईषित्प्रागभार), पुद्गल परमाणु, दो प्रदेश वाले से लगाकर अनन्तप्रदेश वाले तक। इन सबको सादि पारिणामिक कहते हैं। अनादिपारिणामिक किसे कहते हैं? धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, अद्धा समय, लोक, अलोक, भव्यत्व, और अभव्यत्व। यह अनादि पारिणामिक भाव हैं। इस प्रकार पारिणामिक भाव का वर्णन किया गया।

संगति—सूत्र में और आगम में दोनों ही स्थानों पर भावों का अपनी २ अपेक्षा दृष्टि से बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है। सूत्र में भावों को केवल जीव द्रव्य की अपेक्षा से लिया गया है। किन्तु आगम में अजीव द्रव्यों की अपेक्षा का भी ध्यान रक्खा गया है। औपशमिक, क्षायिक, और क्षायोपशमिक केवल जीव के ही हो सकते हैं। अत: इन तीनों का वर्णन जीव की ही अपेक्षा से किया गया है। औदायिक तथा पारिणामिक में जीव और अजीव दोनों ही अपेक्षाओं की गुंजायश होने के कारण दोनों अपेक्षादृष्टियों से वर्णन किया गया है।

आगम के औपशमिक भाव के वर्णन में जितने विशेष भेद दिखलाये हैं सूत्र में सम्यक्त्व तथा चारित्र उनका ही विस्तार हैं, जो कि विस्तार दृष्टि वाले आगम की सुन्दरता का ही कारण है।

क्षायिक भाव का वर्णन आगम में सिद्धों की अपेक्षा से किया गया है। क्योंकि परम सिद्ध भगवान् ही उत्कृष्ट क्षायिक भाव के धारक हो सकते हैं। आगम में आरम्भ में अर्हन्त भगवान् को भी क्षायिक भाव का धारक माना है और इसी मत का वर्णन सूत्र में किया गया है। अत: इस वर्णन में भी विशेष कथन ही है।

क्षयोपशम केवल कर्मों को सर्वघाती प्रकृतियों का ही हुआ करता है। सर्वघाती प्रकृतियां केवल घातियाकर्मों की कहलाती हैं। अत: आगम तथा सूत्र दोनों ने चारों घातिया कर्मों के क्षयोपशम को ही क्षायोपशमिक भाव माना है। आगम में उन भेदों के आवान्तर भेदों का भी वर्णन करके विषय को विस्तार पूर्वक लिखा है।

औदयिक भाव के वर्णन में आगम के जीवोदय निष्पन्न में से जीव की अपेक्षा कथन करते हुए सूत्र ने संक्षेप से इक्कीस भेदों का वर्णन किया है। अन्तर केवल इतना है कि सूत्र के अज्ञान के स्थान में आगम ने अज्ञानी और छद्मस्थ को विशेष दृष्टि से पृथक् २ माना है। असंयत को अविरत नाम दिया गया है। इनके अतिरिक्त आगम में छै काय, असंज्ञी, आहारक, सयोगी और संसारी को भी पृथक् भेद माना है जो केवल विस्तृत वर्णन की अपेक्षा से है। तात्विक अतर सूत्र का आगम से इस विषय में भी नहीं है।

अजीवोदय निष्पन्न का वर्णन करते हुए आगम ने पांचों शरीर, उनकी पर्याय तथा उनमें रहने वाले स्पर्श रस, गंध और वर्ण का वर्णन भी किया है जो जीव की अपेक्षा न होने के कारण सूत्रकार ने नहीं लिया है।

परिणामिक भाव के वर्णन में आगम ने पांचों अजीव द्रव्य, उनकी अनेक विविध पर्यायें तथा उन सब के रहने के स्थानों का वर्णन करते हुए अन्त में जीव के भव्यत्व और अभव्यत्व का वर्णन किया है। अत: इन पांचों भावों के वर्णन मे भी सूत्र और आगम में अन्तर नहीं कहा जा सकता। सूत्रकार ने सुखबोध के लिये केवल जीव के ही पारिणामिक भावों का आगम से ग्रहण किया है।

"उपयोगो लक्षणम्

२.८.

उवओगलक्खणे जीवे।

भगवती सूत्र शत० २, उद्देश्य १०.

जीवो उवओगलक्खणो।

उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २८, गाथा १०.

छाया— उपयोगलक्षण: जीव:।

जीव: उपयोगलक्षण:।

भाषा टीका—जीव का लक्षण उपयोग है।

संगति—आगम तथा सूत्र के शब्दों में कितना शब्द साम्य है।

"सद्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ।"

२. ९.

कतिविहे णं भंते! उवओगे पण्णत्ते? गोयमा! दुविहे उवओगे पण्णत्ते, तं जहा—सागारोवओगे, अणागारोवओगे य ॥ १ ॥ सागारोवओगे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते? गोयमा! अट्ठविहे पण्णत्ते।

प्रज्ञापना सूत्र पद २६

अणागारोवओगे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते? गोयमा! चउव्विहे पण्णत्ते।

प्रज्ञापना सूत्र पद २६

छाया— कतिविधः भदन्त! उपयोगः प्रज्ञप्तः? गौतम! द्विविधः उपयोगः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—साकारोपयोगः, अनाकारोपयोगश्च। साकारोपयोगः भदन्त कतिविधः प्रज्ञप्तः? गौतम! अष्टविधः प्रज्ञप्तः?

अनाकारोपयोगः भदन्त! कतिविधः प्रज्ञप्तः? गौतम! चतुर्विधः प्रज्ञप्तः।

प्रश्न—भगवन्! उपयोग कितने प्रकार का बतलाया गया है?

उत्तर—गौतम! उपयोग दो प्रकार का बतलाया गया है—साकारोपयोग और अनाकारोपयोग।

प्रश्न—भगवन्! साकारोपयोग कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर—गौतम! वह आठ प्रकार का कहा गया है।

प्रश्न—भगवन्! अनारोपयोग कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर—गौतम! वह चार प्रकार का कहा गया है।

संगति—यहां भी सूत्र और आगम बिलकुल एक ही बात को बतला रहे हैं। आठ प्रकार का सकारोपयोग पांच ज्ञान तथा तीन अज्ञान रूप है और चार प्रकार का अनाकारोपयोग चार प्रकार का दर्शन है।

"संसारिणो मुक्ताश्च ॥"

२. १०.

दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—सिद्धा चेव असिद्धा चेव।

स्थानांग स्थान २ उद्दे० १ सूत्र, १०१.

संसारसमावन्नगा चेव असंसारसमावन्नगा चेव ॥

स्थानांग स्थान २, उद्दे० १, सूत्र ५७

छाया— द्विविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सिद्धाश्चैव असिद्धाश्चैव । संसारसमापन्नकाश्चैवासंसारसमापन्नकाश्चैव ॥

भाषा टीका — सब प्रकार के जीव दो प्रकार के होते हैं — सिद्ध और असिद्ध, अथवा संसारी और असंसारी ।

संगति — सिद्ध और मुक्त तथा असिद्ध और संसारी का शाब्दिक अन्तर बिलकुल स्पष्ट है ।

"समनस्काऽमनस्काः ॥"

२, ११.

दुविहा नेरइया पण्णत्ता, तं जहा – सन्नी चेव असन्नी चेव, एवं पंचेदिया सव्वे विगलिंदियवज्जा जाव वाणमंतरा वेमाणिया ।

स्थानाङ्ग स्थान २ उद्दे० १ सूत्र ७९

छाया — द्विविधौ नैरयिकौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा – संज्ञी चैव असंज्ञी चैव । एवं पञ्चेन्द्रियाः सर्वे विकलेन्द्रियवर्ज्याः यावत् व्यन्तराः वैमानिकाः ।

भाषा टीका — नारकी दो प्रकार के होते हैं — संज्ञी और असंज्ञी । इसी प्रकार विकलेन्द्रिय के अतिरिक्त व्यन्तर और वैमानिक तक सभी पंचेन्द्रियों के संज्ञी और असंज्ञी भेद होते हैं ।

संगति — जिनके मन हो उनको समनस्क अथवा संज्ञी कहते हैं और जिनके मन न हो उनको अमनस्क अथवा असंज्ञी कहते हैं । इस विषय में सूत्रकार और आगम का केवल शाब्दिक भेद है । एक इन्द्रिय से लगाकर चौइन्द्रिय तक के जीव बिना मन वाले

अमनस्क अथवा असंज्ञी ही होते हैं। अतएव उनमें संज्ञी असंज्ञी की भेद कल्पना नहीं होती। पंचेन्द्रियों में सभी गतियों में यह दोनों भेद होते हैं। सारांश यह है कि संसारी जीवों के भी दो भेद हैं। समनस्क और अमनस्क अथवा संज्ञी और असंज्ञी।

"संसारिणस्त्रसस्थावराः।"

२. १२.

संसारसमावन्नगा तसे चेव थावरा चेव।

स्थानाङ्ग स्थान २ उद्देश्य १ सूत्र ५७

छाया— संसारसमापन्नकाः त्रसाश्चैव स्थावराश्चैव।

भाषा टीका — संसारी जीवों के दो भेद होते हैं — त्रस और स्थावर।

संगति — यहां आगम वाक्य और सूत्र के अक्षर लगभग एक से ही हैं।

"पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः।"

२. १३

पंच थावरा काया पण्णत्ता, तं जहा—इंदे थावरकाए (पुढवीथावरकाए) बंभेथावरकाए (आऊथावरकाए) सिप्पे थावरकाए (तेऊ थावरकाए) संमती थावरकाए (वाऊथावरकाए) पाचावच्चेथावरकाए (वणस्सइथावरकाए)।

स्थानाङ्ग स्थान ५ उद्देश्य १ सूत्र ३९४

छाया— पञ्च स्थावराः कायाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा – पृथिवीस्थावरकायः अप्स्थावरकायः तेजःस्थावरकायः वायुस्थावरकायः वनस्पतिस्थावरकायः।

भाषा टीका — उनमें से भी स्थावर कायों के पांच भेद होते हैं — पृथिवी स्थावर काय, जल स्थावरकाय, अग्नि स्थावरकाय, वायु स्थावरकाय, और वनस्पति स्थावरकाय।

"द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः।"

२, १४.

से किं तं ओराला तसा पाणा? चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया पंचेंदिया।

जीवाभिगम प्रतिपत्ति १ सूत्र २७

छाया— अथ किं ते उदाराः त्रसाः प्राणिनः? चतुर्विधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—द्वीन्द्रियाः, त्रीन्द्रियाः, चतुरिन्द्रियाः पञ्चेन्द्रियाः।

प्रश्न — वह बड़े त्रसजीव कौन से होते हैं?

उत्तर — वह चार प्रकार के कहे गये हैं— द्वीन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय।

"पञ्चेन्द्रियाणि।"

२. १५

कति णं भंते! इंदिया पण्णत्ता? गोयमा! पंचेंदिया पण्णत्ता।

प्रज्ञापना सूत्र १५ इन्द्रियपद उद्दे० १ सू० १९१

छाया—कति भदन्त! इन्द्रियाणि प्रज्ञप्तानि। गौतम! पञ्चेन्द्रियाणि प्रज्ञप्तानि।

प्रश्न — भगवन्! इन्द्रियां कितनी बतलाई गई हैं?

उत्तर — गौतम! इन्द्रियां पांच बतलाई गई हैं।

"द्विविधानि।"

२. १६

कइविहा णं भंते! इंदिया पण्णत्ता? गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—दव्विंदिया य भावव्विंदिया य।

प्रज्ञापना पद १५ उद्देश्य १

छाया— कतिविधानि भदन्त! इन्द्रियाणि प्रज्ञप्तानि? गौतम! द्विविधानि तद्यथा—द्रव्येन्द्रियाणि च भावेन्द्रियाणि च।

प्रश्न — भगवन्! इन्द्रियां कितने प्रकार की बतलाई गई हैं?

उत्तर—गौतम! इन्द्रियां दो प्रकार की बतलाई गई हैं—द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय।

संगति — इन सभी आगम वाक्यों और सूत्रों के अक्षर प्रायः मिलते हैं।

" निर्वृत्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् । "

२. १७.

कइविहे णं भंते! इंदियउवचए पण्णत्ते? गोयमा! पंचविहे इंदियउवचए पण्णत्ते। ....

कइविहे णं भंते! इन्दियणिवत्तणा पण्णत्ता? गोयमा! पंचविहा इन्दियणिवत्तणा पण्णत्ता।

प्रज्ञापना उ० २ पद १५.

छाया— कतिविधः भदन्त! इन्द्रियोपचयः प्रज्ञप्तः? गौतम! पंचविधः इन्द्रियोपचयः प्रज्ञप्तः।

कतिविधा भदन्त! इन्द्रियनिर्वतना प्रज्ञप्ता? गौतम! पञ्चविधा इन्द्रियनिर्वतना प्रज्ञप्ता।

प्रश्न — भगवन्! इन्द्रियोपचय कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर — गौतम! इन्द्रियोपचय पांच प्रकार का कहा गया है।

प्रश्न — भगवन्! इन्द्रिय निर्वतना कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर — गौतम! इन्द्रिय निर्वतना पांच प्रकार की कही गई है।

संगति—सूत्र में द्रव्येन्द्रियों के दो भेद माने हैं—निर्वृति और उपकरण। आगम वाक्य में उपकरण को ही इन्द्रियोपचय कहा गया है।

" लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् । "

२, १८.

कतिविहा णं भंते! इन्दियलद्धी पण्णत्ता? गोयमा! पंचविहा इन्दियलद्धी पण्णत्ता।

प्रज्ञापना उ० २, इन्द्रियपद १५.

कतिविहा णं भंते! इन्दिय उवउगद्धा पण्णत्ता? गोयमा! पंचविहा इन्दियउवउगद्धा पण्णत्ता।

प्रज्ञापना उ० २. इन्द्रियपद १५.

छाया— कतिविधा भदन्त इन्द्रियलब्धिः प्रज्ञप्ता ? गौतम! पंचविधा इन्द्रियलब्धिः प्रज्ञप्ता ।

कतिविधः भदन्त इन्द्रियोपयोगः प्रज्ञप्तः? गौतम! पञ्चविधः इन्द्रियोपयोगः प्रज्ञप्तः ।

प्रश्न—भगवन् ! इन्द्रिय लब्धि कितने प्रकार की बतलाई गई है ?

उत्तर—गौतम ! इन्द्रियलब्धि पांच प्रकार की बतलाई गई है ।

प्रश्न—भगवन् ! इन्द्रियोपयोग कितने प्रकार का बतलाया गया है ?

उत्तर—गौतम ! इन्द्रियोपयोग पांच प्रकार का बतलाया गया है ।

संगति—भावेन्द्रिय के दो भेद होते हैं—लब्धि और उपयोग ।

"स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ।"

२. १९

"स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तदर्थाः ।"

२. २०.

सोइन्दिए चक्खिदिए घाणिंदिए जिब्भिदिए फासिंदिए ।

प्रज्ञापना इन्दिय पद १५

पंच इन्दियत्था पण्णत्ता, तं जहा—सोइन्दियत्थे जाव फासिंदियत्थे ।

स्थानाङ्ग स्थान ५ उद्देश्य ३ सूत्र ४४३

छाया— श्रोत्रेन्द्रियश्चक्षुरिन्द्रियः घ्राणेन्द्रियः जिव्हेन्द्रियः स्पर्शनेन्द्रियः ।

पञ्चेन्द्रियार्थाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा — श्रोत्रेन्द्रियार्थः यावत् स्पर्शनेन्द्रियार्थः ।

भाषा टीका — (इन्द्रियां पांच होती हैं) कर्ण इन्द्रिय, नेत्र इन्द्रिय, घ्राण इन्द्रिय, जिव्हा इन्द्रिय और स्पर्शन इन्द्रिय ।

पांचों इन्द्रियों के विषय भी पांच ही होते हैं — शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श ।

संगति — दोनों सूत्र और आगम वाक्य के अक्षरों में कुछ अन्तर नहीं है ।

" श्रुतमनिन्द्रियस्य । "

२. २१

सुणेइत्ति सुग्रं ।

नन्दि सूत्र २४.

छाया— शृणोतीति श्रुतं ।

भाषा टीका — जिसको सुना जावे उसे श्रुत कहते हैं ।

संगति — व्यवहार पक्ष में सुनने योग्य पदार्थ को बिना मन के पूर्ण उपयोग के ग्रहण नहीं किया जा सकता है। अतः श्रुत ज्ञान केवल मन के विषय द्वारा ही ग्रहण किया जा सकता है ।

" वनस्पत्यन्तानामेकम् । "

२. २२.

से किं तं एगिंदियसंसारसमावन्नजीवपरणवणा ? एगिंदिय-संसारसमावरणजीवपरणवरणा पंचविहा परणत्ता, तं जहा — पुढवीकाइया, आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणस्सइ-काइया ।

प्रज्ञापना प्रथम पद ।

छाया— अथ किं सा एकेन्द्रियसंसारसमापन्नजीवप्रज्ञापना ? एकेन्द्रिय-संसारसमापन्नजीवप्रज्ञापना पञ्चविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा — पृथिवी-कायिका अप्कायिका तेजःकायिका वायुकायिका वनस्पतिकायिका।

प्रश्न — एकेन्द्रिय संसारी जीव किन्हें कहते हैं ?

उत्तर — वह पांच प्रकार के होते हैं — पृथिवी कायिक, जल कायिक, अग्नि कायिक, वायु कायिक और वनस्पति कायिक ।

"कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि । "

२. २३.

किमिया—पिपीलिया—भमरा—मणुस्स इत्यादि ।

प्रज्ञापना प्रथम पद ।

छाया— कृमिका – पिपीलिका – भ्रमरो – मनुष्यः इत्यादि ।

भाषा टीका — कीड़ा, (लट अथवा चावलों का कीड़ा), चींटी, भौंरा और मनुष्य आदि ।

संगति — इनके एक २ इन्द्रिय अधिक होती है ।

'संज्ञिनः समनस्काः ।'

२. २४.

जस्स णं अत्थि ईहा अवोहो मग्गणा गवेसणा चिंता वीमंसा से णं असण्णीति लब्भइ । जस्स णं नत्थि ईहा अवोहो मग्गणा गवेसणा चिंता वीमंसा से णं असन्नीति लब्भइ ।

नन्दिसूत्र सूत्र ४०

छाया— यस्य अस्ति ईहा अपोहो मार्गणा गवेषणा चिंता विमर्शः अथ संज्ञीति लभ्यते । यस्य नास्ति ईहा अपोहो मार्गणा गवेषणा चिन्ता विमर्शः अथ असंज्ञीति लभ्यते ।

भाषा टीका — जिसमें ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा, चिन्ता और विमर्श करने की योग्यता हो उसे संज्ञी कहते हैं । जिसमे ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा, चिन्ता और विमर्श की योग्यता न हो उसे असंज्ञी कहते हैं ।

संगति — ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा, चिन्ता और विमर्श करने की योग्यता को ही मन कहते हैं । अतः मन सहित अथवा समनस्क को संज्ञी और मन रहित अथवा अमनस्क को असंज्ञी कहते हैं ।

'विग्रहगतौ कर्मयोगः ।'

२. २५

कम्मासरीरकायप्पओगे ।

प्रज्ञापना पद १६.

छाया— कार्माणशरीरकायप्रयोगः ।

भाषा टीका — (विग्रह गति में) कार्माण शरीर के काय का प्रयोग होता है ।

संगति — दूसरा शरीर ग्रहण करने के लिये की जाने वाली गति को विग्रह गति कहते हैं । जिस प्रकार चारों गतियों में से मनुष्य तिर्यञ्च गति मे औदारिक शरीर तथा देव नरक गति में वैक्रियिक शरीर साथ रहता है, उसी प्रकार विग्रह गति में कार्माण शरीर का ही काय बनता है और उसी का प्रयोग जीव करता है ।

"अनुश्रेणिः गतिः ।"

२. २६

परमाणुपोग्गलाणं भंते ! किं अणुसेढीं गती पवत्तति विसेढिं गती पवत्तत्ति ? गोयमा ! अणुसेढीं गती पवत्तति नो विसेढिं गती पवत्तति ? दुपएसियाणं भंते ! खंधाणं अणुसेढीं गती पवत्तति विसेढीं गती पवत्तति एवं चेव, एवं जाव अणंतपएसियाणं खंधाणं । नेरइयाणं भंते ! किं अणुसेढीं गती पवत्तति एवं विसेढीं गती पवत्तति एवं चेव, एवं जाव वेमाणियाणं ।

व्याख्याप्रज्ञप्ति शतक २५, उ० ३ सू० ७३०.

छाया— परमाणुपुद्गलानां भदन्त ! किं अनुश्रेणिं गतिः प्रवर्तते विश्रेणिं गतिः प्रवर्तते ? गौतम ! अनुश्रेणिं गतिः प्रवर्तते नो विश्रेणिं गतिः प्रवर्तते । द्विप्रदेशिकानां भदन्त ! स्कन्धानां अणुश्रेणिं गतिः प्रवर्तते विश्रेणिं गतिः प्रवर्तते एवं चैव, एवं यावत् अनन्तप्रदेशिकानां स्कन्धानाम् । नेरयिकाणां भदन्त, किं अनुश्रेणिं गतिः प्रवर्तते एवं विश्रेणिः गतिः प्रवर्तते एवं चैव, एवं यावत् वैमानिकानाम् ।

प्रश्न — भगवन् ! परमाणु और पुद्गलों की गति अनुश्रेणि होती हैं अथवा विश्रेणि (श्रेणि विरुद्ध) होती है ?

उत्तर—गौतम ! उनकी गति अनुश्रेणि ही होती है विश्रेणि नहीं होती ।

प्रश्न — भगवन् ! दो प्रदेश वाले पुद्गल स्कन्धों की गति अनुश्रेणि होती है अथवा विश्रेणि ?

उत्तर — ऐसी ही अनुश्रेणि होती है। और इसी प्रकार अनन्त प्रदेश वाले स्कन्धों तक की भी अनुश्रेणि गति ही होती है।

प्रश्न — भगवन्! नारकियों की गति अनुश्रेणि होती है, अथवा विश्रेणि।

उत्तर — इसी प्रकार अनुश्रेणि गति होती है। और इसी प्रकार वैमानिकों तक की भी अनुश्रेणि गति होती है।

संगति — आगम का कथन विशेष हुआ करता है। अतः इनमें जीव और पुद्गल दोनों की ही गति का वर्णन किया गया है।

"अविग्रहा जीवस्य।"

२, २७.

उज्जूसेढीपडिवन्ने अफुसमाणगई उड्ढं एक्कसमएणं अविग्गहेणं गंता सागारोवउत्ते सिज्झिहिइ।

औपपातिक सूत्र सिद्धाधिकार सू० ४३

छाया— ऋजुश्रेणिप्रतिपन्नः अस्पृशद्गतिः उर्द्ध्वं एकसमयेन अविग्रहेण गत्वा साकारोपयुक्तः सिध्यति।

आकाश प्रदेशों की सरल पंक्ति को प्राप्त होकर, गति करते हुए भी किसी का स्पर्श न करते हुए बिना मोड़ा लिये हुए साकार उपयोग युक्त एक समय में ऊपर को जाकर सिद्ध हो जाता है।

संगति — आगम वाक्य का भी सूत्र के समान यही आशय है कि सिद्धमान् जीव की गति मोड़े रहित (एक समय वाली) होती है।

"विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः।"

२, २८.

णेरइयाणं उक्कोसेणं तिसमतीतेणं विग्गहेणं उववज्जंति एगिंदिवज्जं जाव वेमाणियाणं।

स्थानांग स्थान ३ उद्दे० ४ सूत्र, २२५.

कइसमइएणं विग्गहेणं उववज्जंति? गोयमा! एगसमइएण वा दिसमइएण वा तिसमइएण वा चउसमइएण वा विग्गहेणं उववजन्ति।

व्याख्याप्रज्ञप्ति शतक ३४ उ० १ सू० ८५१.

छाया— नेरइकानां उत्कृष्टेन त्रिसमयेन विग्रहेण उत्पद्यन्ते एकेन्द्रियवर्ज्यं यावत् वैमानिकानाम्।

कतिसमयेन विग्रहेण उत्पद्यन्ते? गौतम! एकसमयेन वा द्विसमयेन वा त्रिसमयेन वा चतुःसमयेन वा विग्रहेण उत्पद्यन्ते।

भाषा टीका — नारकी लोग अधिक से अधिक तीन समय विग्रह गति में लेकर उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न — विग्रह गति में कितना समय लेकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर — गौतम! एक समय, दो समय, तीन समय अथवा चार समय में मोड़ा लेकर उत्पन्न होते हैं।

संगति — सूत्र और आगम वाक्य में बात एक ही कही है, केवल कहने का ढंग भिन्न २ है।

'एकसमयाऽविग्रहा॥'

२, २९.

एगसमइयो विग्गहो नत्थि।

व्याख्याप्रज्ञप्ति शत० ३४, सू० ८५१.

छाया— एक समयकः विग्रहो नास्ति।

भाषा टीका — एक समय वाले को मोड़ा लेना नहीं पड़ता।

संगति — सिद्ध एक समय में ही मोक्ष जाते हैं। अतः उनकी गति सीधी होती है और उस गति में मोड़ा नहीं होता।

'एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः॥'

२, ३०.

अणाहारे णं भंते ! अणाहार एत्ति पुच्छा ? गोयमा ! अणाहारए दुविहे पराणत्ते, तं जहा—छउमत्थअनाहारए, केवलीअणाहारए,………गोयमा ! अजहराणमनुकोसेणं तिरिणसमया ।

प्रज्ञापना पद १८, द्वार १४.

छाया— अनाहारः भदन्तः अनाहारः इति पृच्छा ? गौतम ! अनाहारकः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा — छद्मस्थानाहारकः केवल्यनाहारकः । ………अजघन्यानुक्रोशेण त्रिसमया ।

प्रश्न — भगवन् ! अनाहार किसे कहते हैं ?

उत्तर — अनाहारक दो प्रकार के कहे गये हैं, छद्मस्थ अनाहारक और केवली अनाहारक । अधिक से अधिक तीन समय तक यह जीव अनाहारक रह सकता है ।

सम्मूर्छनगर्भोपपादाज्जन्म ।

२, ३१.

गब्भवक्कन्तिया………

उत्तराध्ययन ३६ गाथा ११७

अंडया पोतया जराउया ………समुच्छिया……… उववाइया ।

दशवैकालिक अध्याय ४ त्रसाधिकार.

छाया— [गर्भव्युत्क्रान्तिकाः] अंडजाः पोतजाः जरायुजाः ……… सम्मूर्छनाः ………औपपादिकाः ।

भाषा टीका — गर्भज (अंडज, पोतज और जरायुज) सम्मूर्छन और औपपादिक जन्म होते हैं ।

सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः

२, ३२.

कइविहाणं भंते ! जोणी पराणत्ता ? गोयमा ! तिविहा जोणी पराणत्ता, तं जहा—सीया जोणी, उसिणा जोणी सीओसिणा

जोणी। तिविहा जोणी पराणत्ता, तं जहा—सचित्ता जोणी, अचित्ता जोणी, मीसिया जोणी। तिविहा जोणी पराणत्ता, तं जहा – संवुडा जोणी, वियडा जोणी, संयुडवियडा जोणी।

प्रज्ञापना योनिपद ६.

छाया— कतिविधा भदन्त! योनिः प्रज्ञप्ता? गोतम! त्रिविधा योनिः प्रज्ञप्ता तद्यथा—शीता योनिः, उष्णा योनिः, शीतोष्णा योनिः। त्रिविधा योनिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा — सचित्ता योनिः, अचित्ता योनिः, मिश्राः योनिः। त्रिविधा योनिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा — संवृता योनिः, विवृता योनिः, संवृतविवृता योनिः।

प्रश्न — भगवन्! योनियां कितने प्रकार की कहीं गई हैं?

उत्तर — गौतम! योनि तीन प्रकार की कही गई है — शीत योनि, उष्ण योनि, और शीतोष्ण योनि। तीन प्रकार की योनि कही गईं हैं – सचित्त योनि, अचित्त योनि और मिश्र योनि। तीन प्रकार की योनि कही गईं हैं– संवृत योनि, विवृत योनि, और संवृतविवृत योनि।

"जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः।

२, ३३.

अंडया पोतया जराउया।

दशवैकालिक अध्याय ४.

गब्भवक्कंतियाय।

प्रज्ञापना १ पद.

छाया— अण्डजाः पोतजाः जरायुजाः, गर्भव्युत्क्रान्तिका च।

भाषा टीका — अण्डज, पोतज और जरायुज गर्भ जन्म वाले होते हैं।

"देवनारकाणामुपपादः॥

२, ३४.

दोगहं उववाए पगगात्ते देवागां चेव नेरइयागां चेव ।

स्थानांग स्थान २ उद्दे० ३, सूत्र ८५.

छाया— द्वयोः उपपादः प्रज्ञप्तः-देवानां चैव नेरयिकानां चैव ।

भाषा टीका — उपपाद जन्म दो के होता है – देवों के और नारकियों के ।

संगति — उपरोक्त सूत्रों का आगमवाक्य से केवल शाब्दिक भेद है ।

"शेषाणां सम्मूर्च्छनम् ॥

२, ३५.

संमुच्छिमाय इत्यादि ।

प्रज्ञापना पद १.
सूत्रकृतांग द्वितीय श्रुत स्कन्ध, तृतीयाध्ययन.

छाया— सम्मूर्च्छनानि च । इत्यादि ।

भाषा टीका — (गर्भ तथा उपपाद जन्म वालों से शेष जीव) सम्मूर्छन होते हैं ।

संगति–आगमवाक्य में इस स्थल पर सम्मूर्छनों का बड़े विस्तार से वर्णन किया है ।

"औदारिकवैक्रियिकाऽऽहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि ॥

२, ३६.

कति गां भंते! सरीरया पगगात्ता? गोयमा! पंच सरीरा पगगात्ता, तं जहा–"औरालिते, वेउव्विए, आहारए, तेयए, कम्मए ।"

प्रज्ञापना शरीरपद २१.

छाया— कति भदन्त! शरीराणि प्रज्ञप्तानि? गौतम! पञ्च शरीराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–औदारिकः, वैक्रियिकः, आहारक, तैजसः, कार्मणम् ।

प्रश्न — भगवन्! शरीर कितने होते हैं?

उत्तर — गौतम्! शरीर पांच कहे गये हैं – औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण।

परं परं सूक्ष्मम्।

२. ३७.

'प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात्।'

२, ३८.

अनन्तगुणे परे।

२, ३९.

सव्वत्थोवा आहारगसरीरा दव्वट्ठयाए वेउव्वियसरीरा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा ओरालियसरीरा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा तेयाकम्मगसरीरा दोवि तुल्ला दव्वट्ठयाए अणंतगुणा, पदेसट्ठाए सव्वत्थोवा आहारगसरीरा पदेसट्ठाए वेउव्वियसरीरा पदेसट्ठाए असंखेज्जगुणा ओरालियसरीरा पदेसट्ठाए असंखेज्जगुणा तेयगसरीरा पदेसट्ठाए अणंतगुणा कम्मगसरीरा पदेसट्ठाए अणंतगुणा इत्यादि।

प्रज्ञापना शरीर पद २१.

छाया— सर्वस्तोकानि आहारकशरीराणि द्रव्यार्थतया वैक्रियिकशरीराणि द्रव्यार्थतया असंख्येयगुणानि औदारिकशरीराणि द्रव्यार्थतया असंख्येयगुणानि तैजसकार्मणशरीरे द्वे अपि तुल्ये द्रव्यार्थतया अनन्तगुणे। प्रदेशार्थतया सर्वस्तोकान्याहारकशरीराणि प्रदेशार्थतया वैक्रियिकशरीराणि प्रदेशार्थतया असंख्येयगुणानि औदारिकशरीराणि प्रदेशार्थतया असंख्येयगुणानि तैजसशरीराणि प्रदेशार्थतया अणंतगुणानि कार्मणशरीराणि इत्यादि।

भाषा टीका — द्रव्यार्थ की अपेक्षा आहारक शरीर सबसे कम होते हैं। द्रव्यार्थ की अपेक्षा वैक्रियिक शरीर उससे असंख्यात गुणे होते हैं। द्रव्यार्थ की अपेक्षा औदारिक शरीर वैक्रियिक से भी असंख्यात गुणे होते हैं। तैजस और कर्माण दोनों ही शरीर द्रव्यार्थ की अपेक्षा बराबर होते हुए औदारिक शरीर से भी अनन्त गुणे होते हैं।

प्रदेशों की अपेक्षा आहारक शरीर सबसे कम होते हैं। वैक्रियिक शरीर प्रदेशों की अपेक्षा आहारक से असंख्यात गुणे होते हैं। उनसे औदारिक शरीर प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यात गुणे होते हैं उनसे प्रदेशों के अर्थ की अपेक्षा तैजस शरीर अनन्त गुणे होते हैं। प्रदेशों के अर्थ की अपेक्षा कार्मण शरीर भी उनसे अनन्त गुणे होते हैं।

संगति — यहां सूत्र और आगम वाक्य में शाब्दिक अंतर ही है।

अप्रतीघाते।

२, ४०.

अप्पडिहयगई।

राजप्रश्नीसूत्र, सूत्र ६६.

छाया— अप्रतिहतगतिः।

भाषा टीका — (इनमें से अन्त के दो तैजस और कार्मण शरीर) की गति किसी वस्तु से नहीं रुकती।

अनादिसम्बन्धे च।

२, ४१.

सर्वस्य।

२, ४२.

तेयासरीरप्पयोगबंधे णं भन्ते! कालओ कालच्चिरं होइ? गोयमा! दुविहे पराणत्ते, तं जहा—अणाइए वा अपज्जवसिए अणाइए वा सपज्जवसिए।

व्याख्याप्रज्ञप्ति सप्तक ८ उ० ९ सू० ३५०.

कम्मासरीरप्पयोगबंधे……… अणाइए सपज्जवसिए अणाइए अपज्जवसिए वा एवं जहा तेयगस्स ।

व्याख्याप्रज्ञप्ति सप्तक ८ उ० ९ सू० ३५१.

छाया— तैजसशरीरप्रयोगबन्धः भदन्त! कालतः कियच्चिरं भवति? गौतम! द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा – अनादिकः वा अपर्यवसितः अनादिकः वा सपर्यवसितः ।

कार्मणशरीरप्रयोगबन्धः ………अनादिकः सपर्यवसितः अनादिकः अपर्यवसितः वा एवं यथा तैजसः ।

प्रश्न — भगवन् ! तैजस शरीर का प्रयोग बंध समय की अपेक्षा कितनी देर तक होता है ।

उत्तर — गौतम ! वह दो प्रकार का होता है । अनादिक और अपर्यवसित (अनन्त) तथा अनादिक सपर्यवसित (सान्त)

तैजस शरीर के ही समान कार्मण शरीर का प्रयोगबंध भी समय की अपेक्षा दो प्रकार का होता है । (अभव्यों के) अनादि और अनन्त तथा (भव्यों के) अनादि तथा सान्त ।

संगति — तैजस और कार्मण शरीर सभी संसारी जीवों के होते हैं । यह भव्यों के अनादि और सान्त होते हैं । किन्तु अभव्यों के यह अनादि और अनन्त होते हैं ।

"तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्याऽऽचतुर्भ्यः"

२, ४३

जस्स णं भंते! ओरालियसरीरं ? गोयमा ! जस्स ओरालियसरीरं तस्स वेउव्वियसरीरं सिय अत्थि सिय णत्थि, जस्स वेउव्वियसरीरं तस्स ओरालियसरीरं सिय अत्थि सिय णत्थि । जस्स णं भंते! ओरालियसरीरं तस्स आहारगसरीरं जस्स आहारगसरीरं तस्स ओरालियसरीरं ? गोयमा ! जस्स ओरालिय-

सरीरं तस्स आहारगसरीरं सिय अत्थि सिय णत्थि, जस्स आहारगसरीरं तस्स ओरालियसरीरं णियमा अत्थि। जस्स णं भंते! ओरालियसरीरं तस्स तेयगसरीरं, जस्स तेयगसरीरं तस्य ओरालियसरीरं? गोयमा! जस्स ओरालियसरीरं तस्स तेयगसरीरं णियमा अत्थि, जस्स पुण तेयगसरीरं तस्सओरालियसरीरं सिय अत्थि सिय णत्थि। एवं कम्मसरीरे वि। जस्स णं भंते! वेउव्वियसरीरं तस्स आहारगसरीरं, जस्स आहारगसरीरं तस्स वेउव्वियसरीरं? गोयमा! जस्स वेउव्वियसरीरं तस्स आहारगसरीरं णत्थि, जस्स पुण आहारगसरीरं तस्स वेउव्वियसरीरं णत्थि। तेयाकम्माइं जहा ओरालिएणं सम्मं तहेव, आहारगसरीरेण वि सम्मं तेयाकम्माइं तहेव उच्चारियव्वा। जस्स णं भंते! तेयगसरीरं तस्स कम्मगसरीरं जस्स कम्मगसरीरं तस्स तेयगसरीरं? गोयमा! जस्स तेयगसरीरं तस्स कम्मगसरीरं णियमा अत्थि, जस्स वि कम्मगसरीरं तस्स वि तेयगसरीरं णियमा अत्थि।

प्रज्ञापना पद २१.

छाया— यस्य भदन्त! औदारिकशरीरं ? गौतम! यस्य औदारिकशरीरं तस्य वैक्रयिकशरीरं स्यादस्ति स्यान्नास्ति। यस्य वैक्रयिकशरीरं तस्य औदारिकशरीरं स्यादस्ति स्यान्नास्ति। यस्य भदन्त! औदारिकशरीरं तस्य आहारकशरीरं, यस्य आहारकशरीरं तस्य औदारिकशरीरं? गौतम! यस्य औदारिकशरीरं तस्य आहारकशरीरं स्यादस्ति स्यान्नास्ति। यस्य आहारकशरीरं तस्य औदारिकशरीरं नियमादस्ति। यस्य भदन्त! औदारिकशरीरं तस्य तैजसशरीरं, यस्य तैजसशरीरं तस्य औदारिकशरीरं ? गौतम!

यस्य औदारिकशरीरं तस्य तैजसशरीरं नियमादस्ति। यस्य पुनः तैजसशरीरं तस्य औदारिकशरीरं स्यादस्ति स्यान्नास्ति। एवं कार्मणशरीरेऽपि। यस्य भदन्त! वैक्रियिक शरीरं तस्य आहारक-शरीरं यस्य आहारकशरीरं तस्य वैक्रियिकशरीरं ? गौतम! यस्य वैक्रियिकशरीरं तस्य आहारकशरीरं नास्ति। यस्य पुनः आहारकशरीरं तस्य वैक्रियिकशरीरं नास्ति। तैजसकार्मणे यथा औदारिकः सम्यक् तथैव। आहारकशरीरेणापि सम्यक् तैजसकार्मणे तथैव उच्चारितव्ये। यस्य भदन्त! तैजसशरीरं तस्य कार्मणशरीरं यस्य कार्मणशरीरं तस्य तैजसशरीरं ? गौतम! यस्य तैजसशरीरं तस्य कार्मणशरीरं नियमादस्ति, यस्यापि कार्मणशरीरं तस्यापि तैजसशरीरं नियमादस्ति।

प्रश्न — भगवन्! जिसके औदारिक शरीर हो उसके और क्या २ हो सकते हैं ?

उत्तर — गौतम! जिसके औदारिक शरीर हो उसके वैक्रियिक शरीर हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता। जिसके वैक्रियिक शरीर हो उसके औदारिक शरीर हो भी और न भी हो।

प्रश्न — भगवन्! जिसके औदारिक शरीर हो क्या उसके आहारक शरीर होता है, और क्या आहारक शरीर वाले के औदारिक शरीर होता है ?

उत्तर — गौतम! जिसके औदारिक शरीर हो उसके आहारक शरीर हो भी या न भी हो, किन्तु जिसके आहारक शरीर हो उसके औदारिक शरीर भी नियम से होता है।

प्रश्न — भगवन! क्या औदारिक शरीर वाले के तैजस होता है और तैजस वाले के औदारिक शरीर होता है।

उत्तर — गौतम! जिसके औदारिक शरीर हो उसके तैजस नियम से होता है, किन्तु जिसके तैजस हो उसके औदारिक शरीर हो भी अथवा न भी हो। इसी प्रकार कार्मण शरीर का भी नियम है।

प्रश्न — भगवन्! क्या जिसके वैक्रियिक शरीर हो उसके आहारक शरीर होगा और जिसके आहारक शरीर हो उसके वैक्रियिक शरीर होगा ?

उत्तर — गौतम ! जिसके वैक्रियिक हो उसके आहारक नहीं होता । जिसके आहारक हो उसके वैक्रियिक शरीर नहीं होता ।

तैजस और कार्मण शरीर औदारिक वाले के समान वैक्रियिक वाले के भी होते हैं, आहारक शरीर वाले के साथ भी तैजस कार्मण होते हैं ।

प्रश्न — भगवन् ! क्या तैजस शरीर वाले के कार्मण शरीर होता है और कार्मण शरीर वाले के तैजस शरीर होता है ?

उत्तर — गौतम ! तैजस वाले के कार्मण शरीर नियम से होता है और कार्मण वाले के तैजस शरीर नियम से होता है ।

निरुपभोगमन्त्यम् ।

२, ४४.

विग्गहगइसमावन्नगाणं नेरइयाणं दोसरीरा पण्णत्ता, तं जहा—तेयए चेव कम्मए चेव । निरंतरं जाव वेमाणियाणं ।

स्थानांग स्थान २ उद्दे० १ सूत्र ७६.

जीवे णं भंते! गब्भं वक्कममाणे किं ससरीरी वक्कमइ, असरीरी वक्कमइ? गोयमा! सिय ससरीरी वक्कमइ सिय असरीरी वक्कमइ । से केणट्ठेणं? गोयमा! ओरालियवेउव्विय-आहारयाइं पडुच्च असरीरी वक्कमइ । तेयाकम्माइं पडुच्च ससरीरी वक्कमइ ।

भगवती० शतक १ उद्दे० ७.

छाया— विग्रहगतिसमापन्नकानां नैरयिकानां द्विशरीरे प्रज्ञप्ते, तद्यथा — तैजसश्चैव, कार्मणञ्चैव, निरंतरं यावत् वैमानिकानां ।

जीवो भगवन् ! गर्भं व्युत्क्रामन् किं सशरीरी व्युत्क्रामति, अशरीरी व्युत्क्रामति ? गौतम ! स्यात् सशरीरी व्युत्क्रामति स्यात् अशरीरी व्युत्क्रामति । तत् केनार्थेन ? गौतम ! औदारिक–वैक्रियिक–आहारकाणि प्रतीत्य अशरीरी व्युत्क्रामति । तैजसकार्मणे प्रतीत्य सशरीरी व्युत्क्रामति ।

भाषा टीका — विग्रहगति को प्राप्त करने वाले नारकियोंके दो शरीर होतेहैं। तैजस और कार्माण। इसी प्रकार सब गतियों में वैमानिक देवों तक के तैजस और कार्मण होते हैं।

प्रश्न — भगवन्! जीव गर्भ धारण करने के लिये शरीर सहित जाता है अथवा शरीर रहित जाता है?

उत्तर — गौतम! कथञ्चित् यह शरीर सहित जाता है और कथञ्चित यह शरीर रहित जाता है।

प्रश्न — वह किस कारण से?

उत्तर — गौतम! औदारिक, वैक्रियिक, आहारक की अपेक्षा से शरीर रहित गमन करता है तथा तैजस कार्मण की अपेक्षा से शरीर सहित गमन करता है।

संगति — उपरोक्त कथन से प्रगट किया गया है कि यद्यपि कार्मण भी शरीर है किन्तु वह उपभोग रहित है।

गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यम्।

२, ४५

उरालिअसरीरे णं भंते कतिविहे पण्णत्ते? गोयमा! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा – समुच्छिम·········गब्भवक्कंतिय।

प्रज्ञापना पद २१.

छाया— औदारिकशरीरं भगवन कतिविधं प्रज्ञप्तं? गौतम! द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा – सम्मूर्छनम्········ गर्भव्युत्क्रांतिकम्।

प्रश्न — भगवन! औदारिक शरीर कितने प्रकार का बतलाया गया है।

उत्तर — गौतम! वह दो प्रकार का बतलाया गया है — सम्मूर्छन जन्म वालों के और गर्भ जन्म वालों के।

औपपादिकं वैक्रियिकम्।

२, ४६.

णेरइयाणं दो सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा – अब्भंतरगे चेव

बाहिरगे चेव, अब्भंतरए कम्मए बाहिरए वेउव्विए, एवं देवाणं।

स्थानांग स्थान २, उद्देश्य १ सूत्र ७५.

छाया— नारकाणां द्वे शरीरके प्रज्ञप्ते, तद्यथा – आभ्यन्तरं चैव बाह्यं चैव, आभ्यन्तरं कर्मकं बाह्यं वैक्रियिकं, एवं देवानाम्।

भाषा टीका — नारकियों के दो शरीर कहे गये हैं — आभ्यन्तर और बाह्य। आभ्यन्तर शरीर कार्मण होता है। और बाह्य वैक्रियिक होता है। इसी प्रकार देवों के भी होता है।

लब्धिप्रत्ययञ्च।

२, ४७.

वेउव्वियलद्धीए।

औपपातिकम् सूत्र ४०.

छाया— वैक्रियिकलब्धिकम्।

भाषा टीका — वैक्रियिक शरीर ऋद्धि के द्वारा भी प्राप्त होता है।

तैजसमपि।

२, ४८.

तिहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे संखित्तविउलतेउलेस्से भवति, तं जहा – आयावणताते १ खंतिखमाते २ अपाणगेणं तवो कम्मेणं ३।

स्थानांग स्थान ३ उद्देश्य ३ सूत्र १८२.

छाया— त्रिभिः स्थानैः श्रमणः निर्ग्रन्थः संक्षिप्तविपुलतेजोलेश्यः भवति – तद्यथा, आतापनतया, क्षान्तिक्षमया, अपानकेन तपःकर्म्मणा।

भाषा टीका — तीन स्थानों से श्रमण निर्ग्रन्थ संक्षेप की हुई अधिक तेज लेश्या वाले होते हैं — धूप में तपने से, शान्ति और क्षमा से और जल बिना पिये हुए तप करके।

संगति — इन आगमवाक्यों में सूत्रों से केवल कुछ शब्दों का ही भेद है।

शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकंप्रमत्तसंयतस्यैव ।

२, ४९.

आहारकसरीरे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते? गोयमा! एगागारे पण्णत्ते ......प्रमत्तसंजय समदिट्ठि समचउरंस संठाण संठिए पण्णत्ते ।

प्रज्ञापना पद २१ सूत्र २७३.

छाया— आहारकः भगवन्! कतिविधः प्रज्ञप्तः? गौतम! एकाकारः प्रज्ञप्तः ....प्रमत्तसंजयसम्यग्दृष्टिः........समचतुरंस्रसंस्थानसंस्थितः प्रज्ञप्तः ।

प्रश्न — भगवन्! आहारक शरीर कितने प्रकार का होता है?

उत्तर — गौतम! आहारक का एक ही आकार होता है। यह प्रमत्त संयत सम्यग्दृष्टि के ही होता है तथा इसका आकार समचतुरस्रसंस्थान रूप होता है।

नारकसम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि ।

२. ५०.

तिविहा नपुंसगा पण्णत्ता, तं जहा—णेरतियनपुंसगा तिरिक्खजोणियनपुंसगा मणुस्सनपुंसगा ।

स्थानांग स्थान ३ उद्दे० १ सूत्र १३१.

छाया— त्रिविधानि नपुंसकानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—नारकनपुंसकानि, तिर्यग्योनिनपुंसकानि मनुष्यनपुंसकानि ।

भाषा टीका — नपुंसक तीन प्रकार के होते हैं — नारक नपुंसक, तिर्यंच नपुंसक और मनुष्य नपुंसक ।

न देवाः ।

२. ५१.

असुरकुमारा णं भंते! किं इत्थीवेया पुरिसवेया नपुंसग-

वेया ? गोयमा ! इत्थीवेया पुरिसवेया णो नपुंसगवेया ....
जहा असुरकुमारा तहा वाणमंतरा जोइसिय वेमाणियावि ।

समवायाङ्ग वेदाधिकरण सूत्र १५६.

छाया— असुरकुमाराः भगवन् ! किं स्त्रीवेदाः पुरुषवेदाः नपुंसकवेदाः ? गौतम ! स्त्रीवेदाः पुरुषवेदाः नो नपुंसकवेदाः.........यथा असुरकुमारा तथा वानव्यन्तराः ज्योतिष्कवैमानिकारपि ।

प्रश्न — भगवन् ! असुरकुमार स्त्रीवेद वाले होते हैं, पुरुषवेद वाले होते हैं अथवा नपुसक वेद वाले होते हैं ?

उत्तर — गौतम ! वह स्त्री और पुरुष वेद वाले ही होते हैं नपुंसक नहीं होते ।

असुरकुमारों के समान ही शेष भुवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक भी स्त्री तथा पुरुष वेद वाले ही होते हैं, नपुंसक नहीं होते ।

शेषास्त्रिवेदाः ।

२, ५२.

भाषा टीका — इनसे बचे हुए शेष जीव तीनों वेद वाले होते हैं ।

संगति — आगम ग्रन्थों में इस विषय का बहुत विस्तार से विवरण दिया गया है । छोटी पंक्ति उपलब्ध न होने से कोई भी पंक्ति न उठायी जा सकी ।

औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ।

२, ५३.

दो अहाउयं पालेंति देवाण चेव णेरइयाणं चेव ।

स्थानांग स्थान २, उ० ३, सूत्र ८५.

देवा नेरइयावि य असंखवासाउया य तिरमणुआ ।
उत्तमपुरिसा य तहा चरम सरीरा य निरुवकमा ॥

इति ठाणांगवित्तीए.

छाया— द्वौ यथायुष्कं पालयतः देवानां चैव नैरयिकाणाञ्चैव ।
देवाः नैरयिकारपि च असंख्यवर्षाऽऽयुष्काश्च तिर्यग्मनुष्याः ॥
उत्तमपुरुषाश्च तथा चरमशरीराश्च निरुपक्रमाः ॥

भाषा टीका — दो की पूर्ण आयु होती है — देवों की और नारकियों की । देव, नारकी, भोगभूमि वाले तिर्यंच और मनुष्य, उत्तम पुरुष और चरमशरीरियों की बंधी हुई आयु नहीं घटती ।

संगति — इन सभी आगम वाक्यों का सूत्र वाक्यों के साथ केवल मात्र शाब्दिक भेद है ।

इति श्री-जैनमुनि-उपाध्याय-श्रीमदात्माराम-महाराज-संगृहीते
तत्त्वार्थसूत्रजैनाऽऽगमसमन्वये:

❀ द्वितीयाऽध्यायः समाप्तः ॥ २ ॥ ❀

———:o:———

तृतीयाऽध्यायः

———:०:———

रत्नशर्कराबालुकापङ्कधूमतमोमहातमः प्रभा भूमयो घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः ॥

३. १.

कहि णं भंते ! नेरइया परिवसंति ? गोयमा ! सट्ठाणे णं सत्तसु पुढवीसु, तं जहा – रयणप्पाए, सक्करप्पभाए, बालुयप्पभाए, पंकप्पभाए, धूमप्पभाए, तमप्पभाए, तमतमप्पभाए ।

प्रज्ञापना नरकाधिकार पद २.

अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुडवीए, अहे घणोदधीति वा घणवातेति वा तणुवातेति वा ओवासंतरेति वा । हंता अत्थि एवं जाव अहे सत्तमाए ।

जीवाभि० प्रतिप० २ सू० ७०-७१

छाया— कुत्र भगवन ! नैरयिकाः परिवसन्ति ? गौतम ! स्वस्थाने सप्तसु पृथ्वीषु तद्यथा–रत्नप्रभायां, शर्करप्रभायां, बालुकप्रभायां, पङ्कप्रभायां, धूमप्रभायां, तमःप्रभायां, तमःतमःप्रभायाम् ।

अस्ति भगवन ! अस्याः रत्नप्रभायाः पृथिव्याः अधस्तात् घनोदधीति वा घनवातेति वा तनुवातेति वा आकाशान्तरः इति वा । हन्त ! अस्ति एवं यावत् अधस्तात् सप्तमा ।

प्रश्न — भगवन् ! नारकी कहां रहते हैं ?

उत्तर — गौतम ! वह अपने स्थान सातों पृथिवियो में रहते है । जिनके नाम यह है — रत्नप्रभा, शकरप्रभा, बालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा, तमतमप्रभा ।

इस रत्नप्रभा पृथिवी के बाहिर घनोदधिवातवलय है, उसके बाहिर घन वातवलय है, उसके भी बाहिर तनु वातवलय है और सबसे बाहिर आकाश है, इसी प्रकार नीचे २ सातवीं पृथ्वी तक है।

संगति — आगम वाक्य तथा सूत्र में शाब्दिक भेद ही है।

तासु त्रिंशत्पञ्चविंशतिपञ्चदशदशत्रिपञ्चोनैकनरकशतसहस्राणि पंच चैव यथाक्रमम्। ३. २.

तीसा य पन्नवीसा पण्णरस दसेव तिरिणा य हवंति।
पंचूणसहसहस्सं पंचेव अणुत्तरा णरगा।

जीवाभिगम प्रतिपत्ति ३ सूत्र ६१
प्रज्ञापना पद २ नरकाधिकार

छाया— त्रिंशतश्च पञ्चविंशतयः पञ्चदशाः दशाः एव त्रयश्च भवन्ति।
पञ्चोनशतसहस्राः पञ्चैव अनुत्तराः नरकाः॥

भाषा टीका — प्रथम नरक में तीस लाख, द्वितीय में पच्चीस लाख, तृतीय में पन्द्रह लाख, चतुर्थ में दस लाख, पञ्चम में तीन लाख, छटे मे पांच कम एक लाख और सातवें में कुल पांच ही नरक हैं।

नारकाः नित्याऽशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः। ३. ३.

परस्परोदीरितदुःखाः। ३. ४.

.... अण्णमण्णस्य कायं अभिहणमाणा वेयणं उदीरेंति इत्यादि। जीवाभिगम० प्रतिपत्ति ३ उद्दे० २ सूत्र ८९

इमेहिं विवहेहिं आउहेहिं किं ते मोग्गरभुसंढिकरकय सत्ति हलगय मुसल चक्क कुन्त तोमर सूल लउड भिंडिमालि सव्वल पट्टिस चम्मिट्ठ दुहण मुट्ठिय असिखेडग खग्ग चाव नाराय कणगकप्पिणि वासि परसु टंकतिक्ख निम्मल अणोहिं एवमादिहिं असुभेहिं वेउव्विएहिं पहरणसत्तेहिं अणुबन्धतिव्ववेरा परोप्परं वेयणं उदीरन्ति ।

प्रश्नव्याकरण अध्याय १ नरकाधिकार

ते णं णरगा अंतोवट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणा संठिया णिच्चंधयारतमसा ववगयगहचंदसूरणक्खत्तजोइसप्पहा, मेदवसापूयपडलरुहिरमंसचिक्खललित्ताणुलेवणतला, असुईवीसा परमदुब्भिगंधा काऊगणिवण्णाभा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा णरगा असुभाओ णरगेसु वेअणाओ इत्यादि ।

प्रज्ञापना पद २, नरकाधिकार.

नेरइयाणं तओ लेसाओ पण्णत्ता, तं जहा—कण्हलेस्सा नीललेस्सा काऊलेस्सा ।

स्थानांग स्थान ३, उ० १, सूत्र १३२

अतिसीतं, अतिउण्हं, अतितण्हा, अतिखुहा, अतिभयं वा, णिरए णेरइयाणं दुक्खसयाइं अविस्सामं ।

जीवाभिगम० प्रतिपत्ति ३, सूत्र ९५.

छाया— .....अन्योन्यस्य कायं अभिहन्यमानाः वेदनां उदीरयन्ति इत्यादि ।

एभिः विविधैः आयुधैः किं ते मुद्गरभुसण्ढिक्रकचशक्तिहलगदा-मुशलचक्रकुन्ततोमरशूललकुटभिंडिमालसद्वलपट्टिशचर्मवेष्टितद्रुघण-मुष्टिकासिखेटकखड्गचापनाराचकनककल्पिनी-कासीपरशुटंकतीक्ष्ण-

निर्मलान्यैः एवमादिभिः अशुभैः विक्रियैः प्रहरणशतैः अनुबद्ध-तीव्रवैराः परस्परं वेदनं उदीरयन्ति ।

ते नरकाः अन्तर्वृत्ता बहिश्चतुरंस्रा अधस्तात् क्षुरप्रसंस्थाना संस्थिता नित्यान्धकारतमसा व्यपगतग्रहचन्द्रसूर्यनक्षत्रज्योतिष्कप्रभा मेदवसा-पूतिपटलरुधिरमांसचिक्खललिप्तानुलेपनतला अशुचिविश्राः परम-दुर्गन्धाः कापोताग्निवर्णाभाः कर्कशस्पर्शाः दुरधिसहाः अशुभाः नरकाः अशुभनरकेषु वेदनाः इत्यादि ।

नैरयिकाणां तिस्रः लेश्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या ।

अतिशीतं अत्युष्णं, अतितृष्णा, अतिक्षुधा, अतिभयं वा नरके नैरयिकाणां दुःखमसातं अविश्रामं इत्यादि ।

भाषा टीका — वहां परस्पर एक दूसरे के शरीर को पीड़ा देते हुए वेदना उत्पन्न करते हैं ।

अनेक प्रकार के शस्त्र—मुद्गर, मुसण्ढि (बन्दूक), क्रकच (आरा) शक्ति, हल, गदा, मूसल, चक्र, कुत (बर्छी), तोमर, शूल, लकड़ी, भिंडिपाल, सद्दल, पट्टिश, चमड़े में लिपटा हुआ मुद्गर, मुस्टिक, तलवार, खेटक, चक्र, धनुष बाण, कनक कल्पिनी नाम का बाण भेद, कासी (बिसौला), परशु (कुल्हाड़ा) की तेज धार तथा अन्य अशुभ विक्रि-याओं से सैकड़ों चोट करते हुए तीव्र वैर का बन्धन करके एक दूसरे को वेदना उत्पन्न करते हैं ।

वह नरक के बिल अन्दर से गोल, बाहिर से चौकोर, तथा नीचे छुरी की रचना के समान हैं । वहाँ सदा गहन अन्धकार रहता है—ग्रह, चन्द्र, सूर्य और नक्षत्र ज्योतिष्कों का प्रकाश कभी नहीं पहुँचता । चर्बी, राध, रुधिर और मांस की कीचड़ से सब ओर पुते हुए, अपवित्र आसन वाले, परम दुर्गन्ध वाले, मैली अग्नि के समान वर्ण की कान्ति वाले, कर्कश स्पर्श वाले, कठिनता से सहे जाने योग्य, अशुभ होतेहैं । उनके कष्ट भी अशुभ ही होते हैं । इत्यादि ।

नारकियों के तीन लेश्या होती हैं — कृष्णलेश्या, नीललेश्या, और कापोतलेश्या ।

नरक में नारकियों को शीत लगता है, अत्यन्त गर्मी लगती है, अत्यन्त प्यास लगती है, अत्यन्त भूख लगती है और अत्यन्त भय लगता है। वहां तो केवल दुःख, असाता और अविश्राम ही है।

संक्लिष्टाऽसुरोदीरितदुःखाश्च प्राक्चतुर्थ्याः । ३, ५.

प्र०—किं पत्तियं णं भंते! असुरकुमारा देवा तच्चं पुढविं गया य गमिस्संति य?

उ०—गोयमा! पुव्ववेरियस्स वा वेदणउदीरणयाए, पुव्वसंगइस्स वा वेदणाउवसामणयाए, एवं खलु असुरकुमारा देवा तच्चं पुढविं गया य, गमिस्संति य।

व्याख्याप्रज्ञप्ति शतक ३, उ० २, सू० १४२.

छाया— प्र०—किं प्रत्ययं भगवन्! असुरकुमारा देवास्तृतीयां पृथिवीं गताश्च, गमिष्यन्ति च।

उ०—गौतम! पूर्ववैरिकस्य वा वेदनोदीरणतया, पूर्वसंगतस्य वा वेदनोपशमनतया, एवं खलु असुरकुमाराः देवास्तृतीयां पृथिवीं गताश्च गमिष्यन्ति च।

प्रश्न — भगवन्! असुरकुमार देव तृतीय पृथिवी तक किस कारण से गये थे जाते हैं तथा किस कारण से जायंगे?

उत्तर — गौतम! पूर्व वैर की वेदना की उदीरणता से तथा पूर्व वेदना को उपशमन करने के लिये असुरकुमार देव तृतीय पृथ्वी तक जाया करते हैं।

तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्वानां परा स्थितिः । ३, ६.

सागरोवममेगं तु, उक्कोसेण वियाहिया।
पढमाए जहन्नेणं, दसवाससहस्सिया ॥ १६० ॥

तिएणेव सागरा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया ।
दोच्चाए जहन्नेणं, एगं तु सागरोवमं ॥ १६१ ॥
सत्तेव सागरा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया ।
तइयाए जहन्नेणं, तिएणेव सागरोवमा ॥ १६२ ॥
दस सागरोवमा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया ।
चउत्थीए जहन्नेणं, सत्तेव सागरोवमा ॥ १६३ ॥
सत्तरस सागरा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया ।
पंचमाए जहन्नेणं, दस चेव सागरोपमा ॥ १६४ ॥
बावीससागरा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया ।
छट्ठीए जहन्नेणं, सत्तरस सागरोवमा ॥ १६५ ॥
तेत्तीस सागरा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया ।
सत्तमाए जहन्नेणं, बावीसं सागरोवमा ॥ १६६ ॥

उत्तराध्ययन अध्याय ३६.

छाया— सागरोपममेकं तु, उत्कर्षेण व्याख्याता ।
प्रथमायां जघन्येन, दशवर्षसहस्रिका ॥ १६० ॥
त्रीण्येव सागरोपमाणि तु, उत्कर्षेण व्याख्याता ।
द्वितीयायां जघन्येन, एकं तु सागरोपमम् ॥ १६१ ॥
सप्तैव सागरोपमाणि तु, उत्कर्षेण व्याख्याता ।
तृतीयायां जघन्येन, त्रीण्येव सागरोपमाणि ॥ १६२ ॥
दश सागरोपमाणि तु, उत्कर्षेण व्याख्याता ।
चतुर्थ्यां जघन्येन, सप्तैव तु सागरोपमाणि ॥ १६३ ॥
सप्तदश सागरोपमाणि तु, उत्कर्षेण व्याख्याता ।
पञ्चमायां जघन्येन, दश चैव सागरोपमाणि ॥ १६४ ॥

द्वाविंशतिः सागरोपमाणि तु, उत्कर्षेण व्याख्याता।
षष्ठ्यां जघन्येन, सप्तदश सागरोपमाणि ॥ १६५ ॥
त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि तु, उत्कर्षेण व्याख्याता।
सप्तम्यां जघन्येन, द्वाविंशतिः सागरोपमाणि ॥ १६६ ॥

भाषा टीका — प्रथम नरक की जघन्य स्थिति दश सहस्र वर्ष तथा उत्कृष्ट आयु एक सागर है ॥ १६० ॥ द्वितीय नरक की जघन्य आयु एक सागर तथा उत्कृष्ट आयु तीन सागर है ॥ १६१ ॥ तीसरे नरक की जघन्य आयु तीन सागर तथा उत्कृष्ट आयु सात सागर है ॥ १६२ ॥ चौथे नरक की जघन्य आयु सात सागर तथा उत्कृष्ट आयु दश सागर है ॥ १६३ ॥ पञ्चम नरक की जघन्य आयु दश सागर तथा उत्कृष्ट आयु सतरह सागर है ॥ १६४ ॥ छटे नरक की जघन्य आयु सतरह सागर तथा उत्कृष्ट आयु बाइस सागर है ॥ १६५ ॥ सातवें नरक की जघन्य आयु बाईस सागर है तथा उत्कृष्ट आयु तेंतीस सागर है ॥ १६६ ॥

संगति — इस प्रकार नरकों के वर्णन में सूत्र और आगम वाक्यों में संक्षेप विस्तार के अतिरिक्त और कुछ भेद नहीं है।

जम्बूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः।

३, ७

असंखेज्जा जंबुद्दीवा नामधेज्जेहिं पण्णत्ता, केवतिया णं भंते! लवणसमुद्दा पण्णत्ता? गोयमा! असंखेज्जा लवणसमुद्दा नामधेज्जेहिं पण्णत्ता, एवं धायतिसंडावि, एवं जाव असंखेज्जा सूरदीवा नामधेज्जेहि य। एगे देवे दीवे पण्णत्ते एगे देवोदे समुद्दे पण्णत्ते, एवं णागे जक्खे भूते जाव एगे सयंभूरमणे दीवे एगे सयंभूरमणसमुद्दे णामधेज्जेणं पण्णत्ते।

जीवाभिगम प्रतिपत्ति ३, उ० २, सू० १८६ द्वीपसमुद्राधिकार.

जावतिया लोगे सुभा णामा सुभा वण्णा जाव सुभा फासा एवतिया दीवसमुद्दा नामधेज्जेहिं पण्णत्ता ।

जीवाभिगम प्रतिपत्ति ३, उ० २ सू० १८९.

छाया— असंख्येयाः जम्बूद्वीपाः नाम्ना प्रज्ञप्ताः । कियन्तो भगवन् ! लवणसमुद्राः प्रज्ञप्ताः ? गौतम ! असंख्येयाः लवणसमुद्राः नामधेयैः प्रज्ञप्ताः, एवं धातकीषण्डाः अपि, एवं यावत् असंख्येयाः सूर्यद्वीपाः नामधेयैः च । एकदेवद्वीपः प्रज्ञप्तः, एकः देवोदधिसमुद्रः प्रज्ञप्तः, एवं नागः यक्षः भूतः यावत् एकः स्वयम्भूरमणः द्वीपः एकः स्वयम्भूरमणसमुद्रः नाम्ना प्रज्ञप्तः ।

यावन्ति लोके शुभानि नामानि शुभा वर्णाः यावत् शुभाः स्पर्शाः एतावन्तो द्वीपसमुद्राः नामधेयैः प्रज्ञप्ताः ।

भाषा टीका — जम्बूद्वीप नाम के असंख्यात द्वीप कहे गये हैं ।

प्रश्न — भगवन् ! लवण समुद्र कितने हैं ?

उत्तर — लवणसमुद्र नाम के असंख्यात द्वीप कहे गये हैं । इसी प्रकार धातकीखण्ड नाम के असंख्यात द्वीप कहे गये हैं । इसी प्रकार सूर्यद्वीप तक असंख्यात नाम वाले हैं । देवद्वीप नाम का एक ही द्वीप है । देवोदधि समुद्र भी एक ही है । इसी प्रकार नाग, यक्ष, और भूत से लगाकर स्वयंभूरमण द्वीप तक एक २ ही हैं । स्वयंभूरमण नाम का समुद्र भी एक ही है ।

लोक में जितने भी शुभ नाम और शुभ वर्ण से लगाकर शुभ स्पर्श तक हैं उतने ही द्वीप और समुद्र कहे गये हैं ।

द्विर्द्विर्विष्कम्भाःपूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः ।

३, ८.

जंबूदीवं णाम दीवं लवणे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता णं चिट्ठति ।

जीवाभिगम प्रतिपत्ति ३ उ० २ सू० १५४.

जंबूदीवाइया दीवा लवणादीया समुद्दा संठाणतो एकविह-विधाणा वित्थारतो अणेगविधविधाणा दुगुणादुगुणे पडुप्पाएमाणा पवित्थरमाणा ओभासमाणवीचीया।

जीवाभिगम प्रतिपत्ति ३, उ० २, सू० १२३.

छाया— जम्बूद्वीपः नामद्वीपः लवणो नाम समुद्रः वृत्तः वलयाकारसंस्थान-संस्थितः सर्वतः समन्ततः संपरिक्षिप्य तिष्ठति।

जम्बूद्वीपादयो द्वीपा लवणादिकाः समुद्राः संस्थानतः एकविध-विधानाः विस्तारतः अनेकविधविधानाः द्विगुणाद्विगुणं प्रत्युत्पद्य-मानाः प्रविस्तरन्तः अवभासमानवीचयः।

भाषा टीका — जम्बूद्वीप नाम का द्वीप है और लवण समुद्र नाम का समुद्र है। वह गोल वलय के आकार में स्थित है और जम्बूद्वीप को चारों ओर से घेरे हुए है।

जम्बूद्वीप आदि द्वीपों और लवण आदि समुद्रों का रचना की अपेक्षा एक ही भेद है, किन्तु विस्तार से अनेक प्रकार के भेद हैं। यह दुगने २ उत्पन्न होते हुए विस्तार को प्राप्त होते हुए शोभित होते हैं।

संगति — सारांश यह है कि सब द्वीपों का विस्तार पहिले २ से दुगना २ है और वह गोल आकृति को धारण करते हुए पूर्व २ को घेरे हुए हैं।

तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्र-विष्कम्भो जम्बूद्वीपः।

३, ९.

जंबुद्दीवे सव्वदीवसमुद्दाणं सव्वब्भंतराए सव्वखुड्डाए वट्टे ....एगं जोयणसहस्सं आयामविक्खंभेणं इत्यादि।

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सू० ३.

जंबुद्दीवस्य बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं जम्बुद्दीवे मन्दरे णाम्मं

पव्वए पण्णत्ते । णवणउतिजोअणसहस्साइं उद्धं उच्चतेणं एगं जोअणसहस्सं उव्वेहेणं ।

जम्बूद्वीप० सू० १०३.

छाया— जम्बूद्वीपः सर्वद्वीपसमुद्राणां सर्वाभ्यन्तरः सर्वक्षुल्लकः वृत्तः...... एकं योजनशतसहस्रं आयामविष्कम्भेन ।

जम्बूद्वीपस्य बहुमध्यदेशभागे अत्रान्तरे जम्बूद्वीपे मन्दरो नाम पर्वतः प्रज्ञप्तः । नवनवतियोजनसहस्राणि ऊर्ध्वोच्चत्वेन एकं योजनसहस्र-मुद्वेधेन ।

भाषा टीका — गोल आकार का जम्बूद्वीप सब द्वीप समुद्रों के बीच में सब से छोटा है, इसका विस्तार एक लाख योजन है ।

जम्बूद्वीप के ठीक बीचोंबीच सुमेरु नाम का पर्वत है, यह पृथ्वी के ऊपर ९९ हजार योजन ऊंचा है, एक हजार योजन यह पृथ्वी के अन्दर है ।

भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावत-वर्षाः क्षेत्राणि ।

३, १०

जम्बुद्दीवे सत्त वासा पण्णत्ता तं जहा—भरहे एरवते हेमवते हेरन्नवते हरिवासे रम्यवासे महाविदेहे ।

स्थानांग स्थान ७ सूत्र ५५५.

छाया— जम्बूद्वीपे सप्त वर्षाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—भरतः ऐरावतः हैमवतः-हरिवर्षः रम्यकवर्षः महाविदेहः ।

भाषा टीका — जम्बूद्वीप मे सात क्षेत्र हैं — भरत, ऐरावत, हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यक वर्ष और महाविदेह ।

तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः ।

३. ११.

विभयमाणे ।

जम्बूद्वीप० सूत्र १५.

जम्बुद्दीवे छ वासहरपव्वता पगणत्ता, तंजहा—चुल्लहिमवंते महाहिमवंते निसढे नीलवंते रुप्पि सिहरी ।

स्थानांग स्थान ६ सूत्र ५२४.

छाया— विभज्यमानः ।

जम्बूद्वीपे षट् वर्षधरपर्वताः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—क्षुद्रहिमवान, महाहिमवान, निषिधः, नीलवान, रुक्मिः, शिखरी ।

भाषा टीका — जम्बूद्वीप मे उन सात क्षेत्रों को बांटने वाले (पूर्व से पश्चिम तक लम्बे) छै कुलाचल पर्वत हैं । वह इस प्रकार हैं — छोटा हिमवान, महाहिमवान, निषिध, नील, रुक्मि और शिखरी ।

हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः । ३. १२

मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः । ३. १३.

चुल्लहिमवंते जंबुद्दीवे......सव्वकणगामए अच्छे सण्हे तहेव जाव पडिरूवे । इत्यादि ।

जम्बू० वक्षस्कार ४ सू० ७२.

महाहिमवंते णामं......सव्वरयणामए ।

जम्बू० सू० ७९.

निसहे णामं.......सव्वतपणिज्जमए ।

जम्बू सू० ८३.

णीलवंते णामं... ...सव्ववेरुलिश्रामए ।

जम्बू० सू० ११०.

रुप्पिणामं... सव्वरूप्पामए ।

जम्बू० सू० १११.

सिहरी णामं......सव्वरयणामए ।

जम्बू० सू० १११.

बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अन्नमन्नं णातिवट्टंति आयामविक्खंभउव्वेहसंठाणपरिणाहेणं ।

स्थानांग स्थान २, उ० ३, सू० ८७.

उभओ पांसि दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि अ वणसंडेहिं संपरिक्खित्ते ।

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सू० ७२

छाया— क्षुद्रहिमवान जम्बूद्वीपे ...... सर्वकनकमयः अच्छः श्लक्ष्णः तथैव यावत् प्रतिरूपः

महाहिमवान नाम .... सर्वरत्नमयः ।

निषधः नाम .... सर्वतपनीयमयः ।

नीलवान नाम .... सर्ववैडूर्यमयः ।

रुक्मिः नाम .... सर्वरौप्यमयः ।

शिखिरी नाम .... सर्वरत्नमयः ।

बहुसमतुल्या अविशेषं अनानात्वा अन्योन्यं नातिवर्तन्ते आयाम-विष्कम्भोत्सेधसंस्थानपरिणाहाः ।

उभयतो पार्श्वयोः द्वाभ्यां पद्मवरवेदिकाभ्यां द्वाभ्याञ्च वनखण्डाभ्यां संपरिक्षिप्तः ।

भाषा टीका — जम्बूद्वीप में छोटा हिमवान पर्वत सुवर्णमय अर्थात पीत वर्ण का है । यह इतना चिकना है कि अपना प्रतिरूप स्वयं ही है । महाहिमवान सब रत्न मय है तीसरा निषध पर्वत ताये हुए सुवर्ण के समान है । चौथा नील पर्वत वैडूर्यमय अर्थात मयूर के कंठ के समान नीले रङ्ग का है । पांचवां रुक्मि पर्वत चांदी के सदृश शुक्ल वर्ण का है । और छटा शिखरी पर्वत सब प्रकार के रत्नों रूप है ।

यह पर्वत चौकोर इकसार हैं, और सामान्य रूप से भेद रहित हैं। यह एक दूसरे का उल्लंघन नहीं करते। यह लम्बाई, चौड़ाई, रचना और परिणाह वाले हैं। इनके दोनों ओर कमल की बनी हुई वेदिका है, जो दोनों ओर दो बनखण्डों से घिरी हुई है।

पद्ममहापद्मतिगिंछकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि।

३, १४.

जंबुद्दीवे छ महद्दहा पण्णत्ता, तं जहा—पउमदहे महापउमद्दहे तिगिच्छद्दहे केसरिद्दहे पोंडरीयद्दहे महापोंडरीयद्दहे।

स्था० स्थान ६, सू० ५२४.

छाया— जम्बूद्वीपे षट् महाह्रदाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा — पद्महृदः महापद्महृदः तिगिच्छह्रदः केसरिह्रदः पुण्डरीकह्रदः महापुण्डरीकह्रदः।

भाषा टीका — जम्बूद्वीप में छै महाह्रद (तालाव) बतलाये गये हैं— पद्मह्रद, महापद्मह्रद, तिगिछ, केसरि, पुण्डरीक और महापुण्डरीक।

प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्धविष्कम्भो ह्रदः।

३, १५.

दशयोजनावगाहः।

३, १६.

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए इत्थ णं इक्के महे पउमद्दहे णामं दहे पण्णत्ते पाईणपडिणायए उदीणदाहिणविच्छिण्णे इक्कं जोयणसहस्सं आयामेणं पंच जोअणसयाइं विक्खंभेणं दस जोअणाइं उव्वेहेणं अच्छे।

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति पद्महृदाधिकार.

छाया— तस्य बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे अत्रावकाशे

एको महान् पद्महृदो नाम हृदः प्रज्ञप्तः पूर्वापरायतः उत्तरदक्षिण-विस्तीर्णः एकं योजनसहस्रायामेन पञ्चयोजनशतानि विष्कम्भेन दशयोजनान्युद्वेधेन अच्छः ।

भाषा टीका — उस बहुत सुन्दर पृथ्वी भाग के ठीक बीचों बीच एक पद्महृद नाम का बड़ा भारी तालाब है। यह पूर्व से पश्चिम तक एक सहस्र योजन लम्बा और उत्तर से दक्षिण तक पांच सौ योजन चौड़ा है, और दश योजन गहरा है।

तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ।

३, १७

तस्स पउमद्दहस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थं महं एगे पउमे पएणत्ते, जोअणं आयामविक्खंभेणं अद्धजोअणं बाहल्लेणं दसजोअणाइं उव्वेहेणं दोकोसे ऊसिए जलंताओ साइरेगाइं दसजोअणाइं सव्वग्गेणं पएणत्ता ।

जम्बू० पद्महृदाधिकार सू० ७३.

छाया — तस्य पद्महृदस्य बहुमध्यदेशभागः अत्रान्तरे महदेकं पद्मं प्रज्ञप्तं, एकं योजनमायामतो विष्कम्भतश्च अर्द्धयोजनं बाहुल्येन दशयोजनान्युद्वेधेन द्वौ क्रोशावुच्छ्रितं जलान्तात्, एवं सातिरेकाणि दश योजनानि सर्वाग्रेण प्रज्ञप्तानि ।

भाषा टीका — इस पद्म सरोवर के ठीक बीचों बीच एक बड़ा भारी कमल बतलाया गया है। इसकी लम्बाई एक योजन है और चौड़ाई आधा योजन है। इसकी ऊंचाई दश योजन है, और दो कोस यह जल के ऊपर है। इसी वास्ते इसके सब अवयवों को दश योजन से कुछ अधिक मानते हैं।

तद्द्विगुणद्विगुणा हृदाः पुष्कराणि च ।

३, १८

महाहिमवंतस्य बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगे महापउम-

द्दहे णामं दहे पण्णत्ते, दोजोअण सहस्साइं आयामेणं एगं जोअणसहस्सं विक्खंभेणं दस जोअणाइं उव्वेहेणं अच्छे रययामयकूले एवं आयामविक्खंभविहूणा जा चेव पउमद्दहस्स वत्तव्वया सा चेव णेअव्वा, पउमप्पमाणं दो जोअणाइं अट्ठो जाव महापउमद्दहवण्णाभाइं हिरी अ इत्थ देवी जाव पलिओवमट्ठिइया परिवसइ ।

जम्बू० महाहिमवन्ताधिकार सूत्र० ८०.

निगिंछिद्दहे णामं दहे पण्णत्ते चत्तारिजोअणसहस्साइं आयामेणं दोजोअणसहस्साइं विक्खंभेणं दसजोअणसहस्साइं उव्वेहेणं... .. धिई अ इत्थ देवी पलिओवमट्ठिइया परिवसइ ।

जम्बू० सू० ८३ से ११०. षड्हृदाधिकार

छाया— महाहिमवतः बहुमध्यदेशभागः अत्रान्तरे एकः महापद्महृदः नाम हृदःप्रज्ञप्तः । द्वियोजनसहस्रमायामतः एकयोजनसहस्रं विष्कम्भतः दशयोजनान्युद्वेधेन अच्छः रजतमयकूलः एवं आयामविष्कम्भविहीनः या चैव पद्महृदस्य वक्तव्यता सा चैव ज्ञातव्या । पद्मप्रमाणं द्वे योजने अर्थः यावत् महापद्महृदवर्णाभः ह्रीः च अत्र देवी यावत् पल्योपमस्थितिका परिवसति ।

तिगिंछिहृदः नाम हृदः प्रज्ञप्तः ········ चत्वारियोजनसहस्राणि आयमतः द्वे योजनसहस्रे विष्कम्भतः दशयोजनसहस्राणि उद्वेधेन ········ धृतिश्च अत्र देवी पल्योपमस्थितिका परिवसति ।

भाषा टीका — महाहिमवान् के बीचों बीच एक महापद्म नाम का सरोवर है। इसकी लम्बाई दो सहस्र योजन और चौड़ाई एक सहस्र योजन की है, और गहराई दस योजन है। इसके किनारे चांदी के बने हुए हैं। लम्बाई चौड़ाई के अतिरिक्त शेष बातें पद्म

सरोवर के समान हैं। इसके अन्दर दो योजन का कमल है। जिसके अन्दर एक पल्य आयु वाली ह्री देवी रहती है।

(तीसरा) तिगिंछ सरोवर है। यह चार योजन लम्बा, दो योजन चौड़ा और दस हजार योजन गहरा है। इसमें एक पल्य की आयु वाली धृति देवी रहती है।

तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धि-लक्ष्म्यः पल्योपमस्थितितयः ससामानिकपरिषत्काः ॥

३, १६.

तत्थ णं छ देवयाओ महड्ढियाओ जाव पलिओवमट्ठितीताओ परिवसंति। तं जहा—सिरि हिरि धिति कित्ति बुद्धि लच्छी।

स्थानांग स्था० ६, सू० ५२४

छाया— तत्र षट् देव्यः महर्द्धिकाः यावत् पल्योपमस्थितिकाः परिवसंति। तद्यथा—श्रीः ह्री धृतिः कीर्तिः बुद्धिः लक्ष्मीः।

भाषा टीका — उन (कमलों) मे बड़े ऐश्वर्य वाली तथा एक पल्य आयु वाली छै देवियां रहती हैं। वह यह हैं — श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी।

गंगासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकांतासीता-सीतोदानारीनरकान्तासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः।

३, २०.

द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥

३, २१.

शेषास्त्वपरगाः ॥

३, २२,

जंबुद्दीवे सत्त महानदीओ पुरत्थाभिमुहीओ लवणसमुद्दं समुप्पेंति, तं जहा – गंगा रोहिता हिरी सीता णरकंता सुवण्ण-कूला रत्ता। जंबुद्दीवे सत्त महानदीओ पच्चत्थाभिमुहीओ लवण-समुद्दं समुप्पेंति, तं जहा–सिंधू रोहितंसा हरिकंता सीतोदा णारीकंता रुप्पकूला रत्तवती।

स्थानांग स्थान ७ सूत्र ५५५.

छाया— जम्बूद्वीपे सप्त महानद्यः पूर्वाभिमुख्यः लवणसमुद्रं समुपयान्ति, तद्यथा – गंगा रोहित् हरित् सीता नारी सुवर्णकूला रक्ता। जम्बूद्वीपे सप्त महानद्यः पश्चिमाभिमुख्यः लवणसमुद्रं समुपयान्ति, तद्यथा–सिन्धु रोहितास्या हरिकान्ता सीतोदा नरकान्ता रूप्यकूला रक्तोदा।

भाषा टीका — जम्बूद्वीप में सात महानदियां पूर्वाभिमुख होकर लवण समुद्र में गिरती हैं। वह यह हैं — गङ्गा, रोहित, हरित, सीता, नारी, सुवर्णकूला और रक्ता। जम्बूद्वीप मे सात महानदियां पश्चिमाभिमुख होकर लवण समुद्र मे गिरती हैं। वह यह हैं— सिन्धु, रोहितास्या, हरिकान्ता, सीतोदा, नरकान्ता, रूप्यकूला, और रक्तोदा।

चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता गंगासिन्ध्वा-दयो नद्यः ॥

३, २३.

जंबुद्दीवे भरहेरवएसु वासेसु कइ महाणइओ पण्णत्ताओ। गोअमा! चत्तारि महाणईओ पण्णत्ताओ, तं जहा–गंगा सिंधू रत्ता रत्तवई। तत्थ णं एगमेगा महाणई चउद्दसहिं सलिलासहस्सेहिं समग्गा पुरत्थिमपच्चत्थिमे णं लवणसमुद्दं समुप्पेइ।

जम्बु० प्र० वक्षस्कार ६ सू० १२५.

छाया— जम्बूद्वीपे भरतैवरावतयोः वर्षयोः कति महानद्यः प्रज्ञप्ताः। गौतम!

चतस्रः महानद्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—गंगा सिन्धुः रक्ता रक्तोदा। तत्र एकैका महानदी चतुर्दशभिः सलिलासहस्राभिः समग्राः पौरस्त्यपाश्चात्ययोः लवणसमुद्रं समुपयान्ति।

प्रश्न—जम्बूद्वीप के भरत और ऐरावत क्षेत्रों में कितनी महा नदियां हैं?

उत्तर—गौतम! वहां चार महा नदियां हैं, वह यह हैं—गङ्गा, सिन्धु, रक्ता, रक्तोदा। इनमें से एक २ महानदी चौदह २ हजार नदियों सहित पूर्व और पश्चिम लवणसमुद्र में जाती हैं।

भरतः षड्विंशतिपञ्चयोजनशतविस्तारः षट् चैकोनविंशतिभागा योजनस्य।

३, २४

जंबुद्दीवे दीवे भरहे णामं वासे...जंबुद्दीवदीवणउयसयभागे पंचछव्वीसे जोअणसए छच्च एगूणवीसइभाए जोअणस्सविक्खंभेणं।

जम्बू सू० १०.

छाया— जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतः नाम वर्षः ...... जम्बूद्वीपद्वीपनवतिशतभागः पञ्च षड्विंशतियोजनशतः षट् च एकोनविंशतिभागः योजनस्य विष्कम्भः।

भाषा टीका—जम्बूद्वीप मे भरतक्षेत्र उसका एक सौ नव्वेवां भाग है। इसका विस्तार ५२६ $\frac{६}{१९}$ योजन है।

संगति—इन सब आगम प्रमाणों से सिद्ध होता है कि सूत्र आगम का ही संक्षिप्त अनुवाद है।

तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहान्ताः।

३, २५.

जंबुद्दीपपण्णत्तीए वासावासहराणं महाविदेहपेरंतं विउणविउणवित्थारेणं वण्णिओ। पस्संतु उत्तसुत्तं।

छाया— जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तौ वर्षवर्षधराणां महाविदेहपर्यन्तं द्विगुणद्विगुणविस्तारं वर्णितः पश्यन्तु उक्तसूत्रं वर्षाधिकारे चतुर्थवक्षस्कारे ।

भाषा टीका — जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में महाविदेह क्षेत्र तक के क्षेत्र और पर्वतों का विस्तार पूर्व २ से दुगुना २ बतलाया गया है। वर्षाधिकार ४ थे वक्षस्कार में इस प्रकरण का बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है।

उत्तरा दक्षिणतुल्याः ।

३, २६.

जंबुमंदरस्स पव्वयस्स य उत्तरदाहिणे णं दो वासहरपव्वया बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अन्नमन्नं णातिवट्टंति आयाम-विक्खंभुच्चतोव्वेहसंठाणपरिणाहेणं, तं जहा—चुल्लहिमवंते चेव सिहरिच्चेव, एवं महाहिमवंते चेव रुप्पिच्चेव, एवं णिसढे चेव णीलवंते चेव इत्यादि ।

स्थानांग स्थान २ उद्देश्य २ सूत्र ८७

छाया— जम्बूमन्दिरस्य पर्वतस्य च उत्तरदक्षिणयोः द्वौ वर्षधरपर्वतौ बहु-समतुल्यौ अविशेषौ अनानात्वौ अन्योन्यं नातिवर्तन्ते आयामविष्क-म्भोच्चत्वोद्वेधसंस्थानपरिणाहेन, तद्यथा—क्षुद्रकहिमवान् चैव शिखरी चैव, एवं महाहिमवान् चैव रुक्मिश्चैव, एवं निषिधश्चैव नीलवन्त-श्चैव । इत्यादि ।

भाषा टीका — सुमेरु पर्वत के उत्तर तथा दक्षिण मे दो पर्वत सब प्रकार से बराबर २ हैं। वह सामान्य रूप से एक से हैं। तथा लम्बाई, चौड़ाई, ऊंचाई, रचना तथा परिणाह से भिन्न २ नहीं है। समानता इस प्रकार है—क्षुद्रहिमवान् और शिखरी बराबर २ हैं। महाहिमवान् तथा रुक्मि बराबर २ हैं। तथा निषिध और नील पर्वत समान हैं। इत्यादि ।

भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामु-

त्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ।

३, २७.

ताभ्यामपरा भूमियोऽवस्थिताः ।

३, २८.

जंबुद्दीवे दीवे दोसु कुरासु मणुआसया सुसमसुसममुत्त-मिड्ढिं पत्ता पच्चणुब्भवमाणा विहरंति, तं जहा—देवकुराए चेव, उत्तरकुराए चेव ॥ १४ ॥

जंबुद्दीवे दीवे दोसु वासेसु मणुयासया सुसममुत्तमिड्ढिं पत्ता पच्चणुब्भवमाणा विहरंति, तं जहा—हरिवासे चेव रम्मगवासे चेव ॥ १५ ॥

जंबुद्दीवे दीवे दोसु वासेसु मणुयासया सुसमदुसममुत्त-ममिड्ढिं पत्ता पच्चणुब्भवमाणा विहरंति, तं जहा—हेमवए चेव एरन्नवए चेव ॥ १६ ॥

जंबुद्दीवे दीवे दोसु खित्तेसु मणुयासया दुसमसुसममुत्त-ममिड्ढिं पत्ता पच्चणुब्भवमाणा विहरंति, तं जहा — पुव्वविदेहे चेव अवरविदेहे चेव ॥ १७ ॥

जंबुद्दीवे दीवे दोसु वासेसु मणुया छव्विहं पि कालं पच्च-णुब्भवमाणा विहरंति, तं जहा—भरहे चेव एरवए चेव ॥ १८ ॥

स्थानांग स्थान २ सूत्र ८९.

जंबूद्दीवे मंदरस्स पव्वस्स पुरच्छिमपच्चत्थिमेणवि, णेवत्थि ओसप्पिणी नेवत्थि उस्सप्पिणी अवट्ठिए णं तत्थ काले पन्नत्ते ।

व्याख्या प्रज्ञप्ति शतक ५ उद्देश्य १ सूत्र १७८

छाया— जम्बूद्वीपे द्वीपे द्वयोः कुर्योः मनुष्याः सुखमसुखममुत्तमर्द्धिं प्राप्ताः प्रत्यनुभवन्तः विहरन्ति, तद्यथा–देवकुरौ चैवोत्तरकुरौ चैव॥ १४ ॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे द्वयोः वर्षयोः मनुष्याः सुखममुत्तमर्द्धिं प्राप्ताः प्रत्यनुभवन्तः विहरन्ति, तद्यथा–हरिवर्षे चैव रम्यक् वर्षे चैव ॥ १५ ॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे द्वयोः वर्षयोः मनुष्याः सुखमदुःखममुत्तमर्द्धिं प्राप्ताः प्रत्यनुभवन्तः विहरन्ति, तद्यथा–हैमवते चैवैरण्यवते चैव १६

जम्बूद्वीपे द्वीपे द्वयोः क्षेत्रयोः मनुष्याः दुःखमसुखममुत्तमर्द्धिं प्राप्ताः प्रत्यनुभवन्तः विहरन्ति, तद्यथा–पूर्वविदेहे चैवापरविदेहे चैव ॥१७॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे द्वयोः वर्षयोः मनुष्याः षड्विधमपि कालं प्रत्यनुभवन्तः विहरन्ति, तद्यथा–भरते चैवैरावते चैव ॥ १८ ॥

जम्बूद्वीपे मन्दिरस्य पर्वतस्य पौरस्त्यपश्चिमाभ्यामपि, नैवास्ति अवसर्पिणी नैवास्ति उत्सर्पिणी अवस्थितः तत्र कालः प्रज्ञप्तः।

भाषा टीका — जम्बूद्वीप के देवकुरु तथा उत्तरकुरु के मनुष्य प्राप्त की हुई सुखम-सुखम की उत्तम ऋद्धि को अनुभव करते हुए विहार करते हैं। (यह उत्तम भोगभूमि है)

जम्बूद्वीप के हरिवर्ष और रम्यकवर्ष नाम के दो क्षेत्रों के मनुष्य सुखमा नाम की उत्तम ऋद्धि को प्राप्त कर अनुभव करते हुए विहार करते हैं। (यह मध्यम भोग भूमि है)

जम्बूद्वीप के हैमवत और हैरण्यवत नाम के दो क्षेत्रों के मनुष्य सुखमदुःखमा नाम की उत्तम ऋद्धि को प्राप्त कर अनुभव करते हुए विहार करते हैं। (यह जघन्य भोग भूमि है)

जम्बूद्वीप के पूर्व और पश्चिम विदेह नाम के दो क्षेत्रों के मनुष्य दुःखमसुखम नाम की उत्तम ऋद्धि को प्राप्त कर अनुभव करते हुए विहार करते हैं, (यहां सदा चौथा काल रहने से कर्मभूमि रहती है।)

जम्बूद्वीप के भरत और ऐरावत नाम के दो क्षेत्रों के मनुष्य छहों प्रकार के काल का अनुभव करते हुए विहार करते हैं।

जम्बूद्वीप में सुमेरु पर्वत के पूर्व तथा पश्चिम में भी उत्सर्पिणी अथवा अवसर्पिणी नहीं है, वरन् एक निश्चित काल है।

एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवकाः ।

३, २९.

तथोत्तराः ।

३, ३०.

जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणेणं दो वासा पण्णत्ता ...... हिमवए चेव हेरन्नवते चेव हरिवासे चेव रम्मयवासे चेव ...... देवकुरा चेव उत्तरकुरा चेव ...... एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता ...... दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता ।

जम्बू द्वीप० वक्षस्कार ४

छाया— जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरदक्षिणयोः द्वौ वर्षौ प्रज्ञप्तौ .... हैमवतश्चैव हैरण्यवतश्चैव हरिवर्षश्चैव रम्यग्वर्षश्चैव .... देवकुरुश्चैवोत्तरकुरुश्चैव .... एकं पल्योपमं स्थितिः प्रज्ञप्ता .... द्विपल्योपमं स्थितिः प्रज्ञप्ता त्रिपल्योपमं स्थितिः प्रज्ञप्ता ।

भाषा टीका—जम्बूद्वीप में सुमेरु पर्वत के उत्तर दक्षिण में दो क्षेत्र बतलाये गये हैं— हैमवत और हैरण्यवत । हरिवर्ष और रम्यक् वर्ष । देवकुरु और उत्तरकुरु । इनकी आयु क्रमशः एक पल्य, दो पल्य और तीन पल्य होती है ।

संगति — जघन्य भोगभूमि हैमवत और हैरण्यवत में एक पल्य आयु होती है । मध्यम भोगभूमि हरिवर्ष और रम्यक् वर्ष में दो पल्य की आयु होती है । तथा उत्तम भोग भूमि देवकुरु और उत्तर कुरु में तीन पल्य की आयु होती है ।

विदेहेषु संख्येयकालाः ।

३, ३१.

महाविदेहे ......मणुआणं केविइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण पुव्वकोडी आउअं पालेंति ।

जम्बू० वक्षस्कार ४ सूत्र ८५

छाया— महाविदेहे मनुजानां कियच्चिरं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ? गौतम ! जघन्येन अन्तर्मुहूर्त्तं उत्कर्षेण पूर्वकोटिं आयुष्कं पालयन्ति ।

प्रश्न — महाविदेह क्षेत्र में मनुष्यों की कितनी आयु होती है ?

उत्तर — गौतम — वहां की जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट आयु पूर्व कोटि होती है ।

संगति — पूर्व कोटि आयु को संख्यात वर्ष की आयु भी कहते हैं ।

भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः ।

३, ३२.

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे भरहप्पमाणमेत्तेहिं खंडेहिं केवइयं खंडगणिए णं पण्णत्ते ? गोयमा ! णउअं खंडसयं खंडगणिएणं पण्णत्ते ।

जम्बू० खंडयोजनाधिकार सूत्र १२५

छाया— जम्बुद्वीपे भगवन् ! द्वीपे भरतप्रमाणमात्रैः खण्डैः कियान् खण्डगणितेन प्रज्ञप्तः ? गौतम ! नवत्यधिकं खण्डशतं खण्डगणितेन प्रज्ञप्तः ।

प्रश्न — भगवन् ! जम्बूद्वीप का भरतक्षेत्र कितनेवाँ भाग है ?

उत्तर — गौतम ! एकसौ नव्वे वाँ भाग है ।

संगति — इन सूत्रों और आगम वाक्य के शब्द २ मिलते हैं ।

द्विर्धातकीखण्डे ।

३, ३३.

धायइखंडे दीवे पुरच्छिमद्धे णं मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं दो वासा पन्नत्ता, बहुसमतुल्ला जाव भरहे चेव एरवए चेव ......धाततीखंडदीवे पच्चच्छिमद्धे णं मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणे णं दो वासा पएणत्ता बहुसमतुल्ला जाव भरहे चेव एरवए चेव । इच्चाइ ।

स्थानांग स्थान २ उद्देश्य ३ सूत्र ६२

छाया— धातकीखण्डे द्वीपे पूर्वार्द्धे मन्दिरस्य पर्वतस्य उत्तरदक्षिणयोः द्वौ वर्षौ प्रज्ञप्तौ । बहुसमतुल्यौ यावत् भरतश्चैव ऐरावतश्चैव .... धातकीखण्डद्वीपे पश्चिमार्द्धे मन्दिरस्य पर्वतस्य उत्तरदक्षिणयोः द्वौ वर्षौ प्रज्ञप्तौ बहुसमतुल्यौ यावत् भरतश्चैव ऐरावतश्चैव । इत्यादि ।

भाषा टीका — धातकी खण्ड द्वीप के पूर्वार्द्ध में सुमेरु पर्वत के उत्तर दक्षिण मे दो २ क्षेत्र हैं। भरत से ऐरावत तक वह सब प्रकार से बराबर हैं।

धातकी खण्ड द्वीप के पश्चिमार्द्ध में सुमेरु पर्वत के उत्तर दक्षिण में दो २ क्षेत्र हैं। वह भरत क्षेत्र से लगाकर ऐरावत तक सब प्रकार से बराबर हैं।

संगति — धातकी खण्ड के पूर्वार्द्ध में भरतादि ऐरावत पर्यंत सात क्षेत्र हैं और पश्चिमार्द्ध में भी इसी प्रकार सात क्षेत्र हैं। जिससे वहां दो भरत दो ऐरावत आदि होतेहैं।

पुष्करार्द्धे च ।

३, ३४.

पुक्खरवरदीवड्ढे पुरच्छिमद्धे णं मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं दो वासा पएणत्ता बहुसमतुल्ला जाव भरहे चेव एरवए चेव तहेव जाव दो कुडाओ पएणत्ता ।

स्थानांग स्थान २ उद्देश्य ३ सूत्र ६३

छाया— पुष्करवरद्वीपार्द्धे पूर्वार्द्धे मन्दिरस्य पर्वतस्य उत्तरदक्षिणयोः द्वौ वर्षौ

प्रज्ञप्तौ बहुसमतुल्यौ यावत् भरतश्चैव ऐरावतश्चैव । तथैव यावत् द्वौ कूटौ प्रज्ञप्तौ ।

भाषा टीका — पुष्कर द्वीप के पूर्वार्द्ध में सुमेरु पर्वत के उत्तर दक्षिण में दो २ क्षेत्र हैं, वह भरत क्षेत्र से लगाकर ऐरावत तक सब प्रकार से बराबर हैं। उसी प्रकार पश्चिमार्द्ध में भी रचना है।

प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ।

३, ३५.

माणुसुत्तरस्स णं पव्वयस्स अंतो मणुआ ।

जीवाभिगम प्रतिपत्ति ३ मानुषोत्तराधिकार उद्दे० २ सूत्र १७८

छाया— मानुषोत्तरस्य पर्वतस्य अन्तः मनुष्याः ।

भाषा टीका — मनुष्य मनुष्योत्तर पर्वत के अन्दर २ ही रहते हैं। आगे नहीं रहते।

आर्या म्लेच्छाश्च ।

३, ३६.

ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—आरिआ य मिलक्खू य ।

प्रज्ञापना पद १ मनुष्याधिकार

छाया— तौ समासतः द्विविधौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—आर्याश्च म्लेच्छाश्च ।

भाषा टीका — मनुष्य संक्षेप से दो प्रकार के होते हैं — आर्य और म्लेच्छ ।

संगति—यहां सूत्र और आगम के शब्द २ मिलते हैं।

भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ।

३, ३७.

से किं तं अकम्मभूमगा? कम्मभूमगा पण्णरसविहा

पण्णत्ता, तं जहा—पंचहिं भरहेहिं पंचहिं एरवएहिं पंचहिं महाविदेहेहिं ।

से किं तं अकम्मभूमगा ? अकम्मभूमगा तीसइ विहा पण्णत्ता, तं जहा—"पंचहि हेमवएहिं, पंचहि हरिवासेहिं, पंचहिं रम्मगवासेहिं, पंचहिं एरण्णवएहिं, पंचहिं देवकुरुहिं, पंचहिं उत्तरकुरुहिं । सेत्तं अकम्मभूमगा ।

प्रज्ञापना पद १ मनुष्याधिकार सूत्र ३२

छाया— अथ किं तत् कर्मभूमयः ? कर्मभूमयः पञ्चदशविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—"पञ्चभिः भरतैः पञ्चभिः ऐरावतैः पञ्चभिः महाविदेहैः"

अथ किं तत् अकर्मभूमयः ? अकर्मभूमयः त्रिशद्विधाः प्रज्ञप्ताः । तद्यथा—पञ्चभिः हैमवतैः, पञ्चभिः हरिवर्षैः पञ्चभिः रम्यग्वर्षैः पञ्चभिः हैरण्यवतैः पञ्चभिः देवकुरुभिः पञ्चभिरुत्तरकुरुभिः । सोऽयमकर्मभूमयः ।

प्रश्न— कर्म भूमि कौनसी हैं ?

उत्तर—कर्म भूमि पन्द्रह कही गई हैं । (अढ़ाई द्वीप के) पांच भरत, पांच ऐरावत और पांच महाविदेह ।

प्रश्न—अकर्म भूमि अथवा भोगभूमि कौन सी हैं ?

उत्तर—भोगभूमि तीस होती हैं—पांच हैमवत, पांच हरिवर्ष, पांच रम्यक् वर्ष, पांच हैरण्यवत, पांच देवकुरु और पांच उत्तर कुरु । यह सब भोग भूमियां हैं ।

संगति—यहां सूत्र और आगम वाक्य मे कोई अन्तर नहीं है । आगम वाक्य में नियमानुसार थोड़ा विशेष कथन है ।

नृस्थिती पराऽवरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहुर्ते ।

३, ३८.

पलिओवमाउ तिन्नि य, उक्कोसेण वियाहिया ।
आउट्ठिई मणुयाणं, अंतोमुहुत्तं जहन्निया ॥

उत्तराध्ययन अध्याय ३६ गाथा १९८

मणुस्साणं भंते! केवइयं कालट्ठिई पण्णत्ता? गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णिपलिओवमाइं ।

प्रज्ञापना पद ४ मनुष्याधिकार

छाया— पल्योपमानि त्रीणि च, उत्कर्षेण व्याख्याता ।
आयुः स्थितिर्मनुजानां अन्तर्मुहुर्तं जघन्यका ॥

मनुष्याणां भगवन! कियति कालः स्थितिः प्रज्ञप्ता? गौतम!
जघन्येनान्तर्मुहूर्तमुत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि ।

भाषा टीका—मनुष्यों की जघन्य आयु अन्तर्मुहुर्त तथा अधिक से अधिक आयु तीन पल्य होती है ।

तिर्यग्योनिजानाञ्च ।

३, ३९.

पलिओवमाइं तिण्णि उ उक्कोसेण वियाहिया ।
आउठिई थलयराणां अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

उत्तराध्ययन अध्याय ३६ गाथा १८३

गब्भवक्कंतिय चउप्पय थलयर पंचदिय तिरिक्ख जोणियाणं पुच्छा? जहण्णेणं अन्तोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं ।

प्रज्ञापना स्थितिपद ४ तिर्यगधिकार

छाया— पल्योपमानि त्रीणि तु, उत्कर्षेण व्याख्याता ।
आयुः स्थितिः स्थलचराणां अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥

गर्भव्युत्क्रान्तः चतुष्पदस्थलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां पृच्छा?
जघन्येन अन्तर्मुहूर्त उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि।

भाषा टीका—स्थलचरों की जघन्य आयु अन्तर्मुहुर्त तथा उत्कृष्ट आयु तीन पल्य होती है।

प्रश्न—गर्भ जन्म वालों, चौपायों, स्थलचरों, पंचेन्द्रियों तथा अन्य तिर्यंचों की कितनी आयु होती है?

उत्तर—जघन्य अन्तर्मुहुर्त तथा उत्कृष्ट तीन पल्य।

संगति—यहां भी सूत्र और आगम वाक्य मे बिल्कुल एक प्रकार के ही शब्द कहे गये हैं।

इति श्री-जैनमुनि-उपाध्याय-श्रीमदात्माराम-महाराज-संगृहीते
तत्त्वार्थसूत्रजैनाऽऽगमसमन्वये

तृतीयाऽध्यायः समाप्तः ॥ ३ ॥ ❋

चतुर्थोऽध्यायः

———:o:———

देवाश्चतुर्णिकायाः ।

४, १

चउव्विहा देवा पण्णत्ता, तं जहा—भवणवई वाणमंतर जोइस वेमाणिया ।

व्याख्याप्रज्ञप्ति शतक २ उद्देश्य ७

छाया— चतुर्विधाः देवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—भुवनपतयः वाणमन्तराः ज्योतिष्काः वैमानिकाः ।

भाषा टीका—देव चार प्रकार के होते हैं—भुवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक ।

संगति—यहां आगम वाक्य और सूत्र में कुछ अन्तर नहीं है । केवल व्यन्तर का नाम आगम में वाणमन्तर दिया गया है, जो केवल शाब्दिक भेद है ।

आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्या ।

४, २

भवनवइवाणमंतर··· ···चत्तारि लेस्साओ·······जोतिसियाणं एगा तेउलेसा·····वेमाणियाणं तिन्नि उवरिमलेसाओ ।

स्थानांग स्थान १ सूत्र ५१

छाया— भुवनपतिवाणमन्तरयोः चतस्रः लेश्या······· ज्योतिष्काणां एका तेजोलेश्या (पीतलेश्या)······वैमानिकानां तिस्रः उपरिमलेश्याः ।

भाषा टीका—भुवनवासी और व्यन्तरों के चार लेश्या (कृष्ण, नील, कापोत और पीत) होती हैं । ज्योतिष्कों के अकेली पीत लेश्या होती है और वैमानिकों के ऊपर की तीन लेश्या (पीत, पद्म, और शुक्ल) होती हैं ।

संगति—आगम तथा सूत्र में ज्योतिष्क देवों के सम्बन्ध में थोड़ा मत भेद है। सूत्रों में भुवनवासी तथा व्यंतरों के समान ज्योतिष्कों में भी चार लेश्या मानी हैं। किन्तु आगम ग्रन्थ ज्योतिष्को में कृष्ण, नील, और कापोत का अस्तित्व न मानकर उनमें केवल चौथी पीतलेश्या ही मानते हैं। इसलिये यह विषय विद्वानों के विचारने योग्य है।

दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ।

४, ३.

भवणवई दसविहा पराणत्ता ··· वाणमन्तरा अट्ठविहा पराणत्ता, ······ जोइसिया पंचविहा पन्नत्ता ········ वेमाणिया दुविहा पराणत्ता, तं जहा—कप्पोपवराणगा य कप्पाइया य। से किं तं कप्पोपवराणगा ? बारसविहा पराणत्ता, तं जहा—सोहम्मा, ईसाणा, सणंकुमारा, माहिंदा, बंभलोगा, लंतया, महासुक्का, सहस्सारा, आणया, पाणया, आरणा, अच्चुत्ता।

प्रज्ञापना प्रथम पद देवाधिकार

छाया— भुवनपतयः दशविधाः प्रज्ञप्ताः ······ वाणमंतराः अष्टविधा प्रज्ञप्ताः ········ ज्योतिष्काः पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः। वैमानिकाः द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कल्पोपपन्नकाश्च कल्पातीताश्च। अथ किं तत् कल्पोपपन्नकाः ? द्वादशविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सौधर्माः ईशानाः सनत्कुमाराः माहेन्द्राः ब्रह्मलोकाः लान्तकाः महाशुक्राः सहस्राराः आनताः प्राणताः आरणाः अच्युताः।

भाषा टीका—भुवनवासी दस प्रकार के होते हैं। व्यंतर आठ प्रकार के होते हैं। ज्योतिष्क पांच प्रकार के होते हैं और वैमानिक दो प्रकार के होते हैं। वैमानिकों के दो भेद यह हैं—कल्पोपपन्न और कल्पातीत।

प्रश्न—कल्पोपपन्न किनको कहते हैं ?

उत्तर—कल्पोपपन्न बारह प्रकार के होते हैं- वह यह हैं—सौधर्म, ईशान, सानत्कुमार माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत।

इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकाश्चैकशः।

४, ४.

देविंदा ... एवं सामाणिया ... तायत्तीसगा लोगपाला परिसोववन्नगा ...... अणियाहिवई ... आयरक्खा ।

स्थानांग स्थान ३, उ० १, सू० १३४

देवकिव्विसिए ...... आभिजोगिए ।

औपपा० जीवोप० सू० ४१

चउव्विहा देवाण ठिती पण्णत्ता, तं जहा—देवे णाममेगे देवसिणाते नाममेगे देवपुरोहिते नाममेगे देवपज्जलणे नाममेगे ।

स्थानांग स्थान ४, उ० १, सू० २४८.

छाया — देवेन्द्राः एवं सामानिकाः त्रायस्त्रिंशकाः लोकपालाः परिषदुत्पन्नकाः अनीकपतयः आत्मरक्षाः ।

देवकिल्विषिकाः आभियोग्याः ।

चतुर्विधा देवानां स्थितिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा – देवः नामैकः देवस्नानकः नामैकः देवपुरोहितः नामैकः देवप्रज्वलनः नामैकः ।

भाषा टीका—देवेन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, लोकपाल, पारिषद् अथवा परिषदुत्पन्न अनीकपति अथवा अनीक, आत्मरक्ष, देवकिल्विष और आभियोग्य । (एक एक के भेद हैं।)

देवों की स्थिति चार प्रकार की होती है—देव, देवस्नातक, देवपुरोहित और देव प्रज्वलन ।

संगति—सूत्र में देव समूहों के दश भेद बतलाये गये हैं। उपरोक्त आगम वाक्य में थोड़े शाब्दिक हेर फेर के साथ नौ भेद तो बतला दिये हैं। दसवें भेद प्रकीर्णक के स्थान

में उन्होंने देवों के एक समूह की देव, स्नातक, पुरोहित और प्रज्वलन यह चार संज्ञाएं की हैं, जो कि प्रकीर्णक से प्रथक् कुछ प्रतीत नहीं होते।

त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यंतरज्योतिष्काः ।

४, ५.

वाणमंतरजोइसियाणं तायतीसलोगपाला नत्थि।

पण्णवणाए बीओ पए पस्संतु अहवा जंबुद्दीवपण्णत्तीए जिणमहिमाहियारे वाणमंतरजोइसियाणं च विसए पासियव्वो।

छाया— व्यन्तरज्योतिष्कानां त्रायस्त्रिंशलोकपालौ न स्तः। प्रज्ञापनायाः द्वितीये पदे पश्यन्तु। अथवा जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तौ जिनमहिमाधिकारे व्यन्तरज्योतिष्कयोश्च विषये द्रष्टव्यः।

भाषा टीका — व्यन्तर तथा ज्योतिष्कों में त्रायस्त्रिंश और लोकपाल नहीं होते। इस विषय को प्रज्ञापना सूत्र के द्वितीयपद अथवा जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के जिनमहिमाधिकार में व्यन्तर और ज्योतिष्कों के विषय में देखना चाहिये।

पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ।

४, ६

दो असुरकुमारिंदा पन्नता तं जहा—चमरे चेव बली चेव।
दो णागकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—धरणे चेव भूयाणंदे चेव।
दो सुवन्नकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—वेणुदेवे चेव वेणुदाली चेव।
दो विज्जुकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—हरिच्चेव हरिसहे चेव।
दो अग्गिकुमारिंदा पन्नत्ता तं जहा—अग्गिसिहे चेव अग्गिमाणवे चेव।
दो दीवकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—पुन्ने चेव विसिट्ठे चेव।
दो उदहिकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—जलकंते चेव जलप्पभे चेव।
दो दिसाकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—अमियगती चेव अमितवा-

हणे चेव। दो वातकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—वेलंबे चेव पभंजणे चेव। दो थणियकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—घोसे चेव महाघोसे चेव।
दो पिसाइंदा पन्नत्ता, तं जहा—काले चेव महाकाले चेव।
दो भूइंदा पण्णत्ता, तं जहा—सुरूवे चेव पडिरूवे चेव।
दो जक्खिंदा पन्नत्ता, तं जहा—पुन्नभद्दे चेव माणिभद्दे चेव।
दो रक्खसिंदा पन्नता, तं जहा—भीमे चेव महाभीमे चेव।
दो किन्नरिंदा पन्नत्ता, तं जहा—किन्नरे चेव किंपुरिसे चेव।
दो किंपुरिसिंदा पन्नत्ता, तं जहा—सप्पुरिसे चेव महापुरिसे चेव।
दो महोरगिंदा पन्नत्ता, तं जहा—अतिकाए चेव महाकाए चेव।
दो गंधव्विंदा पन्नत्ता, तं जहा—गीतरती चेव गीयजसे चेव।

स्थानांग स्थान २ उ० ३ सू० ९४.

छाया— द्वौ असुरकुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा – चमरश्चैव बलिश्चैव।
द्वौ नागकुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा – धरणश्चैव भूतानन्दश्चैव।
द्वौ सुपर्णकुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा – वेणुदेवश्चैव वेणुदारी चैव।
द्वौ विद्युत्कुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा – हरिश्चैव हरिसहश्चैव।
द्वावग्निकुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा – अग्निशिखश्चैवाऽग्निमाणवश्चैव। द्वौ द्वीपकुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा – पूर्णश्चैव वशिष्ठश्चैव।
द्वावुदधिकुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा – जलकान्तश्चैव जलप्रभश्चैव।
द्वौ दिक्कुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा – अमितगतिश्चैवाऽमितवाहनश्चैव।
द्वौ वातकुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा – वेलम्बश्चैव प्रभञ्जनश्चैव।
द्वौ स्तनितकुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा – घोषश्चैव महाघोषश्चैव।
(व्यन्तराणां मध्ये)

द्वौ पिशाचेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा – कालश्चैव महाकालश्चैव।

द्वौ भूतेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा – सुरूपश्चैव प्रतिरूपश्चैव ।
(प्रतिरूपोऽतिरूपश्च)
द्वौ यक्षेन्द्रो प्रज्ञप्तौ, तद्यथा – पूर्णभद्रश्चैव मणिभद्रश्चैव ।
द्वौ राक्षसेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा – भीमश्चैव महाभीमश्चैव ।
द्वौ किन्नरेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा – किन्नरश्चैव किम्पुरुषश्चैव ।
द्वौ किम्पुरुषेन्द्रो प्रज्ञप्तौ, तद्यथा – सत्पुरुषश्चैव महापुरुषश्चैव ।
द्वौ महोरगेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा – अतिकायश्चैव महाकायश्चैव ।
द्वौ गन्धर्वेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा – गीतरतिश्चैव गीतयशश्चैव ।

भाषा टीका—(भुवनवासियों के अन्दर)

१. असुर कुमारों के दो इन्द्र होते हैं—चमर और बलि ।
२. नागकुमारों के दो इन्द्र होते हैं — धरण और भूतानन्द ।
३. सुपर्णकुमारों के दो इन्द्र होते हैं — वेणुदेव और वेणुदारी ।
४. विद्युत्कुमारों के दो इन्द्र होते हैं — हरि और हरिसह ।
५. अग्निकुमारो के दो इन्द्र होते हैं — अग्नि शिख और अग्नि माणव ।
६. द्वीपकुमारों के दो इन्द्र होते हैं — पूर्ण और वशिष्ट ।
७. उदधिकुमारों के दो इन्द्र होते है — जलकान्त और जलप्रभ ।
८. दिक्कुमारों के दो इन्द्र होते हैं — अमितगति और अमितवाहन ।
९. वातकुमारों के दो इन्द्र होते हैं — वेलम्ब और प्रभञ्जन ।
१०. स्तनित कुमारों के दो इन्द्र होते हैं — घोष और महाघोष ।

(इस प्रकार भुवनवासियों के बीस इन्द्रों का वर्णन किया गया । अब व्यन्तरों के इन्द्रों का वर्णन किया जाता है ।)

१. पिशाचों के दो इन्द्र होते हैं — काल और महाकाल ।

२. भूतों के दो इन्द्र होते हैं — सुरूप और प्रतिरूप (अथवा प्रतिरूप और अतिरूप)

३. यक्षों के दो इन्द्र होते हैं — पूर्ण भद्र और मणिभद्र ।

४. राक्षसों के दो इन्द्र होते हैं — भीम और महाभीम ।

५. किन्नरों के दो इन्द्र होते हैं — किन्नर और किम्पुरुष ।

६. किम्पुरुषों के दो इन्द्र होते हैं — सत्पुरुष और महापुरुष।
७. महोरगों के दो इन्द्र होते हैं — अतिकाय और महाकाय।
८. गन्धर्वों के दो इन्द्र होते हैं — गीतरति और गीतयश।

कायप्रवीचारा आ ऐशानात्।

४, ७.

शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः।

४. ८.

परेऽप्रवीचाराः।

४, ९.

कतिविहा णं भंते! परियारणा पण्णत्ता? गोयमा! पञ्चविहा पण्णत्ता, तं जहा — कायपरियारणा, फासपरियारणा, रूवपरियारणा, सद्दपरियारणा, मनपरियारणा ······ भवणवासिवाणमंतर-जोतिसि सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु देवा कायपरियारणा, सणंकुमारमाहिंदेसु कप्पेसु देवा फासपरियारणा, बंभलोयलंतगेसु कप्पेसु देवा रूवपरियारणा, महासुक्कसहस्सारेसु कप्पेसु देवा सद्दपरियारणा, आणयपाणयआरणअच्चुएसु देवा मणपरियारणा, गवेज्जग अणुत्तरोववाइया देवा अपरियारगा।

प्रज्ञापना पद ३४ प्रचारणा विषय
स्थानांग स्थान २, उ० ४, सू० ११६

छाया — कतिविधा भगवन् प्रचारणा प्रज्ञप्ता? गौतम! पञ्चविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा — कायप्रचारणा, स्पर्शप्रचारणा, रूपप्रचारणा, शब्दप्रचारणा, मनःप्रचारणा। भवनवासिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मैशानेषु कल्पेषु देवाः कायप्रवीचारकाः। सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः कल्पयोः देवाः स्पर्शप्रचारकाः। ब्रह्मलोकलान्तकयोः कल्पयोः देवाः रूप-

प्रचारका: । महाशुक्रसहस्रारयो: कल्पयो: देवा: शब्दप्रचारका: ।
आनतप्राणताऽऽरणाऽच्युतेषु कल्पेषु देवा: मन:प्रचारका: ।
ग्रैवेयकाऽनुत्तरोपपादिका: देवा: अप्रचारका: ।

प्रश्न — भगवन् ! प्रचारणा कितने प्रकार की होती है ?

उत्तर — गौतम ! पांच प्रकार की होती है — काय प्रचारणा, स्पर्श प्रचारणा, रूप प्रचारणा, शब्द प्रचारणा और मन:प्रचारणा । भवनवासी, व्यन्तर ज्योतिष्क, तथा सौधर्म और ईशान कल्पों के देव [मनुष्यों के समान] शरीर से प्रवीचार अथवा मैथुन करते हैं । सानत्कुमार और माहेन्द्र कल्पों के देव स्पर्श मात्र से ही मैथुन के सुख का भोग लेते हैं । ब्रह्मलोक और लान्तक कल्पों मे देव रूप देखने मात्र से मैथुन के सुख का भोग लेते हैं । महाशुक्र और सहस्रार कल्पों में देव मन में स्मरण करने मात्र से मैथुन के सुख का भोग लेते हैं । नौ ग्रैवेयक तथा अनुत्तरों में उत्पन्न देवों मे कामवासना न होने से वह अप्रवीचार कहे जाते हैं ।

संगति — प्रवीचार, प्रचारणा, तथा प्रचार यह सब मैथुन के ही नामान्तर हैं । इन सूत्रों में देवों के मैथुन का सुख प्राप्त करने का ढंग बतलाया गया है । आगमवाक्य तथा उपरोक्त सूत्रों के शब्दों का साम्य ध्यान देने योग्य है ।

भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवात-स्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ।

४, १०.

भवणवई दसविहा पण्णत्ता, तं जहा—असुरकुमारा, नाग-कुमारा, सुवण्णकुमारा, विज्जुकुमारा, अग्गीकुमारा, दीवकुमारा, उदहिकुमारा, दिसाकुमारा, वाउकुमारा, थणियकुमारा ।

प्रज्ञापना प्रथम पद देवाधिकार.

छाया— भवनवासिन: दशविधा: प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—असुरकुमारा:, नाग-कुमारा:, सुपर्णकुमारा, विद्युत्कुमारा: अग्निकुमारा:, द्वीपकुमारा:, उदधिकुमारा:, दिक्कुमारा:, वातकुमारा:, स्तनितकुमारा: ।

भाषा टीका — भवनवासी दस प्रकार के होते हैं — असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिक्कुमार, वातकुमार, और स्तनित कुमार।

व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः।

४, ११.

वाणमंतरा अट्ठविहा पण्णत्ता, तं जहा—किण्णरा, किंपुरिसा, महोरगा, गंधव्वा, जक्खा, रक्खसा, भूया, पिसाया।

प्रज्ञापना प्रथमपद देवाधिकार.

छाया— व्यन्तराः अष्टविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा — किन्नराः, किम्पुरुषाः, महोरगाः, गन्धर्वाः, यक्षाः, राक्षसाः, भूताः, पिशाचाः।

भाषा टीका — व्यन्तर आठ प्रकार के होते हैं — किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच

ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च।

४, १२.

जोइसिया पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—चंदा, सूरा, गहा, णक्खत्ता, तारा।

प्रज्ञापना प्रथम पद देवाधिकार.

छाया— ज्योतिष्काः पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा — चन्द्रमसः, सूर्याः, ग्रहाः, नक्षत्राणि, तारकाः।

भाषा टीका — ज्योतिष्क पांच प्रकार के होते हैं — चंद्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, और तारे

मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके।

४, १३.

ते मेरु परियडंता पयाहिणावत्तमंडला सव्वे ।
अणवट्टियजोगेहिं चंदा सूरा गहगणा य ॥ १० ॥

जीवाभिगम, तृतीय प्रतिपत्ति उद्दे० २ सू० १७७.

छाया— ते मेरुं पर्यटन्तः प्रदक्षिणावर्त्तमण्डलाः सर्वे ।
अनवस्थितयोगैः चन्द्रमसः सूर्याः ग्रहगणाश्च ॥

भाषा टीका — वह चन्द्रमा, सूर्य, और ग्रहों के समूह स्थिर न रहते हुए नित्य मण्डलाकार में सुमेरुपर्वत की प्रदक्षिणा दिया करते हैं ।

तत्कृतः कालविभागः ।

४, १४

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–"सूरे आइच्चे सूरे", गोयमा! सूरादिया णं समयाइ वा आवलयाइ वा जाव उस्सप्पिणीइ वा अवसप्पिणीइ वा से तेणट्ठेणं जाव आइच्चे ।

व्याख्या प्रज्ञप्ति शत० १२ उ० ६

से किं तं पमाणकाले? दुविहे पण्णत्ते, तं जहा – दिवप्पमाणकाले राइप्पमाणकाले इच्चाइ ।

व्याख्याप्रज्ञप्ति शतक ११ उ० ११ सू० ४२४
जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, सूर्य प्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति ।

छाया— अथ केनार्थेन भगवन् एवं उच्यते – "सूर्यः आदित्यः सूर्यः", गौतम ! सूर्यादिकाः समयादयः वाऽऽवलकादयः वा यावत् उत्सर्पिण्यादयः वाऽवसर्पिण्यादयः वाऽथ तेनार्थेन यावदादित्यः ।

अथ किं तत्प्रमाणकालः? द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा – दिवसप्रमाणकालः रात्रिप्रमाणकालः इत्यादि ।

प्रश्न — भगवन ! सूर्य को आदित्य किस कारण से कहते हैं ?

उत्तर — गौतम ! आवलि आदि से लगाकर उत्सर्पिणी अथवा अवसर्पिणी तक के समय की आदि सूर्य से ही होती है, इस कारण से उसे आदित्य कहते हैं ?

प्रश्न—प्रमाण काल किसे कहते हैं?

उत्तर—वह दो प्रकार का होता है—दिवस प्रमाण काल और रात्रि प्रमाण काल। इत्यादि।

बहिरवस्थिताः।

४, १५.

अंतो मणुस्सखेत्ते हवंति चारोवगा य उववण्णा।
पञ्चविहा जोइसिया चंदा सूरा गहगणा य ॥ २१ ॥
तेण परं जे सेसा चंदाइच्चगहतारनखत्ता।
नत्थि गई नवि चारो अवट्ठिया ते मुणेयव्वा ॥ २२ ॥

जीवाधिगम तृतीय प्रतिपत्ति उद्दे० २ सूत्र १७७

छाया— अन्तः मनुष्यक्षेत्रे भवन्ति चारोपगाश्च उपपन्नाः।
पञ्चविधाः ज्योतिष्काः चन्द्रमसः सूर्याः ग्रहगणाश्च ॥
तेन परं यानि शेषाणि चन्द्रमसादित्यग्रहतारकनक्षत्राणि।
नास्ति गतिः नापि चारः अवस्थितानि तानि ज्ञातव्यानि ॥

भाषा टीका—मनुष्य क्षेत्र के अन्दर उत्पन्न हुए पांचो प्रकार के ज्योतिष्क चन्द्रमा, सूर्य, और ग्रहों के समूह चलते रहते हैं। किन्तु मनुष्य क्षेत्र के बाहिर के शेष चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारे गति नहीं करते, न चलते हैं। वरन् उनको निश्चल समझना चाहिये।

संगति—इन सब आगम वाक्यों और सूत्र के पदों में विशेष कथन के अतिरिक्त और कुछ भेद नहीं है.

वैमानिकाः।

४, १६.

वेमाणिया

व्याख्याप्रज्ञप्ति० शतक २० सूत्र ६७५-६८२.

छाया— वैमानिकाः।

भाषा टीका—[ज्योतिष्क देवों से ऊपर रहने वाले देवों को] वैमानिक कहते हैं।

कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ।

४, १७

वेमाणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—कप्पोपवण्णगा य कप्पाईया य ॥

प्रज्ञापना प्रथम पद सूत्र ५०.

छाया— वैमानिकाः द्विविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा-कल्पोपपन्नकाश्च कल्पातीताश्च।

भाषा टीका—वैमानिक दो प्रकार के होते हैं—कल्पोपपन्न और कल्पातीत।

उपर्युपरि ।

४, १८

ईसाणस्स कप्पस्स उप्पिं सपक्खिं इत्यादि ।

प्रज्ञापना पद २ वैमानिकदेवाधिकार।

छाया— ईशानस्य कल्पस्य उपरि सपक्षं इत्यादि

भाषा टीका—ईशान कल्प के ऊपर २ बाकी सब रचना है।

सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तर-लान्तवकापिष्टशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानत-प्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजय-वैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ।

४, १९

सोहम्म ईसाण सणंकुमार माहिंद बंभलोय लंतग महासुक्क सहस्सार आणय पाणय आरण अच्चुय हेट्ठिमगेवेज्जग मज्झिमगेवेज्झग उपरिमगेवेज्झग विजय वेजयंत जयंत अपराजिय सव्वट्ठसिद्धदेवा य ।

प्रज्ञापना पद ६, अनुयोगद्वार सू० १०३ औपपातिक सिद्धाधिकार।

छाया— सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोकलान्तकमहाशुक्रसहस्रारऽऽनतप्राणताऽऽरणाऽच्युताधस्ताद्ग्रैवेयकमध्यमग्रैवेयकोपरिमग्रैवेयकविजयवैजयन्तजयन्तापराजितसर्वार्थसिद्धदेवाश्च ।

भाषा टीका— सौधर्म, ईशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत, अधोग्रैवेयक, मध्यम ग्रैवेयक, उपरिम ग्रैवेयक, विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि के देव [वैमानिक कहलाते हैं।]

संगति—दिगम्बर ग्रन्थों में श्वेताम्बर तथा स्थानकवासी आगमों का स्वर्गों के विषय में मतभेद है। दिगम्बर ग्रन्थ सोलह स्वर्ग मानते है। जैसा कि सूत्र में लिखा है। किन्तु आगमों में ब्रह्मोत्तर, कापिष्ट, शुक्र और शतार इन चार स्वर्गों के अस्तित्व को नहीं माना। लान्तव का नाम आगमों मे लान्तक मिलता है। अत: इन भेदों में साम्प्रदायिकता होने के कारण यह समन्वय में बाधक सिद्ध नहीं होते। इसी कारण से दिगम्बर आम्नाय के सूत्रों में सोलह तथा श्वेताम्बर आम्नाय के तत्वार्थसूत्र में बारह स्वर्ग मिलते हैं।

स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिकाः ।

४. २०.

गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ।

४, २१.

सोहम्मीसाणेसु देवा केरिसए कामभोगे पच्चणुब्भवमाणा विहरंति? गोयमा! इट्ठा सद्दा इट्ठा रूवा जाव फासा एवं जाव गेवेज्जा अणुत्तरोववातिया णं अणुत्तरा सद्दा एवं जाव अणुत्तरा फासा।

जीवाभिगम० प्रतिपत्ति ३ उद्दे० २ सूत्र २१६
प्रज्ञापना पद २ देवाधिकार।

·······महिड्ढीया महज्जुइया जाव महाणुभागा इड्ढीए पएणत्ते, जाव अच्चुओ, गेवेज्जणुत्तरा य सव्वे महिड्ढीया··· ।

जीवाभिगम० प्रतिपत्ति ३ सूत्र २१७ वैमानिकाधिकार ।

छाया— सौधर्मैशानयोः देवाः कीदृक् कामभोगान् प्रत्यनुभवमानाः विहरन्ति ? गौतम! इष्टाः शब्दाः इष्टाः रूपाः यावत् स्पर्शाः एवं यावत् ग्रैवेयकाः अनुत्तरोपपातिकाः अनुत्तराः शब्दाः एवं यावत् अनुत्तराः स्पर्शाः ।

महर्द्धिकाः महद्द्युतिकाः यावत् महानुभागाः ऋद्धयः प्रज्ञप्ताः, यावत् अच्युतः, ग्रैवेयकाः अनुत्तराश्च सर्वे महर्द्धिकाः·········

प्रश्न—सौधर्म तथा ईशान स्वर्गों मे देव कैसे २ काम भोगों को भोगते हुए विहार करते हैं।

उत्तर—गौतम। वह इष्ट शब्द, इष्ट रूप, इष्ट गंध, इष्ट रस और इष्ट स्पर्श का ग्रैवेयक तथा अनुत्तरों तक आनन्द लेते हैं।

अच्युत स्वर्ग तक वह महानुभाग बड़ेभारी ऋद्धि वाले और महान कान्ति वाले होते हैं। ग्रैवेयक और अनुत्तरों के निवासी देव भी महान् ऋद्धि वाले होते हैं

संगति—यह पीछे बतलाया जा चुका है कि आगमों में सभी विषयों का प्रतिपादन विस्तार से किया गया है। जिवाभिगम प्रतिपत्ति सूत्रमें तथा प्रज्ञापना सूत्र में देवों के ऊपर २ अधिक तथा हीन गुणों पर भी बड़े विस्तार से प्रकाश डाला गया है। किन्तु किसी छोटे वाक्य के न होने से यहां किसी उपयुक्त पद का उद्धरण न किया जा सका। सूत्र में बतलाया है कि ऊपर २ देवों की अधिकाधिक आयु होती है, प्रभाव भी अधिकाधिक ही होता जाता है, सुख भी एक कल्प से दूसरे आदि में अधिक २ ही है, कान्ति भी अधिक २ होती जाती है, लेश्या अधिकाधिक विशुध्द होती जाती है, इन्द्रियों की विषय ग्रहण करने की शक्ति भी बढ़ती जाती है। और अवधि ज्ञान का विषय भी उनका अधिक २ ही होता जाता है।

इसके विरुद्ध ऊपर २ के देवों की गति कम होती जाती है। अर्थात् जितने २ ऊपर जाइये देव कम चलने हैं। ग्रैवेयकों के अहमिन्द्र तो अपने स्थान से कहीं भी नहीं जाते। शरीर भी उपर २ छोटा होता जाता है, परिग्रह भी ऊपर २ कम रखते जाते हैं, और अभिमान भी ऊपर २ कम होता जाता है।

पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ।

४, २२

सोहम्मीसाणदेवाणं कति लेस्साओ पन्नताओ? गोयमा! एगा तेऊलेस्सा पगणत्ता। सणंकुमारमाहिंदेसु एगा पम्हलेस्सा एवं बंभलोगे वि पम्हा। सेसेसु एक्का सुक्कलेस्सा अणुत्तरोववातियाणं एक्का परमसुक्कलेस्सा।

जीवाभिगम० प्रतिपत्ति ३ उद्दे० १ सूत्र २१४
प्रज्ञापना पद १७ उद्दे० १ लेश्याधिकार।

छाया— सौधर्मैशानदेवानां कतिलेश्याः प्रज्ञप्ताः? गौतम! एका तेजोलेश्या प्रज्ञप्ता। सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः एका पद्मलेश्या एवं ब्रह्मलोकेऽपि पद्मलेश्या। शेषेषु एका शुक्लेश्या अनुत्तरोपपातिकानामेका परम-शुक्लेश्या।

प्रश्न—सौधर्म और ईशान स्वर्ग वालों के कितनी लेश्या होती हैं?

उत्तर—गौतम! उनके केवल एक पीत लेश्या (तेजोलेश्या) ही होती है।

सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्ग मे अकेली पद्म लेश्या होती है। ब्रह्मलोक में भी पद्मलेश्या होती है। शेष स्वर्गों मे केवल शुक्ल लेश्या ही होती है। अनुत्तरों में उत्पन्न हुओं के परम शुक्ल लेश्या होती है।

संगति—आगम के इस वाक्य का दिगम्बरों से थोडा मतभेद है। उनके लेश्या क्रम के अनुसार सौधर्म ईशान में पीत लेश्या; सानत्कुमार और माहेन्द्र में पीतपद्म दोनों; ब्रह्म ब्रह्मोत्तर, लांतव और कापिष्ट में पद्मलेश्या; शुक्र, महाशुक्र, शतार और सहस्रार में पद्म

और शुक्ल दोनों; तथा आनत आदि शेष स्वर्गों में शुक्ल लेश्या होती है। परंतु अनुदिश और अनुत्तर इन चौदह विमानों में परम शुक्ल होती है।

प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ।

४, २३.

कप्पोपवरणगा बारसविहा परणत्ता ।

प्रज्ञापना प्रथम पद सूत्र ४६.

छाया— कल्पोपपन्नकाः द्वादशविधाः प्रज्ञप्ताः ।

भाषा टीका—[ग्रैवेयकों से पहिले के] कल्पोपपन्न जाति के देव बारह प्रकार के कहे जाते हैं।

ब्रह्मलोकालया लौकान्तिकाः ।

४, २४.

बंभलोए कप्पे ...... लोगंतिता देवा परणत्ता ।

स्थानांग० स्थान ८ सूत्र ६२३

छाया— ब्रह्मलोके कल्पे .... लौकान्तिकाः देवाः प्रज्ञप्ताः ।

भाषा टीका—ब्रह्मलोक कल्प के अन्त में रहने वाले लौकान्तिक देव कहलाते हैं।

सारस्वतादित्यवन्ह्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ।

४, २५.

सारस्सयमाइच्चा वरहीवरुणा य गद्दतोया य ।
तुसिया अव्वाबाहा अग्गिच्चा चेव रिट्ठा * च ॥

छाया— सारस्वताऽऽदित्याः वन्हयो वरुणाश्च गर्दतोयाश्च ।
तुषिता अव्याबाधा आग्नेयाश्चैव रिष्टाश्च ॥

---

* स्थानांग स्थान० ८ सूत्र ६२३ में इसी गाथा में 'रिट्ठा च' के स्थान में 'बाद्धव्वा' पाठ देकर आठ भेद ही माने हैं।

भाषा टीका—सारस्वत, आदित्य, वन्हि, वरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध आग्नेय और रिष्ट यह सब के सब लौकान्तिक होते हैं।

संगति—सूत्र में संक्षेप से आठ भेद लिखे हैं। किन्तु आगम में विस्तार से नौ भेद लिखे गये हैं। आगम के वन्हि और आग्नेय को सूत्र में केवल वन्हि में ही अन्तर्भाव कर लिया है। आगम में अरुण को वरुण और अरिष्ट को रिष्ट नाम दिया गया है, जो कि कोई वास्तविक भेद नहीं है।

विजयादिषु द्विचरमाः ।

४, २६.

विजय वेजयंत जयंत अपराजिय देवत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता पएणत्ता? गोयमा! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्सत्थि अट्ठ वा सोलस वा इत्यादि ।

प्रज्ञापना० पद १५ इन्द्रियपद

छाया— विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु देवत्त्वे कियान्ति द्रव्येन्द्रियाणि अतीतानि प्रज्ञप्तानि? गौतम! कस्यास्ति कस्य नास्ति, यस्यास्ति अष्ट वा षोडश वा इत्यादि ।

प्रश्न—विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित के देवपने में कितनी द्रव्येन्द्रियाँ बीत जाती हैं।

उत्तर—गौतम ! किसी के होती हैं और किसी के नहीं भी होतीं? जिनके होती हैं तो आठ या सोलह होती हैं।

संगति—एक जन्म की आठ द्रव्येन्द्रिय (स्पर्शन, रसना, दो नाक, दो आंख और दो कान) मानी गई हैं। अतएव दो जन्मों की सोलह द्रव्येन्द्रियाँ हुईं। उपरोक्त विमानों से आने वाले प्राय: तो उसी भव में मोक्ष को प्राप्त होते हैं। जिनको उसी भव में मोक्ष नहीं होती वह दूसरे भव में मोक्ष चले जाते हैं। किन्तु दो बार चार अनुत्तर विमानों में जाकर मोक्ष जाना तो उनका बिलकुल निश्चित है।

औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ।

४, २७.

उववाइया ......मणुआ (सेसा) तिरिक्खजोणिया ।

दशवैका० अध्याय ४ षट् कायाधिकार ।

छाया— उपपादकाः मनुजाः (शेषाः) तिर्यग्योनयः ।

भाषा टीका—औपपादिक (देव नारकियों) और मनुष्यों के अतिरिक्त शेष जीव तिर्यंच कहलाते हैं ।

स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्धहीनमिता ।

४, २८.

असुरकुमाराणं भंते! देवाणं केवइयं कालट्ठिइ पणणत्ता? गोयमा! उक्कोसेणं साइरेगं सागरोवमं ...... ।

नागकुमाराणं देवाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पन्नता? गोयमा! उक्कोसेणं दोपलिओवमाइं देसूणाइं .... सुवण्णकुमाराणं भंते! देवणं केवइयं कालं ठिई पन्नता? गोयमा! उक्कोसेणं दोपलिओवमाइं देसूणाइं । एवं एएणं अभिलावेणं... जाव थणियकुमाराणं जहा नागकुमाराणं ।

प्रज्ञापना० पद ४ भवनपत्यधिकार । स्थिति विषय ।

छाया— असुरकुमाराणां भगवन! कियती कालस्थितिः प्रज्ञप्ता? गौतम! उत्कर्षेण सातिरेकं सागरोपमम् ।

नागकुमाराणां देवानां भगवन! कियती कालस्थितिः प्रज्ञप्ता? गौतम! उत्कर्षेण द्वे पल्योपमे देशोने । सुपर्णकुमाराणां भगवन! देवानां कियती कालस्थितिः प्रज्ञप्ता? गोतम! उतकर्षेण द्वे

पल्योपमे देशोने। एवं अनेन अभिलापेन ....यावत् स्तनित-कुमाराणां यथा नागकुमाराणाम्।

प्रश्न—भगवन्! असुरकुमारों की कितनी आयु होती है?

उत्तर—गौतम! उनकी अधिक से अधिक आयु कुछ अधिक एक सागर होती है!

प्रश्न—भगवन! नागकुमारों की कितनी आयु होती है?

उत्तर—गौतम! अधिक से अधिक कुछ कम दो पल्य होती है!

प्रश्न—भगवन! सुपर्ण कुमारों की कितनी आयु होती है?

उत्तर—गौतम! अधिक से अधिक कुछ कम दो पल्य होती है!

इसी प्रकार से स्तनिक कुमारों तक की आयु नागकुमारों की आयु के समान होती है!

संगति—इस विषय मे आगमों का दिगम्बर ग्रथो से थाड़ा मत भेद है। सूत्र में कहा गया है कि असुर कुमारों की आयु एक सागर की है, नागकुमारों की तीन पल्य है, सुपर्ण कुमारों की आयु अढ़ाई पल्य है, द्वीप कुमारों की दो पल्य है, और शेष रहे जो छह कुमार उनकी आयु डेढ़ २ पल्य की है!

सौधर्मैशानयोः सागरोपमेऽधिके।

४, २९.

सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त।

४, ३०.

त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानि तु।

४, ३१.

आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च।

४, ३२.

अपरा पल्योपमधिकम्।

४, ३३.

परतः परतः पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा ।

४, ३४

दो चेव सागराइं, उक्कोसेण वियाहिआ ।
सोहम्मम्मि जहन्नेणं, एगं च पलिओवमं ॥ २२० ॥
सागरा साहिया दुन्नि, उक्कोसेण वियाहिया ।
ईसाणम्मि जहन्नेणं, साहियं पलिओवमं ॥ २२१ ॥
सागराणि य सत्तेव, उक्कोसेणं ठिई भवे ।
सणंकुमारे जहन्नेणं, दुन्नि ऊ सागरोवमा ॥ २२२ ॥
साहिया सागरा सत्त, उक्कोसेणं ठिई भवे ।
माहिन्दम्मि जहन्नेणं, साहिया दुन्नि सागरा ॥ २२३ ॥
दस चेव सागराइं, उक्कोसेणं ठिई भवे।
बम्भलोए जहन्नेणं, सत्त ऊ सागरोवमा ॥ २२४ ॥
चउदस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे ।
लन्तगम्मि जहन्नेणं, दस उ सागरोवमा ॥ २२५ ॥
सत्तरस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे ।
महासुक्के जहन्नेणं, चोद्दस सागरोवमा ॥ २२६ ॥
अट्ठारस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे ।
सहस्सारम्मि जहन्नेणं, सत्तरस सागरोवमा ॥ २२७ ॥
सागरा अउणवीसं तु, उक्कोसेणं ठिई भवे ।
आणयम्मि जहन्नेणं, अट्ठारस सागरोवमा ॥ २२८ ॥

वीसं तु सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
पाणयम्मि जहन्नेणं, सागरा अउणवीसई ॥ २२९ ॥
सागरा इक्कवीसं तु उक्कोसेण ठिई भवे।
आरणम्मि जहन्नेणं, वीसई सागरोवमा ॥ २३० ॥
बावीसं सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
अच्चुयम्मि जहन्नेणं, सागरा इक्कवीसई ॥ २३१ ॥
तेवीस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
पढमम्मि जहन्नेणं, बावीसं सागरोवमा ॥ २३२ ॥
चउवीस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
बिइयम्मि जहन्नेणं, तेवीसं सागरोवमा ॥ २३३ ॥
पणवीस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
तइयम्मि जहन्नेणं, चउवीसं सागरोवमा ॥ २३४ ॥
छवीस सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
चउत्थम्मि जहन्नेणं, सागरा पणुवीसई ॥ २३५ ॥
सागरा सत्तवीसं तु उकोसेण ठिई भवे।
पञ्चमम्मि जहन्नेणं, सागरा उ छवीसइ ॥ २३६ ॥
सागरा अट्ठवीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे।
छट्ठम्मि जहन्नेणं, सागरा सत्तवीसइ ॥ २३७ ॥
सागरा अउणतीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे।
सत्तमम्मि जहन्नेणं, सागरा अट्ठवीसइ ॥ २३८ ॥

तीसं तु सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
अट्ठमम्मि जहन्नेणं, सागरा अउस तीसई ॥ २३९ ॥
सागरा इक्कतीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे।
नवमम्मि जहन्नेणं, तीसई सागरोवमा ॥ २४० ॥
तेत्तीसा सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।
चउसुपि विजयाईसु, जहन्नेणेक्कत्तीसई ॥ २४१ ॥
अजहन्नमणुक्कोसा, तेत्तीसं सागरोवमा।
महाविमाणे सव्वट्ठे, ठिई एसा वियाहिया ॥ २४२ ॥

उत्तराध्ययनसूत्र अध्य० ३६

छाया— द्वे चैव सागरोपमे, उत्कर्षेण व्याख्याता।
सौधर्मे जघन्येन, एकं च पल्योपमम् ॥ २२० ॥
सागरोपमे साधिके द्वे, उत्कर्षेण व्याख्याता।
ईशाने जघन्येन, साधिकं पल्योपमम् (एकं) ॥ २२१ ॥
सागरोपमाणि च सप्तैव, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत्।
सानत्कुमारे जघन्येन, द्वे तु सागरोपमे ॥ २२२ ॥
साधिकानि सागरोपमाणि सप्त, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत्।
माहेन्द्रे जघन्येन, साधिके द्वे सागरोपमे ॥ २२३ ॥
दश चैव सागरोपमाणि, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत्।
ब्रह्मलोके जघन्येन, सप्त तु सागरोपमाणि ॥ २२४ ॥
चतुर्दश सागरोपमाणि, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत्।
लान्तके जघन्येन, दश तु सागरोपमाणि ॥ २२५ ॥
सप्तदश सागरोपमाणि, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत्।
महाशुक्रे जघन्येन, चतुर्दश सागरोपमाणि ॥ २२६ ॥

अष्टादश सागरोपमाणि, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
सहस्रारे जघन्येन, सप्तदश सागरोपमाणि ॥ २२७ ॥

सागरोपमाणां एकोनविंशतिस्तु, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
आनते जघन्येन, अष्टादश सागरोपमाणि ॥ २२८ ॥

विंशतिस्तु सागरोपमाणि, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
प्राणते जघन्येन, सागरोपमाणां एकोनविंशतिः ॥ २२९ ॥

सागरोपमाणां एकविंशतिस्तु, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
आरणे जघन्येन, विंशतिः सागरोपमाणि ॥ २३० ॥

द्वाविंशतिः सागरोपमाणि, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
अच्युते जघन्येन, सागरोपमाणां एकविंशतिः ॥ २३१ ॥

त्रयोविंशतिः सागरोपमाणि, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
प्रथमे (ग्रैवेयके) जघन्येन, द्वाविंशतिः सागरोपमाणि ॥ २३२ ॥

चतुर्विंशतिः सागरोपमाणि, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
द्वितीये जघन्येन, त्रयोविंशतिः सागरोपमाणि ॥ २३३ ॥

पञ्चविंशतिः सागरोपमाणि, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
तृतीये जघन्येन, चतुर्विंशतिः सागरोपमाणि ॥ २३४ ॥

षड्विंशतिः सागरोपमाणि, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
चतुर्थे जघन्येन, सागरोपमाणि पञ्चविंशतिः ॥ २३५ ॥

सागरोपमाणां सप्तविंशतिस्तु, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
पञ्चमे जघन्येन, सागरोपमाणां तु षड्विंशतिः ॥ २३६ ॥

सागरोपमाणामष्टाविंशतिस्तु, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
षष्ठे जघन्येन, सागरोपमाणां सप्तविंशतिः ॥ २३७ ॥

सागरोपमाणामेकोनत्रिंशत्तु, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
सप्तमे जघन्येन, सागरोपमाणामष्टाविंशतिः ॥ २३८ ॥

त्रिंशत्तु सागरोपमाणि, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
अष्टमे जघन्येन, सागरोपमाणामेकोनत्रिंशत् ॥ २३९ ॥
सागरोपमाणामेकत्रिंशत्तु, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
नवमे जघन्येन, त्रिंशत्सागरोपमाणि ॥ २४० ॥
त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि, उत्कर्षेण स्थितिर्भवेत् ।
चतुर्ष्वपि विजयादिषु, जघन्येनैकत्रिंशत् ॥ २४१ ॥
अजघन्यानुत्कृष्टा, त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि ।
महाविमाने सर्वार्थे, स्थितिरेषा व्याख्याता ॥ २४२ ॥

भाषा टीका—सौधर्म स्वर्ग की जघन्य आयु एक पल्य तथा उत्कृष्ट आयु दो सागर की है ॥ २०० ॥ ईशान स्वर्ग की जघन्य आयु एक पल्य से कुछ अधिक तथा उत्कृष्ट दो सागर से कुछ अधिक है ॥ २२१ ॥ सानत्कुमार स्वर्ग की जघन्य आयु दो सागर तथा उत्कृष्ट आयु सात सागर है ॥ २२२ ॥ माहेन्द्र स्वर्ग की जघन्य आयु दो सागर से कुछ अधिक तथा उत्कृष्ट आयु सात सागर से कुछ अधिक होती है ॥ २२३ ॥ ब्रह्मलोक की जघन्य आयु सात सागर तथा उत्कृष्ट आयु दश सागर होती है ॥ २२४ ॥ लान्तक में जघन्य आयु दस सागर तथा उत्कृष्ट आयु चौदह सागर होती है ॥ २२५ ॥ महाशुक्र की जघन्य आयु चौदह सागर और उत्कृष्ट आयु सतरह सागर होती है ॥ २२६ ॥ सहस्रार की जघन्य आयु सतरह सागर तथा उत्कृष्ट आयु अठारह सागर होती है ॥ २२७ ॥ आनत स्वर्ग की जघन्य आयु अठारह सागर होती है तथा उत्कृष्ट आयु उन्नीस सागर होती है ॥ २२८ ॥ प्राणत स्वर्ग की जघन्य आयु उन्नीस सागर तथा उत्कृष्ट आयु बीस सागर होती है ॥२२९॥ आरण स्वर्ग की जघन्य आयु बीस सागर और उत्कृष्ट आयु इक्कीस सागर होती है ॥ २३० ॥ अच्युत स्वर्ग की जघन्य आयु इक्कीस सागर तथा उत्कृष्ट आयु बाईस सागर होती है ॥ २३१ ॥ प्रथम ग्रैवेयक की जघन्य आयु बाईस सागर की तथा उत्कृष्ट आयु तेईस सागर है ॥ २३२ ॥ दूसरे ग्रैवेयक की जघन्य आयु तेईस सागर तथा उत्कृष्ट आयु चौबीस सागर होती है ॥ २३३ ॥ तीसरे ग्रैवेयक की जघन्य आयु चौबीस सागर तथा उत्कृष्ट आयु पच्चीस सागर होती है ॥२३४॥ चतुर्थ ग्रैवेयक की जघन्य आयु पच्चीस सागर तथा उत्कृष्ट आयु छब्बीस सागर होती है

॥२३५॥ पंचम ग्रैवेयक की जघन्य आयु छब्बीस सागर तथा उत्कृष्ट आयु सत्ताईस सागर होती है ॥ २३६ ॥ छटे ग्रैवेयक की जघन्य आयु सत्ताईस सागर तथा उत्कृष्ट आयु अट्ठाईस सागर होती है ॥ २३७ ॥ सातवें ग्रैवेयक की जघन्य आयु अट्ठाईस सागर तथा उत्कृष्ट आयु उनतीस सागर है ॥ २३८ ॥ आठवें ग्रैवेयक की जघन्य आयु उनतीस सागर तथा उत्कृष्ट आयु तीस सागर होती है ॥ २३९ ॥ नौवें ग्रैवेयक की जघन्य आयु तीस सागर तथा उत्कृष्ट आयु इकत्तीस सागर होती है २४० ॥ विजय वैजयन्त जयन्त और अपराजित नाम के अनुत्तर विमानों की जघन्य आयु इकत्तीस सागर तथा उत्कृष्ट आयु तेंतीस सागर होती है ॥ २४१ ॥ सर्वार्थसिद्धि नाम के महाविमान की उत्कृष्ट और जघन्य आयु तेंतीस सागर होती है। इस प्रकार वैमानिक देवों की स्थिति का वर्णन किया गया ॥ २४२ ॥

संगति— यह पीछे दिखलाया जा चुका है कि आगमों के इस वर्णन में सूत्रों से थोड़ा स्वर्गों की संख्या के विषय मे मत भेद है। आगमों ने बारह स्वर्ग और उनके बारह ही इन्द्र माने हैं। किन्तु सूत्रो में सोलह स्वर्ग और उनके बारह इन्द्र माने गये हैं। आगमों ने ब्रह्मोत्तर, कापिष्ट, शुक्र और शतार स्वर्ग के अस्तित्व को नहीं माना है। अतएव स्वर्गों की आयु के विषय मे भी नाम मात्र का थोड़ा भेद आगया है। सूत्र तथा दिगम्बर ग्रन्थों में महाशुक्र की उत्कृष्ट आयु सूत्र में सोलह सागर से कुछ अधिक और आगम में सतरह सागर मानी गई है। सूत्र में आनत प्राणत की उत्कृष्ट आयु बीस सागर की तथा आगम में आनत की उन्नीस सागर और प्राणत की उत्कृष्ट आयु बीस सागर मानी गई है। सूत्र मे आरण अच्युत की उत्कृष्ट आयु बाईस सागर तथा आगम मे आनत की इक्कीस और प्राणत की उत्कृष्ट आयु बाईस सागर मानी गइ है। नव ग्रैवेयक की आयु दोनों की समान है। दिगम्बरों में नव ग्रैवेयकों के पश्चात् एक पटल नव अनुदिश का माना गया है और उसके उपर एक पटल विजयादिक पांच अनुत्तर विमानों का माना गया है। सूत्र के 'च' पद से उन्ही नव अनुदिशों का ग्रहण करना सर्वार्थसिद्धि आदि तत्वार्थसूत्र की टीकाओं मे माना गया है। दिगम्बरों के अनुसार नव अनुदिशों की उत्कृष्ट आयु बत्तीस सागर तथा पांच अनुत्तरों की उत्कृष्ट आयु तेंतीस सागर मानी गई है। किन्तु आगम ग्रन्थों ने नव अनुदिशों का अस्तित्व नहीं माना है। अत: उनमें विजयादि चार विमानों की उत्कृष्ट आयु बत्तीस सागर और सर्वार्थसिध्दि की उत्कृष्ट आयु तेंतीस सागर

मानी गई है। उत्कृष्ट आयु के समान जघन्य आयु का भेद स्वयं लगा लेना चाहिये। किन्तु यह आयु का अन्तर मतान्तर है। इसके अतिरिक्त आयु का विषय तात्त्विक विषय भी नहीं है कि उसका भेद वास्तविक भेद समझा जावे।

नारकाणां च द्वितीयादिषु ।

४, ३५.

दशवर्षसहस्राणि प्रथमायां ।

४, ३६.

सागरोवममेगं तु, उक्कोसेण वियाहिया ।
पढमाए जहन्नेणं, दसवास सहस्सिया ॥ १६० ॥
तिण्णेव सागरा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया ।
दोच्चाए जहन्नेणं, एगं तु सागरोवमं ॥ १६१ ॥

उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन ३६ ।

एवं जा जा पुव्वस्स उक्कोसठिई अत्थि ता ता परओ परओ जहण्णठिई णेअव्वा ।

छाया— सागरोपममेकं तु, उत्कर्षेण व्याख्याता ।
प्रथमायां जघन्येन, दशवर्षसहस्रिका ॥ १६० ॥
त्रीण्येव सागरोपमाणि तु, उत्कर्षेण व्याख्याता ।
द्वितीयायां जघन्येन, एकं तु सागरोपमम् ॥ १६१ ॥
एवं या या पूर्वस्य उत्कृष्टस्थितिरस्ति सा सा परतः परतः जघन्य-स्थितिः ज्ञातव्या ।

भाषा टीका—प्रथम नरक भूमि की जघन्य आयु दश सहस्र वर्ष की होती है। और उत्कृष्ट आयु एक सागर होती है ॥ १६० ॥

दूसरे नरक की जघन्य आयु एक सागर होती है और उत्कृष्ट आयु तीन सागर होती है ॥ १६१ ॥

इसी प्रकार जो पहिले २ की उत्कृष्ट स्थिति है वह बाद २ वाले की जघन्य स्थिति है ॥ १६१ ॥

संगति—इन सूत्रों में और आगम वाक्य में कोई भी अन्तर नहीं है।

भवनेषु च ।

४, ३७.

भोमेज्जाणं जहएणेणं दसवाससहस्सिया ।

उत्तरा० अध्यन ३६ गाथा २१७.

छाया— भौमेयानां जघन्येन दसवर्षसहस्रिका ।

भाषा टीका—भवनवासी देवों की भी जघन्य आयु दश सहस्र वर्ष होती है।

व्यन्तराणाञ्च ।

४, ३८.

परा पल्योपमधिकम् ।

४, ३९.

वाणमंतराणं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पएणत्ता? गोयमा! जहन्नेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं पलिओवमं ।

प्रज्ञापना० स्थितिपद ४.

छाया— व्यन्तराणां भगवन् देवानां कियती स्थितिः प्रज्ञप्ता? गौतम! जघन्येन दशवर्षसहस्रिका उत्कर्षेण पल्योपमा ।

प्रश्न—भगवन् व्यन्तरों की आयु कितनी होती है?

उत्तर—जघन्य दशसहस्र वर्ष और उत्कृष्ट एक पल्य।

ज्योतिष्काणाञ्च ।

४, ४०.

तदष्टभागोऽपरा ।

४, ४१.

पलिओवममेगं तु, वासलक्खेण साहियं ।
पलिओवमट्ठभागो, जोइसेसु जहन्निया ॥ २१६ ॥

उत्तरा० अध्यन ३६

छाया— पल्योपममेकं तु, वर्षलक्षेण साधिकम् ।
पल्योपमस्याष्टमभागः, ज्योतिष्केषु जघन्यिका ॥ २१९ ॥

भाषा टीका—ज्योतिष्क देवों की उत्कृष्ट आयु एक लाख वर्ष अधिक एक पल्य होती है। और जघन्य आयु पल्य का आठवां भाग प्रमाण होती है।

लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ।

४, ४२

लोगंतिकदेवाणं जहण्णमणुक्कोसेणं अट्ठसागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता ।

स्थानांग स्थान ८ सूत्र ६२३
व्याख्याप्रज्ञप्ति शतक ६ उद्देश ५

छाया— लौकान्तिकदेवानां जघन्यानुत्कर्षेण अष्टसागरोपमा स्थितिः प्रज्ञप्ता ।

भाषा टीका—लौकान्तिक देवों की उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति आठ सागर होती है।

संगति—इन सब सूत्रों में आगमों से नाम मात्र का ही अन्तर है। कई स्थलों पर तो शब्द २ मिलते हैं।

इति श्री-जैनमुनि-उपाध्याय-श्रीमदात्माराम-महाराज-संगृहीते
तत्त्वार्थसूत्रजैनाऽऽगमसमन्वये

❀ चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥ ४ ॥ ❀

———:o:———

पञ्चमोऽध्यायः

—————:०:—————

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ।

५, १

चत्तारि अत्थिकाया अजीवकाया पगणत्ता, तं जहा—धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए पोग्गलत्थिकाए ।

स्थानांग स्थान ४, उद्दे० १ सूत्र २५१

व्याख्याप्रज्ञप्ति शतक ७ उद्दे० १० सूत्र ३०५

छाया— चत्वारः अस्तिकायाः अजीवकायाः प्रज्ञप्ताः—तद्यथा—"धर्मास्तिकायः, अधर्मास्तिकायः, आकाशास्तिकायः, पुद्गलास्तिकायः।"

भाषा टीका—चार अजीव अस्तिकाय होते हैं—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय ।

द्रव्याणि ।

५, २

जीवाश्च ।

५, ३

कइविहाणं भंते! दव्वा पगणत्ता? गोयमा! दुविहा पगणत्ता तं जहा—"जीवदव्वा य अजीवदव्वा य ।

अनुयोग० सूत्र १५१

छाया— कतिविधानि भगवन्! द्रव्याणि प्रज्ञप्तानि? गौतम! द्विविधानि प्रज्ञप्तानि । तद्यथा—जीवद्रव्याणि अजीवद्रव्याणि च ।

प्रश्न—भगवन्! द्रव्य कितने प्रकार के होते हैं?

उत्तर—गौतम! द्रव्य दो प्रकार के होते हैं—जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य ।

संगति—इस आगम वाक्य के शब्दों मे सूत्रों से संकोच विस्तार के अतिरिक्त

और कोई भेद नहीं है। इसके अतिरिक्त इस आगमवाक्य ने प्रथम सूत्र के भाव को तो खोलकर दर्शा दिया है।

नित्यावस्थितान्यरूपाणि ।

५, ४.

रूपिणः पुद्गलाः ।

५, ५

पंचत्थिकाए न कयाइ नासी न कयाइ नत्थि. न कयाइ न भविस्सइ भुविं च भवइ अ भविस्सइ अ धुवे नियए सासए अक्खए. अव्वए अवट्ठिए. निच्चे अरूवी ।

नन्दिसूत्र० सूत्र ५८

पोग्गलत्थिकायं रूविकायं ।

व्याख्याप्रज्ञप्ति शतक ७ उद्देश्य १०

छाया— पञ्चास्तिकायः न कदाचित् नासीत्, न कदाचित् न भवति, न कदाचित् न भविष्यति, अभूत च, भवति च, भविष्यति च, ध्रुवः नियतः शाश्वतः अक्षतः अव्ययः अवस्थितः नित्यः अरूपी।
पुद्गलास्तिकायः रूपिकायः ।

भाषा टीका — यह असम्भव है कि पांच अस्तिकाय किसी समय में न थे, या नहीं होते, या कभी भविष्य में न होंगे। यह सदा थे, सदा रहते हैं और सदा रहेंगे । यह ध्रुव, निश्चित, सदा रहने वाले, कम न होने वाले, नष्ट न होने वाले, एक से रहने वाले, नित्य और अरूपी हैं।

इनमें केवल पुद्गल अस्तिकाय रूपी द्रव्य है।

आ आकाशादेकद्रव्याणि ।

५, ६.

निष्क्रियाणि च ।

५, ७.

धम्मो अधम्मो आगासं दव्वं इक्किक्कमाहियं ।
अणंताणि य दव्वाणि कालो पुग्गलजंतवो ॥

उत्तराध्ययन० अध्य० २८ गाथा ८.

अवट्ठिए निच्चे ।

नन्दि० द्वादशाङ्गी अधिकार सूत्र ५८.

छाया— धर्मः अधर्मः आकाशं द्रव्यमेकैकमाख्यातम् । अवस्थितः नित्यः ।
अनन्तानि च द्रव्याणि, कालः पुद्गलजन्तवः ।

भाषा टीका — धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्य एक २ हैं । क्रिया रहित निश्चित और नित्य हैं ।

काल और पुद्गल द्रव्य अनत होते हैं ।

असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम् ।

५, ८.

चत्तारि पएसग्गेणं तुल्ला असंखेज्जा पएणत्ता. तं जहा— धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, लोगागासे, एगजीवे ।

स्थानांग० स्थान ४ उद्देश्य ३ सूत्र ३३४.

छाया— चत्वारः प्रदेशाग्रेण (प्रदेशपरिमाणेन) तुल्याः असंख्येयाः प्रज्ञप्ताः ।
तद्यथा - धर्मास्तिकायः अधर्मास्तिकायः, लोकाकाशः, एकजीवः ।

भाषा टीका — प्रदेशों की संख्या की अपेक्षा से चार के बराबर २ असंख्यात प्रदेश होते हैं ।

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, लोकाकाश और एक जीव द्रव्य के ।

आकाशस्याऽनन्ताः ।

५, ९.

आगासत्थिकाए पएसट्ठयाए अणंत गुणे ।

प्रज्ञापना पद ३ सूत्र ४१

छाया— आकाशास्तिकायः प्रदेशापेक्षयाऽनन्तगुणः।

भाषा टीका — प्रदेशों की अपेक्षा आकाश अस्तिकाय अनन्त गुणा है, अर्थात आकाश द्रव्य के अनंत प्रदेश होते हैं।

संख्येयाऽसंख्येयाश्च पुद्गलानाम्। ५, १०.

नाणोः। ५. ११

रूवी अजीवदव्वाणं भंते! कइविहा पराणत्ता? गोयमा! चउव्विहा पराणत्ता तं जहा— खंधा खंधदेसा खंधपएसा परमाणुपोग्गला ...... अणंता परमाणुपुग्गला अणंता दुपएसिया खंधा जाव अणंता दसपएसिया खंधा अणंता संखिज्जपएसिया खंधा अणंता असंखिज्जपएसिया खंधा अणंता अणंतपएसिया खंधा।

प्रज्ञापना ५ वां पद

छाया— रूपिणः अजीवद्रव्याणि भगवन! कतिविधानि प्रज्ञप्तानि? गौतम! चतुर्विधानि प्रज्ञप्तानि। तद्यथा-स्कन्धाः, स्कन्धदेशाः, स्कन्धप्रदेशाः, परमाणुपुद्गलाः। ...... अनन्ताः परमाणुपुद्गलाः, अनन्ताः द्विप्रदेशिकाः स्कन्धाः, यावत् अनन्ताः दशप्रदेशिकाः स्कन्धाः, अनन्ता संख्यातप्रदेशिकाः स्कन्धाः, अनंताः असंख्यातप्रदेशिकाः स्कन्धाः, अनन्ताः अनन्तप्रदेशिकाः स्कन्धा।

प्रश्न — भगवन्! रूपी अजीव द्रव्य कितने प्रकार के होते हैं?

उत्तर — गौतम! चार प्रकार के होते हैं — स्कन्ध, स्कन्ध देश, स्कन्ध प्रदेश और परमाणु पुद्गल।

परमाणु पुद्गल अनन्त होते हैं। दो प्रदेश वाले स्कन्धों से लगाकर दश प्रदेश

वाले स्कन्ध तक सब अनन्त होते हैं। संख्यात प्रदेश वाले स्कन्ध अनन्त होते हैं, असंख्यात प्रदेश वाले स्कन्ध भी अनन्त होते हैं और अनन्त प्रदेश वाले स्कन्ध भी अनन्त होते हैं।

संगति — सूत्र में पुद्गलों के चार भेद दिये हुए हैं। परमाणु, संख्यात प्रदेश वाले पुद्गल (स्कन्ध), असंख्यात प्रदेश वाले पुद्गल (स्कन्ध) और 'च' पद से अनन्त प्रदेश वाले पुद्गल (स्कन्ध)। आगम वाक्य में यह भेद दिखलाने के अतिरिक्त स्कन्धों की संख्या भी दे दी है। परमाणु के एक प्रदेश होने के कारण से प्रदेश नहीं माने गये हैं। यह सभी आगम वाक्य सूत्रों के साथ बिलकुल मिलते जुलते हैं।

लोकाकाशेऽवगाहः ।

५, १२.

धम्मो अधम्मो आगासं कालो पुग्गजंतवो ।
एस लोगुत्ति पगणत्ता जिर्णेहिं वरदंसहिं ॥

उत्तराध्ययन अध्य० २८ गाथा ७

छाया— धर्मोऽधर्मः आकाशः कालः पुद्गलजन्तवः ।
एषः लोक इति प्रज्ञप्तः जिनैर्वरदर्शिभिः ॥

भाषा टीका — जिसके अन्दर धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव रहते हों उसको सर्वदर्शी जिनेन्द्र भगवान ने लोक कहा है। अर्थात् लोकाकाश में सब द्रव्य रहते हैं।

धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ।

५, १३.

धम्माधम्मे य दो चेव, लोगमित्ता वियाहिया ।
लोगालोगे य आगासे· समए समयखेत्तिए ॥

उत्तराध्ययन अध्ययन ३६ गाथा ७.

छाया— धर्माधर्मौ च द्वौ चैव, लोकमात्रौ व्याख्यातौ ।
लोकेऽलोके चाकाशं, समयः समयक्षेत्रिकः ॥

भाषा टीका — धर्म और अधर्म नाम के दो द्रव्य सम्पूर्ण लोक भर में व्याप्त हैं। आकाश लोक भर में है और उसके बाहिर अलोक में भी सर्वत्र है। व्यवहार काल समय क्षेत्र में है।

एक प्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम्।

५, १४.

एगपएसो गाढा ......संखिज्जपएसोगाढा ...... असंखिज्ज-पएसो गाढा।

प्रज्ञापना पञ्चम पर्यायपद अजीवपर्यवाधिकार।

छाया — एकप्रदेशावगाहाः ...... संख्येयप्रदेशावगाहाः ...... असंख्येय-प्रदेशावगाहाः।

भाषा टीका — पुद्गलों के स्कन्ध [अपने २ परिमाण की अपेक्षा] आकाश के एक प्रदेश में भी हैं, संख्यात प्रदेशों में भी हैं और असंख्यात प्रदेशों को भी घेरे हुए हैं।

असंख्येयभागादिषु जीवानाम्।

५, १५

लोअस्स असंखेज्जइभागे।

प्रज्ञापना पद २ जीवस्थानाधिकार।

छाया— लोकस्य असंख्येय भागे (जीवानाम्)

भाषा टीका — जीवों का अवगाह लोक के असंख्यातवें भाग में है।

प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत्।

५, १६.

दीवं व ...... जीवेवि जं जारिसयं पुव्वकम्मनिबद्धं बोंदिं णिवत्तेइ तं असंखेज्जेहिं जीवपदेसेहि सचित्तं करेइ खुड्डियं वा महालियं वा।

राजप्रश्नीय सूत्र सूत्र ७४.

छाया— दीप इव······जीवोऽपि यद्यादृश्यकं पूर्वकर्मनिबद्धं शरीरं निर्वर्तयति तत् असंख्येयैः जीवप्रदेशैः सचित्तं करोति क्षुद्रं वा महालयं वा।

भाषा टीका — अपने पूर्व बांधे हुए कर्म के अनुसार प्राप्त किये हुए शरीर भर को जीव अपने असंख्यात प्रदेशों से दीपक के समान सचित्त (सजीव) कर लेता है। फिर चाहे वह शरीर छोटे से छोटा हो या बड़े से बड़ा हो।

गतिस्थित्युपग्रहो धर्माधर्मयोरुपकारः।

५, १७.

आकाशस्यावगाहः।

५, १८

शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानाम्।

५, १९.

सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च।

५, २०.

परस्परोपग्रहो जीवानाम।

५, २१

धम्मत्थिकाए णं जीवाणं आगमणगमणभासुम्मेसमणजोगा वइजोगा कायजोगा जे यावन्ने तहप्पगारा चला भावा सव्वे ते धम्मत्थिकाए पवत्तंति। गइलक्खणे णं धम्मत्थिकाए।

अहम्मत्थिकाए णं जीवाणं किं पवत्तति? गोयमा! अहम्मत्थिकाएणं जीवाणं ठाणनिसीयणतुयट्टणमणस्स य एगत्तीभावकरणता जे यावन्न तहप्पगारा थिरा भावा सव्वे ते अहम्मत्थिकाये पवत्तंति। ठाणलक्खणे णं अहम्मत्थिकाए।

आगासत्थिकाए णं भंते ! जीवाणं अजीवाण य किं पवत्तति ? गोयमा ! आगासत्थिकाएणं जीवदव्वाण य अजीवदव्वाण य भायणभूए एगेण वि से पुन्ने दोहिवि पुन्ने सयंपि माएज्जा । कोडिसएणवि पुन्ने कोडिसहस्संपि माएज्जा ॥ १ ॥ अवगाहणा-लक्खणे णं आगासत्थिकाए ।

जीवत्थिकाएणं भंते ! जीवाणं किं पवत्तति ? गोयमा ! जीव-त्थिकाएणं जीवे अणंताणं आभिणिबोहियनाणपज्जवाणं अणंताणं सुयनाणपज्जवाणं, एवं जहा बितियसए अत्थिकायउद्देसए जाव उवओगं गच्छति, उवओगलक्खणे णं जीवे ।

व्याख्या प्रज्ञप्ति शतक १३ उ० ४ सू० ४८१

"जीवे णं अणंताणं आभिणिबोहियनाणपज्जवाणं एवं सुय-नाणपज्जवाणं ओहिनाणपज्जवाणं मणपज्जवनाणप० केवलनाणप० मइअन्नाणप० सुयअण्णाणप० विभंगणाणप० चक्खुदंसणप० अचक्खुदंसणप० ओहिदंसणप० केवलदंसणपज्जवाणं उवओगं गच्छइ० ।"

व्याख्या प्रज्ञप्ति शतक २ उद्देश्य १० सूत्र १२०

जीवो उवओगलक्खणो । नाणेणं दंसणेणं च सुहेण य दुहेण य ।

उत्तराध्ययन अध्य० २८ गाथा १०

पोग्गलत्थिकाए णं पुच्छा ? गोयमा ! पोग्गलत्थिकाए णं जीवाणं ओरालियवेउव्वय आहारए तेयाकम्मए सोइंदियचक्खिंदि-यघाणिंदियजिब्भिंदियफासिंदियमणजोगवयजोगकाय जोगआणा-

पाणूणं च गहणं पवत्तति। गहणलक्खणे णं पोग्गलत्थिकाए।

व्याख्या प्रज्ञप्ति शतक १३ उद्दे० ४ सूत्र ४८१

छाया— धर्मास्तिकाय: जीवानां आगमनगमनभाषोन्मेषमनःयोगाः वाग्योगाः काययोगाः ये चाप्यन्ये तथाप्रकाराः चलाः भावाः सर्वे ते धर्मास्तिकाये सति प्रवर्त्तन्ते। गतिलक्षणः धर्मास्तिकायः।

अधर्मास्तिकायः जीवानां किं प्रवर्त्तते? गौतम! अधर्मास्तिकायः जीवानां स्थाननिषीदनत्वग्वर्त्तनमनसश्च एकत्वीभावकरणता ये चाप्यन्ये तथाप्रकाराः स्थिराः भावाः सर्वे ते अधर्मास्तिकाये सति प्रवर्त्तते। स्थितिलक्षणोऽधर्मास्तिकायः।

आकाशास्तिकायः भगवन! जीवानामजीवानाञ्च किं प्रवर्तते? गौतम! आकाशास्तिकायः जीवद्रव्याणाञ्चाजीवद्रव्याणाञ्च भाजनभूतः एकेनापि असौ पूर्णः द्वाभ्यामपि पूर्णः शतमपि माति। कोटिशतेनापि पूर्णः कोटिसहस्रमपि माति ॥ १ ॥ अवगाहनालक्षणः आकाशास्तिकायः।

जीवास्तिकायः भगवन! जीवानां किं प्रवर्तते? गौतम! जीवास्तिकायः जीवान अनन्तानां आभिनिबोधिकज्ञानपर्यवानां अनन्तानां श्रुतज्ञानपर्यवानां एवं यथा द्वितीयशते अस्तिकायोद्देशके यावत् उपयोगं गच्छति, उपयोगलक्षणः जीवः। "जीवो अनन्तानां आभिनिबोधिकज्ञानपर्यवानां एवं श्रुतज्ञानपर्यवानां अवधि० मनःपर्ययज्ञानप० केवलज्ञानपर्यवानां मत्यज्ञानप० श्रुताज्ञानप० विभंगज्ञानप० चक्षुदर्शनपर्यवानां अचक्षुदर्शनपर्यवानां अवधिदर्शनपर्यवानां केवलदर्शनपर्यवानां उपयोगं गच्छति।" जीवः उपयोगलक्षणः। ज्ञानेन दर्शनेन च, सुखेन च दुःखेन च।

पुद्गलास्तिकायः पृच्छा? गौतम! पुद्गलास्तिकायः जीवानां

औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणश्रोत्रेन्द्रियचक्षुरिन्द्रियघ्राणेन्द्रियजिह्वेन्द्रियस्पर्शनेन्द्रियमनःयोगवचनयोगकाययोगाऽऽनाप्राणानां च ग्रहणं प्रवर्तते । ग्रहणलक्षणः पुद्गलास्तिकायः ।

भाषा टीका — **धर्मास्तिकाय** जीवों के गमन, आगमन, भाषा, उन्मेष, मनोयोग, वचनयोग, और काययोग [के लिये निमित्त होता है] । इनके अतिरिक्त और जो भी इस प्रकार के चल भाव हैं वह सब धर्मास्तिकाय के होने पर ही होते हैं, क्योंकि धर्मास्तिकाय गति लक्षण वाला है ।

प्रश्न — **अधर्मास्तिकाय** जीवों के लिये क्या करता है ?

उत्तर — गौतम ! अधर्मास्तिकाय जीवों के लिये ठहरना, बैठना, त्वग्वर्तन (करवट बदलना), और मन की एकाग्रता करता है । इनके अतिरिक्त और जो भी इस प्रकार के स्थिर भाव हैं वह अधर्मास्तिकाय के होने पर ही होते हैं, क्योंकि अधर्मास्तिकाय स्थिति लक्षण वाला है ।

प्रश्न — भगवन ! **आकाशास्तिकाय** जीव और पुद्गलों के लिये क्या करता है ?

उत्तर — गौतम ! आकाश द्रव्य जीवद्रव्यों और अजीवद्रव्यों को स्थान देने वाला है । यह एक से भी भरा हुआ (पूर्ण) है, दो से भी भरा हुआ है, एक करोड़ और अरब से भी भरा हुआ है तथा एक खरब जीव तथा पुद्गल स्कन्धों से भी भरा हुआ है । क्योंकि आकाशास्तिकाय अवगाहना लक्षण वाला है ।

प्रश्न — भगवन ! **जीवास्तिकाय** जीवों के लिये क्या करता है ?

उत्तर — गौतम ! जीवास्तिकाय अनन्त मतिज्ञानपर्याय वाले जीवों के, इसी प्रकार श्रुतज्ञान पर्याय वाले जीवों के, अवधि ज्ञान पर्याय वाले जीवों के, मन पर्यय ज्ञान पर्याय वाले जीवों के, केवल ज्ञान पर्याय वाले जीवों के, मतिअज्ञान पर्याय वाले जीवों के, श्रुत अज्ञान पर्याय वाले जीवों के, विभंगज्ञान पर्याय वाले जीवों के, चक्षुदर्शन पर्याय वाले जीवों के, अचक्षुदर्शन पर्याय वाले जीवों के, अवधि दर्शन पर्याय वाले जीवों के और केवल दर्शन पर्याय वाले जीवों के उपयोग को प्राप्त होता है । ज्ञान, दर्शन, सुख और दुःख के द्वारा भी [जीव उपकार करता है] जीव का लक्षण उपयोग है ।

प्रश्न — **पुद्गलास्तिकाय** क्या करता है ?

उत्तर— गौतम! पुद्गलास्तिकाय जीवों के लिये औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण, कर्णेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय, मनोयोग, वचन योग, काय योग और श्वासोच्छ्वास का ग्रहण कराता है। पुद्गलास्तिकाय ग्रहण लक्षण वाला है।

वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वे च कालस्य।

५, २२.

वत्तना लक्खणो कालो० ।

उत्तराध्ययन अध्ययन २८ गाथा १०

छाया— वर्तनालक्षण: काल: ।

भाषा टीका — काल वर्तनालक्षण वाला है।

संगति — सूत्र और आगम के इस पाठ को मिलाने से धर्म और अधर्म द्रव्य की परिभाषाओं की कुंजी खुल जाती है। आगम में विशेष अवश्य है, किन्तु वह जितना भी है अत्यन्त आवश्यक है। काल द्रव्य के परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व का वर्तना में ही अन्तर्भाव हो जाता है। अत: आगमवाक्य में कालद्रव्य को केवल वर्तना लक्षण में ही समाप्त कर दिया गया है।

स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः।

५, २३.

पोग्गले पंचवण्णे पंचरसे दुगंधे अट्ठफासे पण्णत्ते ।

व्याख्या प्रज्ञप्ति शतक १२ उद्दे० ५ सूत्र ४५०

छाया— पुद्गलः पञ्चवर्णः पञ्चरसः द्विगन्धः अष्टस्पर्शः प्रज्ञप्तः ।

भाषा टीका — पुद्गल में पांच वर्ण, पांच रस, दो गंध और आठ स्पर्श होते हैं।

शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतम-श्छायाऽऽतपोद्योतवन्तश्च।

५, २४.

सद्दन्धयार-उज्जोओ, पभा छाया तवो इ वा ।
वयणरसगन्धफासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं ॥ १२ ॥
एगत्तं च पुहत्तं च, संखा संठाणमेव च ।
संजोगा य विभागा य, पज्जवाणं तु लक्खणं ॥ १३ ॥

उत्तराध्ययन० अध्ययन २८.

छाया— शब्दोऽन्धकार उद्योतः प्रभाच्छायातप इति वा ।
वर्णरसगन्धस्पर्शाः, पुद्गलानां तु लक्षणम् ॥ १२ ॥
एकत्वं च पृथकत्वं च, संख्या संस्थानमेव च ।
संयोगाश्च विभागाश्च, पर्यवाणां तु लक्षणम् ॥ १३ ॥

भाषा टीका — शब्द, अन्धकार, उद्योत, प्रभा, छाया, आतप, वर्ण, रस, गंध और स्पर्श पुद्गलों के लक्षण हैं ॥ १२ ॥

एकत्व, पृथक्त्व, संख्या, संस्थान, संयोग और विभाग पुद्गल पर्यायों के लक्षण हैं ॥ १३ ॥

संगति — इसमें सौक्ष्म्य तथा स्थौल्य के अतिरिक्त अन्य सभी शब्द आ जाते हैं। किन्तु यह दोनों शब्द इतने महत्व पूर्ण नहीं हैं कि इनका विशेष रूप से वर्णन किया जाता।

अणवः स्कन्धाश्च ।

५, २५

दुविहा पोग्गला पएणत्ता, तं जहा—परमाणुपोग्गला नोपरमाणुपोग्गला चेव ।

स्थानांग स्थान २ उ० ३ सू० ८२.

छाया— द्विविधौ पुद्गलौ प्रज्ञप्तौ। तद्यथा—परमाणुपुद्गलाश्च, नोपरमाणुपुद्गलाश्चैव ।

भाषा टीका — पुद्गल दो प्रकार के होते हैं — परमाणुपुद्गल और नोपरमाणु पुद्गल ।

संगति — अणु तथा परमाणु पुद्गल और स्कन्ध तथा नोपरमाणु पुद्गल में नाम मात्र का ही भेद है। तात्विक भेद नहीं है।

भेदसङ्घातेभ्यः उत्पद्यन्ते।

५, २६.

भेदादणुः।

५, २७.

दोहिं ठाणेहिं पोग्गला साहण्णंति, तं जहा—सइं वा पोग्गला साहन्नंति परेण वा पोग्गला साहन्नंति। सइं वा पोग्गला भिज्जंति परेण वा पोग्गला भिज्जंति।

स्थानांग स्थान २, उ० ३, सूत्र ८२.

छाया— द्वाभ्यां स्थानाभ्यां पुद्गलाः संहन्यन्ते। तद्यथा—स्वयं वा पुद्गलाः संहन्यन्ते परेण वा पुद्गलाः संहन्यंते। स्वयं वा पुद्गलाः भिद्यन्ते परेण वा पुद्गलाः भिद्यन्ते।

भाषा टीका — दो प्रकार से पुद्गल एकत्रित होकर मिलते हैं — या तो स्वयं मिलते हैं अथवा दूसरे के द्वारा मिलाये जाते हैं, या तो पुद्गल स्वयं भेद को प्राप्त होते हैं अथवा दूसरों के द्वारा भेद को प्राप्त होते हैं।

संगति — पुद्गलों के अणु और स्कन्ध भेद और संघात दोनों से ही बनते हैं। चाहे वह भेद या संघात स्वयं हो अथवा दूसरे के द्वारा हो। अणु केवल भेद से ही होता है, संघात से नहीं होता।

भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः।

५, २८.

चक्खुदंसणं चक्खुदंसणिस्स घड पड कड रहाइएसु दव्वेसु।

अनुयोग० दर्शनगुणप्रमाण सू० १४४.

छाया— चक्षुदर्शनं चक्षुदर्शिनः घटः पटः कटः रथादिषु द्रव्येषु।

भाषा टीका — चक्षु दर्शन वाले को घट, पट, रथ आदि द्रव्यों में चक्षु दर्शन होता है।

संगति — यह सभी द्रव्य चक्षु दर्शन द्वारा जाने के कारण चाक्षुष कहलाते हैं। चाक्षुष द्रव्य भी भेद और संघात दोनों से ही बनते हैं।

सद्द्रव्यलक्षणम् ।

५, २९.

सद्दव्वं वा ।

व्याख्या प्रज्ञप्ति शत० ८ उ० ९ सत्पदद्वार

छाया— सद्द्रव्यं वा ।

भाषा टीका — द्रव्य का लक्षण सत है।

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ।

५, ३०

माउयाणुओगे (उप्पन्ने वा विगए वा धुवे वा ।)

स्थानांग स्थान १०

छाया— मातृकानुयोगः (उत्पन्नः वा विगतः वा, ध्रुवः वा)।

भाषा टीका — उत्पन्न होने वाले, नष्ट होने वाले और ध्रुव को मातृकानुयोग कहते हैं। [और वही सत है]।

तद्भावाऽव्ययं नित्यम् ।

५, ३१.

परमाणुपोग्गलेणं भंते ! किं सासए असासए? गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासए वन्नपज्जवेहिं जाव फासपज्जवेहिं असासए ।

व्याख्याप्रज्ञप्ति० शतक १४ उद्दे० ४ सूत्र ५१२

जीवाभिगम० प्रतिपत्ति ३ उद्दे० १ सूत्र ७७

छाया— परमाणुपुद्गलः भगवन् ! किं शाश्वतः अशाश्वतः? गौतम ! द्रव्यार्थतया शाश्वतः, वर्णपर्यायैः यावत् स्पर्शपर्यायैः अशाश्वतः ।

प्रश्न — भगवन्! परमाणु पुद्गल नित्य है अथवा अनित्य ?

उत्तर — गौतम! द्रव्यार्थिक नय से नित्य है तथा वर्ण पर्यायों से लेकर स्पर्श-पर्यायों तक की अपेक्षा अनित्य है।

संगति — सूत्र में कहा है कि जो तद्भावरूप से अव्यय है सो ही नित्य है। सूत्रकार का आशय यहां द्रव्यों से है कि द्रव्य नित्य हैं। किन्तु आगमवाक्य ने द्रव्य के नित्य और अनित्य दोनों रूपों को स्पष्ट कर दिया है।

अर्पिताऽनर्पितसिद्धेः।

५, ३२.

अप्पितणप्पिते।

स्थानांग० स्थान १० सूत्र ७२७.

छाया— अर्पितानर्पिते।

भाषा टीका — जिसको मुख्य करे सो अर्पित और जिसको गौण करे सो अनर्पित है। इन दोनों नयों से वस्तु की सिद्धि होती है।

स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः।

५, ३३

न जघन्यगुणानाम्।

५, ३४.

गुणसाम्ये सदृशानाम्।

५, ३५.

द्व्यधिकादिगुणानान्तु।

५, ३६.

बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च।

५, ३७.

बंधणपरिणामे णं भंते! कतिविधे पण्णत्ते? गोयमा! दुविहे

पण्णत्ते, तं जहा—णिद्धबंधणपरिणामे लुक्खबंधणपरिणामे य,—
'समणिद्धयाए बंधो न होति समलुक्खयाएवि ण होति ।
वेमायणिद्धलुक्खत्तणेण बंधो उ खंधाणं ॥ १ ॥
णिद्धस्स णिद्धेण दुयाहिएणं, लुक्खस्स लुक्खेण दुयाहिएणं ।
निद्धस्स लुक्खेण उवेइ बंधो, जहण्णवज्जो विसमो समो वा ॥२॥

प्रज्ञापना० परिणाम पद १३ सूत्र १८५.

छाया— बन्धनपरिणामः भगवन् कतिविधः प्रज्ञप्तः? गौतम! द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा, —स्निग्धबन्धनपरिणामः रूक्षबन्धनपरिणामश्च,— 'समस्निग्धतायां बन्धो न भवति, समरूक्षतायामपि न भवति । वैमात्रस्निग्धरूक्षत्वेन बंधस्तु स्कन्धानाम् ॥ १ ॥ स्निग्धस्य स्निग्धेन द्व्यधिकादिकेन, रूक्षस्य रूक्षेण द्व्यधिकादिकेन । स्निग्धस्य रूक्षेण (सह) उपैति बन्धः, जघन्यवर्ज्यः विषमः समो वा ॥ २ ॥

प्रश्न — भगवन्! बन्धन परिणाम कितने प्रकार का बतलाया गया है?

उत्तर — गौतम! दो प्रकार का बतलाया गया है — स्निग्धबन्धन परिणाम और रूक्षबन्धन परिणाम। बराबर स्निग्धता होने पर बंध नहीं होता। बराबर रूक्षता होने पर भी बन्ध नहीं होता। स्कन्धों का बन्ध स्निग्धता और रूक्षता की मात्रा में विषमता से होता है। दो गुण अधिक होने से स्निग्ध का स्निग्ध के साथ बन्ध हो जाता है, तथा दो गुण अधिक होने से रूक्ष का रूक्ष के साथ भी बन्ध हो जाता है। स्निग्ध का रूक्ष के साथ बन्ध हो जाता है। किन्तु जघन्य गुण वाले का विषम या सम किसी के साथ भी बन्ध नहीं होता।

संगति — इन सूत्रों और आगमवाक्य का साम्य देखने योग्य है।

गुणपर्यायवद्द्रव्यम् ।

५, ३८

गुणाणमासओ दव्वं, एगदव्वस्सिया गुणा ।
लक्खणं पज्जवाणं तु, उभओ अस्सिया भवे ॥

उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २८ गाथा ६.

छाया— गुणानामाश्रयो द्रव्यं, एकद्रव्याश्रिता गुणाः ।
लक्षणं पर्यवाणां तु, उभयोराश्रिता (स्युः) भवन्ति ॥ ६ ॥

भाषा टीका — द्रव्य गुणों के आश्रित होता है, गुण भी एक द्रव्य के आश्रित होते हैं। किन्तु पर्याय द्रव्य और गुण दोनों के आश्रय होती हैं। सारांश यह है कि द्रव्य में गुण और पर्याय दोनों होतीं हैं।

कालश्च ।

५, ३६.

छव्विहे दव्वे पण्णत्ते, तं जहा–धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, जीवत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, अद्धासमये अ, सेतं दव्वणामे ।

अनुयोगद्वार० द्रव्यगुणपर्यायनाम सू० १२४.

छाया— षड्विधानि द्रव्याणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा — धर्मास्तिकायः, अधर्मास्तिकायः, आकाशास्तिकायः, जीवास्तिकायः, पुद्गलास्तिकायः, अद्धासमयश्च, तत् द्रव्यनाम ।

भाषा टीका — द्रव्य छै प्रकार के कहे गये हैं — धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धा समय (काल)।

संगति — आगम में कालद्रव्य को अद्धा समय भी कहा गया है।

सोऽनन्तसमयः ।

५, ४०.

अणंता समया ।

व्याख्या प्रज्ञप्ति शत० २५ उ० ५ सू० ७४७.

छाया— अनन्ताः समयाः ।

भाषा टीका — कालद्रव्य में अनन्त समय होते हैं।

द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ।

५, ४१.

दव्वस्सिया गुणा ।

उत्तराध्ययन अध्ययन २८, गाथा ६.

छाया— द्रव्याश्रयाः गुणाः ।

भाषा टीका — गुण द्रव्य के आश्रय होते हैं [और स्वयं निर्गुण होते हैं]।

तद्भावः परिणामः ।

५, ४२.

दुविहे परिणामे पण्णत्ते, तं जहा—जीवपरिणामे य अजीव-परिणामे य ।

प्रज्ञापना परिणाम पद १३ सू० १८१.

छाया— द्विविधः परिणामः प्रज्ञप्तः, तद्यथा — जीवपरिणामश्च अजीव-परिणामश्च ।

परिणामो ह्यर्थान्तरगमनं न च सर्वथा व्यवस्थानम् ।
न च सर्वथा विनाशः परिणामस्तद्विदामिष्टः ॥

इति वृत्तिकार

भाषा टीका — परिणाम दो प्रकार का होता है — जीव परिणाम और अजीव परिणाम ।

वृत्तिकार ने कहा है कि एक अर्थ से दूसरे अर्थ में प्राप्त होने को परिणाम कहते हैं। सब प्रकार से दूसरा रूप भी नहीं हो जाता और न सब प्रकार से प्रथम रूप नष्ट ही होता है, उसे परिणाम कहते हैं।

संगति — इन सूत्रों का आगमवाक्यों के साथ साम्य स्पष्ट है।

इति श्री-जैनमुनि-उपाध्याय-श्रीमदात्माराम-महाराज-संगृहीते
तत्त्वार्थसूत्रजैनाऽऽगमसमन्वये

❁ पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ५ ॥ ❁

———:o:———

षष्ठोऽध्यायः

———:o:———

कायवाङ्मनः कर्म योगः ।

६, १.

तिविहे जोए पराणत्ते । तं जहा—मणजोए, वइजोए, कायजोए ।

व्याख्या प्रज्ञप्ति० शतक० १६ उद्दे० १ सूत्र ५६४

छाया— त्रिविधः योगः प्रज्ञप्तः । तद्यथा – मनःयोगः वाग्योगः काययोगः ।

भाषा टीका—योग तीन प्रकार का होता है—मन योग, वचन योग और काय योग ।

स आस्रवः ।

६, २.

पञ्च आसवदारा पराणत्ता तं जहा—मिच्छत्तं, अविरई, पमाया, कासाया जोगा ।

समवायांग समवाय ५.

छाया— पञ्च आस्रवद्वाराः प्रज्ञप्ताः तद्यथा – मिथ्यात्वं, अविरतिः, प्रमादाः, कषायाः, योगाः ।

भाषा टीका — आस्रव के पांच द्वार होते हैं — मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ।

संगति — यहां सूत्र और आगम वाक्य में सामान्य तथा विशेष कथन का भेद है । सूत्रकार ने योग को ही आस्रव माना है, किन्तु आगम वाक्य में भेद विवक्षा से आस्रव के पांचों कारणों को ही आस्रव माना है, जिनमें योग भी एक कारण है ।

शुभः पुण्यस्याऽशुभः पापस्य ।

६, ३.

पुण्णं पावासवो तहा ।

उत्तराध्ययन अध्ययन २८ गाथा १४

छाया— पुण्यं पापास्रवस्तथा ।

भाषा टीका — उस आस्रव के दो भेद होते हैं, शुभ कर्मों का पुण्य रूप शुभ आस्रव होता है और अशुभ कर्मों का पाप रूप अशुभ आस्रव होता है ।

सकषायाऽकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः ।

६, ४.

जस्स णं कोहमाणमायालोभा वोच्छिन्ना भवन्ति तस्स णं ईरियावहिया किरिया कज्जइ नो संपराइया किरिया कज्जइ, जस्स णं कोहमाणमायालोभा अवोच्छिन्ना भवन्ति तस्स णं संपराय-किरिया कज्जइ नो ईरियावहिया ।

व्याख्या प्रज्ञप्ति शतक ७ उद्दे० १ सूत्र २६७.

छाया— यस्य क्रोधमानमायालोभाः व्यवच्छिन्नाः भवन्ति तस्य ईर्यापथिका क्रिया क्रियते, नो साम्परायिका क्रिया क्रियते । यस्य क्रोधमान-मायालोभा अव्यवच्छिन्ना भवन्ति तस्य साम्परायिका क्रिया क्रियते नो ईर्यापथिका ।

भाषा टीका — जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ नष्ट हो जाते हैं उसके ईर्या-पथिका क्रिया (आस्रव) होती है उसके साम्परायिक क्रिया नहीं होती । किन्तु जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ नष्ट नहीं होते उसके साम्परायिका क्रिया (आस्रव) होती है । उसके ईर्यापथिका क्रिया नहीं होती ।

इन्द्रियकषायाव्रतक्रियाः पञ्चचतुःपञ्च-

पञ्चविंशतिसंख्याः पूर्वस्य भेदाः ।

६, ५.

पंचिंदिया पराणत्ता······चत्तारिकषाया पराणत्ता········
पंच अविरय पराणत्ता······पंचवीसा किरिया पराणत्ता ······

स्थानांग स्थान २ उद्देश्य १ सूत्र ६०

छाया— पञ्चेन्द्रियाणि प्रज्ञप्तानि–चत्वारः कषायाः प्रज्ञप्ताः, पञ्चाव्रताः प्रज्ञप्ताः पञ्चविंशतयः क्रियाः प्रज्ञप्ताः।

भाषा टीका — इन्द्रियां पांच होती हैं, कषाय चार होती हैं, अविरत पांच होते हैं। और क्रिया पचीस होती हैं, [यह प्रथम साम्परायिक आस्रव के भेद हैं]।

तीव्रमन्दज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः ।

६, ६.

जे केइ खुद्दका पाणा, अदु वा संति महालया ।
सरिसं तेहिं वेरंति असरिसं ती व णोवदे ।। ६ ।।
एएहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो ण विज्जई ।
एएहिं दोहिं ठाणेहिं, अणायारं तु जाणए * ।। ७ ।।

सूत्रकृतांग, श्रुतस्कन्ध २ अध्याय ५ गाथा ६-७.

---

* व्याख्या — ये केचन क्षुद्रकाः सत्त्वाः प्राणिनः एकेन्द्रियद्वीन्द्रियादयोऽल्पकाया वा पञ्चेन्द्रिया अथवा महालया महाकायाः संति विद्यन्ते, तेषां च क्षुद्रकाणामल्पकायानां कुन्थ्वादीनां महानालयः शरीरं येषां ते महालयाः हस्त्यादयस्तेषां च व्यापादने, सदृशं, वैरमिति, वज्रं कर्मविरोधलक्षणं वा वैरं तत् सदृशं समानं, अल्पप्रदेशत्वात्सर्वजंतूनामित्येवमेकान्तेन नो वदेत् । तथा विसदृशं असदृशं तद्व्यापत्तौ वैरं कर्मबन्धो विरोधो वा इन्द्रियविज्ञानकायानां विसदृशत्वात् । सत्यपि प्रदेश अल्पत्वेन सदृशं वैरमित्येवमपि नो वदेत् । यदि हि वध्यापेक्ष एव कर्मबन्धः स्यात्तदा तत्सदृशात्कर्मयोऽपि

छाया— ये केऽपि क्षुद्रकाः प्राणाः, अथवा सन्ति महालयाः ।
सदृशं तैः वैरं इति, असदृशं इति वा नो वदेत् ॥ ६ ॥
एताभ्यां द्वाभ्यां स्थानाभ्यां, व्यवहारो न विद्यते ।
एताभ्यां द्वाभ्यां स्थानाभ्यां, अनाचारं तु जानीयात् ॥ ७ ॥

भाषा टीका — जो कोई भी छोटे अथवा बड़े जीव हैं उनके मारने का पाप बराबर होता है । बराबर नहीं होता ऐसा न कहे । इन दोनों स्थानों से व्यवहार नहीं होता । और इन्हीं दोनों स्थानों से अनाचार का ज्ञान होता है ।

सादृश्यमसादृश्यं वा वक्तुं युज्यते । न च तद्वशादेव बंधः, अपि त्वध्यवसायवशादपि । ततश्च तीव्राध्यवसायिनोऽल्पकायसत्त्वव्यापादनेऽपि महद्वैरं । अकामस्य तु महाकायसत्त्वव्यापादनेऽपि स्वल्पमिति ॥ ६ ॥

एतदेव सूत्रेणैव दर्शयितुमाह आभ्यामनन्तरोक्ताभ्यां स्थानाभ्यामनयोर्वा स्थानयोरल्पकायमहाकायव्यापादनापादितकर्मबन्धसदृशत्वयोर्व्यवहरणं व्यवहारो निर्युक्तिकत्वान्न युज्यते । तथाहि, न वध्यस्य सदृशत्वमसदृशत्वं चैकमेव । कर्मबन्धस्य कारणं । अपि तु वधकस्य तीव्रभावो मन्दभावो ज्ञातभावोऽज्ञातभावो महावीर्यत्वमल्पवीर्यत्वं चेत्येतदपि । तदेवं वध्यवध्यकयोर्विशेषात्कर्मबन्धविशेष इत्येवं व्यवस्थिते । वध्यमेवाश्रित्य, सदृशत्वासदृशत्वव्यवहारो न विद्यत इति । तथाऽनयोरेव स्थानयोः प्रवृत्तस्यानाचारं, विजानीयादिति । तथाहि, यज्जीवसाम्यात्कर्मबन्धसदृशत्वमुच्यते, तदयुक्तं, यतो न हि जीवव्यापत्त्या हिंसोच्यते, तस्य शाश्वतत्वेन व्यापादयितुमशक्यत्वात् । अपि त्विन्द्रियादिव्यापत्त्या तथा चोक्तं, पञ्चेन्द्रियाणि, त्रिविधं बलं च उच्छ्वासनिःश्वासमथान्यदायुः प्राणा दशैते भगवद्भिरुक्ता, स्तेषां वियोजीकरणं तु हिंसा ॥ १ ॥ इत्यादि, अपि च भावमव्यपेक्ष्यैव, कर्मबन्धोऽभ्युपेतु युक्तः, तथाहि, वैद्यस्यागमसव्यपेक्षस्य, सम्यक् क्रियां कुर्वतो, यद्यप्यातुरविपत्तिर्भवति, तथापि, न वैरानुषङ्गो भावदोषाभावात् । अपरस्य तु सर्पबुद्ध्या रज्जुमपि घ्नतो भावदोषात्कर्मबन्धः । तद्रहितस्य तु न बन्ध इति । उक्तं चागमे, उच्चालयम्मि पाए । इत्यादि तण्डुलमत्स्याख्यानकं तु सुप्रसिद्धमेव । तदेवंविधवध्यवधकभावापेक्षया स्यात् । सदृशं स्यादसदृशत्वमिति । अन्यथाऽनाचार इति ॥ ७ ॥

वृत्ति शीलाङ्काचार्य कृत.

संगति — सूत्र में कहा है कि तीव्र भाव, मन्द भाव, ज्ञात भाव, अज्ञात भाव, अधिकरण और वीर्य की विशेषता से उस आस्रव में विशेषता (न्यूनाधिकता) होती है। आगम वाक्य में इसी बात को बिलकुल बदले हुये शब्दों में और प्रकार से कहा गया है।

अधिकरणं जीवाऽजीवाः ।

६, ७.

जीवे अधिकरणं ।

व्याख्या प्रज्ञप्ति श० १६, उ० १.

एवं अजीवमवि ।

स्थानांग स्थान २, उ० १, सू० ६०.

छाया— जीवोऽधिकरणं, एवमजीवमपि ।

भाषा टीका — आस्रव का अधिकरण (आधार) जीव और अजीव दोनो हैं।

आद्यं संरम्भसमारम्भारम्भयोगकृतकारिताऽनुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ।

६, ८.

संरम्भसमारम्भे आरम्भे य तहेव य ।

उ० अध्य० २४ गाथा २१.

तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंत पि अन्नं न समणुजाणामि ।

दशवैकालिक अ० ४.

जस्स णं कोहमाणमायालोभा अवोच्छिन्ना भवंति तस्स णं संपराइया किरिया ।

व्याख्या प्रज्ञप्ति श० ७, उ० १, सू० १८.

छाया— संरम्भः समारम्भः आरम्भश्च तथैव च ।

त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कर्मणा न करोमि न कारयामि करन्तमप्यन्यं न समनुजानामि ।

यस्य क्रोधमानमायालोभाः अव्यवच्छिन्ना भवन्ति तस्य साम्परायिका क्रिया ।

भाषा टीका — संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ। फिर इन तीनों भेदों को मन, वचन और काय के द्वारा तीन प्रकार करने से नौ भेद हुए। फिर इन नौ को न करना (कृत), न कराना (कारित) और न करते हुए अन्य व्यक्ति का समर्थन करना (अनुमोदना)। सो यह नौ तिया सत्ताईस भेद हुए। फिर इन सत्ताईसों में क्रोध, मान, माया और लोभ के होने से [सत्ताईस चौक एक सौ आठ भेद जीवाधिकरण के होते हैं।]

संगति — इन सब सूत्रों का आगम वाक्यों के साथ नाम मात्र का ही भेद है।

निर्वतनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रि-भेदाः परम्।

६, ९.

णिवत्तणाधिकरणिया चेव संजोयणाधिकरणिया चेव।

स्थानांग स्थान २, सू० ६०.

आइये निक्खिवेज्जा।

उत्तराध्ययन अ० २५, गाथा १४

पवत्तमाणं।

उत्तराध्ययन अ० २४, गाथा २१-२३.

छाया— निर्वर्तनधिकरणिका चैव संयोगाधिकरणिका चैव।

आददीत निक्षिपेद्वा।

प्रवर्तमानम् (मनोवचः काये)।

भाषा टीका — निर्वतनाधिकरण, संयोगाधिकरण, निक्षेपाधिकरण और प्रवर्तमानाधिकरण (मन, वचन, काय में प्रवर्तमान) [यह चार भेद अजीवाधिकरण के होतेहैं]

संगति — प्रवर्तमानाधिकरण और निसर्गाधिकरण में केवल शाब्दिक भेद ही है, तात्विक भेद बिलकुल नहीं है।

तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः।

६, १०.

णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पओगबंधेणं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं? गोयमा ! नाणपडिणीययाए णाणनिण्हवणयाए णाणंतराएणं णाणप्पदोसेणं णाणच्चासायणाए णाणविसंवादणाजोगेणं, ...एवं जहा णाणावरणिज्जं नवरं दंसणनाम घेत्तव्वं ।

व्याख्या प्रज्ञप्ति श० ८, उ० ९. सू० ७५-७६.

छाया— ज्ञानावरणीयकार्मणशरीरप्रयोगबन्धः भगवन् ! कस्य कर्मणः उदयेन? गौतम! ज्ञानप्रत्यनीकतया ज्ञाननिन्हवतया ज्ञानान्तरायेण ज्ञानप्रदोषेण ज्ञानात्याशातनया ज्ञानविसंवादनायोगेन एवं यथा ज्ञानावरणीयं नवरं दर्शननाम ग्रहीतव्यम् ।

प्रश्न — भगवन् ! किस कर्म के उदय से ज्ञानावरणीय कार्मण शरीर का प्रयोगबन्ध होता है ?

उत्तर — गौतम ! ज्ञानी की शत्रुता करने से, ज्ञान को छिपाने से, ज्ञान में विघ्न डालने से, ज्ञान में दोष निकालने से, ज्ञान का अविनय करने से, ज्ञान में व्यर्थ का वाद विवाद करने से ज्ञानावरणीय कर्म का आस्रव होता है । इन उपरोक्त कार्यों में दर्शन का नाम लगाकर कार्य करने से दर्शनावरणीय कर्म का आस्रव होता है ।

दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थान्यसद्वेदस्य ।

६, ११.

परदुक्खणयाए परसोयणयाए परजूरणयाए परतिप्पणयाए परपिट्टणयाए परपरियावणयाए बहूणं पाणाणं जाव सत्ताणं दुक्खणयाए सोयणयाए जाव परियावणयाए एवं खलु गोयमा ! जीवाणं अस्सायावेयणिज्जा कम्मा किज्जन्ते ।

व्याख्याप्रज्ञप्ति श० ७ उ० ६ सू० २८६.

छाया— परदुःखनतया परशोकनतया परझुरणतया परतपणतया परपि-

ट्टनतया परपरितापनतया बहूनां प्राणिनां यावत् सत्त्वानां दुःखनतया शोचनतया यावत् परितापनतया एवं खलु गौतम! जीवानां असातावेदनीयकर्माणि क्रियन्ते।

भाषा टीका — हे गौतम! दूसरे को दुःख देने से, दूसरे को शोक उत्पन्न कराने से, दूसरे को झुराने से, दूसरे को रुलाने से, दूसरे को पीटने से, दूसरे को परिताप देने से, बहुत से प्राणियों और जीवों को दुःख देने से, शोक उत्पन्न कराने आदि परिताप देने से जीव असाता वेदनीय कर्मों का आस्रव करते हैं।

भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य। ६, १२.

पाणाणुकंपाए भूयाणुकंपाए जीवाणुकंपाए सत्ताणुकंपाए बहूणं पाणाणं जाव सत्ताणं अदुक्खणयाए असोयणयाए अजूरणयाए अतिप्पणयाए अपिट्टणयाए अपरियावणयाए एवं खलु गोयमा! जीवाणं सायावेयणिज्जा कम्मा किज्जंति।

व्याख्या प्रज्ञप्ति शतक ७ उ० ६ सूत्र २८६.

छाया— प्राणानुकम्पनतया भूतानुकम्पनतया जीवानुकम्पनतया सत्त्वानुकम्पनतया बहूनां प्राणिनां यावत् सत्त्वानां अदुःखनतया अशोचनतया अझूरणतया अतृपणतया अपिट्टनतया अपरितापनतया एवं खलु गौतम! जीवानां सातावेदनीयकर्माणि क्रियन्ते।

भाषा टीका — हे गौतम! प्राणों पर अनुकम्पा करने से, प्राणियों पर दया करने से, जीवों पर दया करने से, सत्त्वों पर दया करने से, बहुत से प्राणियों को दुःख न देने से, शोक न कराने से, न झुराने से, न रुलाने से, न पीटने से, परिताप न देने से जीव साता वेदनीय कर्मों का आस्रव करते हैं।

केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य। ६, १३.

पंचहिं ठाणेहिं जीवा दुल्लभबोधियत्ताए कम्मं पकरेंति, तं जहा—अरहंताणं अवन्नं वदमाणे १, अरहंतपन्नतस्स धम्मस्स अवन्नं वदमाणे २, आयरियउवज्झायाणं अवन्नं वदमाणे ३, चउवण्णस्स संघस्स अवण्णं वदमाणे ४, विवक्कतवबंभचेराणं देवाणं अवन्नं वदमाणे।

स्थानांग स्थान ५, उ० २ सू० ४२६.

छाया— पञ्चभिः स्थानैः जीवा दुर्लभबोधिकतया कर्म प्रकुर्वन्ति। तद्यथा—अर्हतां अवर्णं वदन्, अर्हत्प्रज्ञप्तस्य धर्मस्य अवर्णं वदन्, आचार्योपाध्यायानां अवर्णं वदन्, चातुर्वर्णस्य संघस्य अवर्णं वदन्, विपक्वतपोब्रह्मचर्याणां देवानां अवर्णं वदन्।

भाषा टीका—पांच स्थानों के द्वारा जीव दुर्लभ बोधि (दर्शन मोहनीय) कर्म का उपार्जन करते हैं——अर्हंत का अवर्णवाद करने से, अर्हंत के उपदेश दिये हुए धर्म का अवर्णवाद* करने से, आचार्य और उपाध्याय का अवर्णवाद* करने से, चारों प्रकार के धर्म का अवर्णवाद* करने से, तथा परिपक्व तप और ब्रह्मचर्य के धारक देव जो जीव हुए हैं उनका अवर्णवाद* करने से।

कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य।

६. १४.

मोहणिज्जकम्मासरीरप्पयोगपुच्छा, गोयमा! तिव्वकोहयाए तिव्वमाणयाए तिव्वमायाए तिव्वलोभाए तिव्वदंसणमोहणिज्जयाए तिव्वचारित्तमोहणिज्जाए।

व्याख्या प्रज्ञप्ति० शतक ८ उ० ९ सू० ३५१.

छाया— मोहनीयकर्मशरीरप्रयोगपृच्छा? गौतम! तीव्रक्रोधनतया तीव्रमान-

* जो दोष न हों उनका भी होना बतलाना, निन्दा करना अवर्णवाद है।

तया तीव्रमायातया तीव्रलोभतया तीव्रदर्शनमोहनीयतया तीव्र-चारित्रमोहनीयतया .... ।

प्रश्न — [चारित्र] मोहनीय कर्म के शरीर का प्रयोगबन्ध किस प्रकार होता है ?

उत्तर — गौतम ! तीव्र क्रोध करने से, तीव्र मान करने से, तीव्र माया करने से, तीव्र लोभ करने से, तीव्र दर्शन मोहनीय से और तीव्र चारित्र मोहनीय से।

बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ।

६. १५

चउहिं ठाणेहिं जीवा णेरतियत्ताए कम्मं पकरेंति, तं जहा— महारम्भताते महापरिग्गहयाते पंचिंदियवहेणं कुणिमाहारेणं ।

स्थानांग० स्थान ४ उ० ४ सूत्र ३७३.

छाया— चतुर्भिः स्थानैः जीवा नैरयिकत्वाय कर्म प्रकुर्वन्ति ।
तद्यथा—महारम्भतया, महापरिग्रहतया, पञ्चेन्द्रियवधेन, कुणपाहारेण ।

भाषा टीका — जीव चार प्रकार से नरक आयु का बन्ध करते हैं :— बहुत आरम्भ करने से, बहुत परिग्रह करने से, पंचेन्द्रिय जीव के बध से, और (मृतक) मांस का आहार करने से ।

संगति — यहां सूत्र की अपेक्षा विशेष कथन किया गया है ।

माया तैर्यग्योनस्य ।

६, १६

चउहिं ठाणेहिं जीवा तिरिक्खजोणियत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—माइल्लताते णियडिल्लताते अलियवयणेणं कूडतुलकूडमाणेणं ।

स्थानांग स्थान ४ उद्देश्य ४ सूत्र ३७३.

छाया— चतुर्भिः स्थानैः जीवाः तिर्यग्योनिकत्वाय कर्म प्रकुर्वन्ति । तद्यथा—
मायितया, निकृतिमत्तया अलीकवचनेन कूटतुलाकूटमानेन ।

भाषा टीका — चार प्रकार से जीव तिर्यञ्च आयु का बन्ध करते हैं — छल कपट से, छल को छल द्वारा छिपाने से, असत्य भाषण से और कमती तोलने और नापने से ।

अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य ।

६, १७.

स्वभावमार्दवञ्च ।

६, १८.

चउहिं ठाणेहिं जीवा मणुस्सत्ताते कम्मं पगरेंति, तं जहा—पगतिभद्दताते पगतिविणीययाए साणुक्कोसयाते अमच्छरिताते ।

स्थानांग० स्थान० ४, उ० ४, सू० ३७३.

वेमायाहिं सिक्खाहिं जे नरा गिहिसुव्वया उवेंति माणुसं जोणिं कम्मसच्चाहु पाणिणो ।

उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन ७ गाथा २०.

छाया— चतुर्भिः स्थानैः जीवा मानुषत्वाय कर्म प्रकुर्वन्ति । तद्यथा—प्रकृतिभद्रतया प्रकृतिविनयतया सानुक्रोशतया अमत्सरिकतया ।

विमात्राभिः शिक्षाभिः ये नराः गृहिसुव्रताः उपयान्ति मानुषीं योनिं कर्मसत्याः प्राणिनः ।

भाषा टीका—चार प्रकार से जीव मनुष्य आयु का बन्ध करते हैं—उत्तम स्वभाव होने से, स्वभाव में विनय होने से, स्वभाव में दया होने से, स्वभाव में ईर्ष्याभाव न होने से । जो प्राणि विविध शिक्षाओं के द्वारा उत्तम व्रत ग्रहण करते हैं वह प्राणि शुभ कर्मों के फल से मनुष्य योनि को प्राप्त करते हैं ।

निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषां ।

६, १९.

एगंतबाले णं मणुस्से नेरइयाउयंपि पकरेइ तिरियाउयंपि पकरेइ मणुस्साउयंपि पकरेइ देवाउयंपि पकरेइ ।

व्याख्याप्रज्ञप्ति शतक १, उ० ८, सू० ६३.

छाया— एकान्तबालः मनुष्यः नैरयिकायुमपि प्रकरोति तिर्यगायुमपि प्रकरोति मनुष्यायुमपि प्रकरोति देवायुमपि प्रकरोति।

भाषा टीका—एकान्तबाल (बिना शील और व्रत वाला) मनुष्य नरक आयु भी बांधता है, तिर्यञ्च आयु भी बांधता है, मनुष्य आयु भी बांधता है और देवायु का भी बन्ध करता है।

सरागसंयमसंयमाऽसंयमाऽकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य।

६, २०.

चउहिं ठाणेहिं जीवा देवाउयत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—सरागसंजमेणं संजमासंजमेणं बालतवोकम्मेणं अकामणिज्जराए।

स्थानांग स्थान ४ उ० ४ सू० ३७३.

छाया— चतुर्भिः स्थानैः जीवाः देवायुत्वाय कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—सरागसंयमेन, संयमाऽसंयमेन, बालतपकर्मणा, अकामनिर्जरया।

भाषा टीका—चार प्रकार से जीव देवायु का बन्ध करते हैं—सरागसंयम से, संयमासंयम से, बाल तप से और अकामनिर्जरा से।

सम्यक्त्वं च।

६, २१.

वेमाणियावि ' ' 'जइ सम्मद्दिट्ठीपज्जतसंखेज्जवासाउयकम्मभूमिगगब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं संजतसम्मद्दिट्ठीहिंतो असंजयसम्मद्दिट्ठीपज्जत्तएहिंतो संजयासंजयसम्मद्दिट्ठीपज्जत्तसंखेज्ज० हिंतो उववज्जंति? गोयमा तीहिंतोवि उववज्जंति एवं जाव अच्चुगो कप्पो।

प्रज्ञापना० पद ६.

छाया— वैमानिकाः अपि ...... यदि सम्यग्दृष्टिपर्याप्तसंख्येयवर्षायुष्ककर्म-भूमिकगर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्येभ्यः उत्पद्यन्ते किं संयतसम्यग्दृष्टिभ्यो ऽसंयतसम्यग्दृष्टिपर्याप्तकेभ्यः संयतासंयतसम्यग्दृष्टिपर्याप्तकसंख्येय-वर्षायुष्केभ्यः उत्पद्यन्ते? गौतम! त्रिभिः उत्पद्यन्ते, एवं याव-दच्युतः कल्पः

प्रश्न—यदि वैमानिक देवों में सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक, संख्यात वर्ष की आयु वाले, कर्म भूमिक, गर्भज मनुष्य उत्पन्न हों तो क्या संयत सम्यग्दृष्टियों से, असंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तकों से, संयतासंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्ष की आयुवालों में से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर—हे गौतम! तीनों ही में से अच्युत स्वर्ग तक उत्पन्न होते हैं।

संगति— इस कथन से प्रगट होता है कि सम्यग्दृष्टि देवलोक में जा सकता है।

योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः।

६, २२.

तद्विपरीतं शुभस्य

६, २३.

सुभनामकम्मा सरीरपुच्छा? गोयमा! कायउज्जुययाए भावु-ज्जुययाए भासुज्जुययाए अविसंवादणजोगेणं सुभनामकम्मा सरीरजावप्पयोगबन्धे, असुभनामकम्मा सरीरपुच्छा? गोयमा! कायअणुज्जुययाए जाव विसंवायणाजोगेणं असुभनामकम्मा जाव पयोगबंधे।

व्याख्या० श० ८ उद्दे० ६

छाया— शुभनामकर्माणि शरीरपृच्छा? गौतत! कायर्जुकतया भावर्जु-कतया भाषर्जुकतया अविसंवादनयोगेन शुभनामकर्माणि शरीर-यावत्प्रयोगबंधः। अशुभनामकर्माणि शरीरपृच्छा? गौतम! का-यानर्जुकतया यावत् विसवादनयोगेन अशुभनामकर्माणि यावत् प्रयोगबन्धः।

प्रश्न—शुभ नाम कर्म का शरीर किस प्रकार प्राप्त होता है ?

उत्तर—हे गौतम ! काय की सरलता से, मन की सरलता से, वचन की सरलता से तथा अन्यथा प्रवृत्ति न करने से शुभ नाम कर्म के शरीर का प्रयोग बंध होता है।

प्रश्न—अशुभनाम कर्म के शरीर का प्रयोग बंध किस प्रकार होता है ?

उत्तर—इसके विपरीति काय, मन तथा वचन की कुटिलता से तथा अन्यथा प्रवृत्ति करने से अशुभ नाम कर्म के शरीर का प्रयोग बंध होता है।

दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य ।

६. २४.

अरहंत–सिद्ध–पवयण–गुरु–थेर–बहुस्सुए तवस्सीसुं ।
वच्छलया य तेसिं अभिक्ख णाणोवओगे य ॥ १ ॥
दंसण विणए आवास्सए य सीलव्वए निरइयारं ।
खणलव तव च्चियाए वेयावच्चे समाही य ॥ २ ॥
अप्पुव्वणाणगहणे सुयभत्ती पवयणे पभावणया ।
एएहिं कारणेहिं तित्थयरत्तं लहइ जीवो ॥ ३ ॥

ज्ञाताधर्म कथांग अ० ८, सु० ६४.

छाया— अर्हत्सिद्धप्रवचनगुरुस्थविरबहुश्रुततपस्विवत्सलताऽभीक्ष्णं ज्ञानोपयोगश्च ॥ १ ॥
दर्शनं विनय आवश्यकानि च शीलव्रतं निरतिचारं ।
क्षणलवस्तपः त्यागः वैयावृत्यं समाधिश्च ॥ २ ॥

अपूर्वज्ञानग्रहणं श्रुतभक्तिः प्रवचने प्रभावना ।
एतैः कारणैः तीर्थंकरत्वं लभते जीवः ॥ ३ ॥

भाषा टीका—१. अर्हन्त भक्ति, २. सिद्ध भक्ति, ३. प्रवचन भक्ति, ४. स्थविर (आचार्य) भक्ति, ५. बहुश्रुत भक्ति, ६. तपस्वित्सलता, ७. निरन्तर ज्ञान में उपयोग रखना, ८. दर्शन का विशुद्ध रखना, ९. विनय सहित होना, १०. आवश्यकों का पालन करना, ११. अतिचार रहित शील और व्रतों का पालन करना, १२. संसार को क्षणभंगुर समझना, १३. शक्ति अनुसार तप करना. १४. त्याग करना, १५. वैयावृत्य करना, १६ समाधि करना, १७ अपूर्व ज्ञान को ग्रहण करना, १८ शास्त्र में भक्ति होना, १९ प्रवचन में भक्ति होना, और २० प्रभावना करना । इन कारणों से जीव तीर्थंकर प्रकृति का बंध करता है।

संगति—सूत्र में सोलह तथा आगम वाक्य में बीस कारण बतलाये गये हैं । किन्तु विचार कर देखने से पता चलता है कि आगम के बीस केवल विस्तार दृष्टि से ही हैं । अन्यथा सूत्र के सोलह से अधिक उनमें एक भी बात नहीं है । सूत्रकार ने उसी को अत्यंत संक्षेप से लेकर सोलह कारण भावनाओं की रचना की है।

परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ।

६. २५.

जातिमदेणं कुलमदेणं बलमदेणं जाव इस्सरियमदेणं णीयागोयकम्मासरीरजावपयोगबन्धे ।

व्याख्या० शत० ८, उ० ६, सू० ३५१.

छाया— जातिमदेन कुलमदेन बलमदेन यावत् ऐश्वर्यमदेन नीचगोत्रकर्माणि यावत् प्रयोगबन्धः ।

भाषा टीका—जाति के मद से, कुल के मद से, बल के मद से, तथा अन्य मदों सहित ऐश्वर्य के मद से नीच गोत्र कर्म के शरीर का प्रयाग बंध होता है ।

संगति—यद्यपि इस सूत्र के और आगम वाक्य के शब्द आपस में नहीं मिलते । किन्तु भाव फिर भी दोनों का एक ही है । क्योंकि अभिमानी सदा अपनी प्रशंसा करता

है और दूसरों की निन्दा करता है। अभिमानी सदा अपने न होने वाले गुणों को भी प्रकाशित करता है और दूसरे के होने वाले गुणों को भी छिपाता है।

तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ।

६, २६.

जातिअमदेणं कुलअमदेणं बलअमदेणं रूवअमदेणं तव-अमदेणं सुयअमदेणं लाभअमदेणं इस्सरियअमदेणं उच्चागोय-कम्मासरीरजावपयोगबंधे ।

व्याख्या० शतक ८ उ० ९ सू० ३५१

छाया— जात्यमदेन कुलामदेन बलामदेन रूपामदेन तपसमदेन श्रुतामदेन लाभामदेन ऐश्वर्यामदेन उच्चगोत्रकर्माणि यावत् प्रयोगबन्धः ।

भाषा टीका—जाति, कुल, बल, रूप, तप, विद्या, लाभ और ऐश्वर्य का घमंड न करने से उच्च गोत्र कर्म के शरीर का प्रयोग बन्ध होता है।

संगति—यहां भी उपरोक्त सूत्र के समान सूत्र और आगम को मिला लेना चाहिये।

विघ्नकरणमन्तरायस्य ।

६, २७

दाणंतराएणं लाभंतराएणं भोगंतराएणं उवभोगंतराएणं वीरियंतराएणं अंतराइयकम्मा सरीरप्पयोगबन्धे ।

व्याख्या प्रज्ञप्ति श० ८, उ० ९, सू० ३५१.

छाया— दानान्तरायेन, लाभान्तरायेन, भोगान्तरायेन, उपभोगान्तरायेन, वीर्यान्तरायेन अन्तरायकर्माणि शरीरप्रयोगबन्धः ।

भाषा टीका — दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में विघ्न करने से अन्तराय कर्म के शरीर का प्रयोगबन्ध होता है।

इति श्री-जैनमुनि-उपाध्याय-श्रीमदात्माराम-महाराज-संगृहीते

तत्त्वार्थसूत्रजैनाऽऽगमसमन्वये

❀ षष्ठोऽध्यायः समाप्तः ॥ ६ ॥ ❀

सप्तमोऽध्यायः

——:o:——

हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ।

७, १.

देशसर्वतोऽणुमहती ।

७, २.

पंच महव्वया पगणत्ता, तं जहा—सव्वातो पाणातिवायाओ वेरमणं । जाव सव्वातो परिग्गहातो वेरमणं । पंचाणुव्वता पगणत्ता, तं जहा—थूलातो पाणाइवायातो वेरमणं थूलातो मुसावायातो वेरमणं थूलातो अदिन्नादाणातो वेरमणं सदारसंतोसे इच्छापरिमाणे ।

स्थानांग स्थान ५, उ० १, सू० ३८९.

छाया— पञ्चमहाव्रताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–सर्वतः प्राणातिपातात् वेरमणं, यावत् सर्वतः परिग्रहात् वेरमणं । पञ्चाणुव्रताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–स्थूलतः प्राणातिपातात् वेरमणं स्थूलतः मृषावादाद्वेरमणं स्थूलतोऽदत्तादानाद्वेरमणं स्वदारसन्तोषः इच्छापरिमाणः ।

भाषा टीका — महाव्रत पांच होते हैं—सब प्रकार की प्राणि हिंसा से बचने से लगाकर सब प्रकार के परिग्रह से बचने तक । अणुव्रत भी पांच होते हैं—स्थूल प्राणिहिंसा से बचना, स्थूल असत्य भाषण से बचना, स्थूल चोरी से बचना, स्वदारसंतोष और इच्छा को नाप तोल के रखना ।

तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च ।

७, ३.

पंचजामस्य पणवीसं भावणाओ पगणत्ता ।

समवायांग, समवाय २५.

छाया— पञ्चयामस्य पञ्चविंशतयः भावनाः प्रज्ञप्ताः ।

भाषा टीका — पांचों व्रतों की पांच २ के हिसाब से पच्चीस भावनाएं कही गई हैं।

वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पञ्च ।

७, ४.

ईरिया समिई मणगुत्ती वयगुत्ती आलोयभायणभोयणं आदाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिई ।

समवायांग, समवाय २५.

छाया— ईर्यासमितिः मनोगुप्तिः वचोगुप्तिः आलोकभाजनभोजनं आदानभण्डमात्रनिक्षेपणासमितिः ।

भाषा टीका—ईर्या समिति, मनोगुप्ति, वचन गुप्ति, आलोकभाजनभोजन, आदानभण्ड मात्र निक्षेपणा समिति (आदान निक्षेपण समिति)। [यह पांच अहिंसा महाव्रत की भावनाएं हैं।]

क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पंच ।

७, ५.

अणुवीति भासणया कोहविवेगे लोभविवेगे भयविवेगे हासविवेगे ।

समवायांग, समय २५.

छाया— अनुविचिन्त्यभाषणता क्रोधविवेकः लोभविवेकः भयविवेकः हास्यविवेकः ।

भाषा टीका — सोच समझ के बोलना, क्रोध का त्याग, लोभ का त्याग, भय का त्याग और हास्य का त्याग [यह पांच सत्य महाव्रत की भावनाएं हैं।]

शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसद्धर्माऽविसंवादाः पञ्च । ७, ६.

उग्गहअणुण्णवणया उग्गहसीमजाणणया सयमेव उग्गहं अणुगिण्हणया साहम्मियउग्गहं अणुण्णविय परिभुंजणया साहारणभत्तपाणं अणुण्णविय पडिभुंजणया।

समवायांग समय २५.

छाया— अवग्रहानुज्ञापना, अवग्रहसीमापरिज्ञानता, स्वयमेव अवग्रहः अनुग्रहणता, साधर्मिकावग्रहः अनुज्ञाप्य परिभोजनता, साधारणभक्तपानं अनुज्ञाप्य परिभोजनता।

भाषा टीका— ठहरने की आज्ञा लेना, ठहरने की सीमा को जानना, स्वयं ही ठहर कर स्थान को स्वीकार करना, साधर्मियों को ठहराना और उनकी आज्ञा से भोजन करना, साधारण भोजन और पीने की वस्तु के विषय में अनुमति लेकर भोजन करना।

संगति— सूत्र में और इनमें केवल शाब्दिक भेद ही है। यह पांच अचौर्यमहाव्रत की भावनाएं हैं।

स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षण-पूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पञ्च।

७, ७.

इत्थीपसुपंडसंसत्तगसयणासणवज्जणया इत्थीकहवज्जणया इत्थीणं इंदियाणमालोयणवज्जणया पुव्वरयपुव्वकीलिआणं अणणुसरणया पणीताहारवज्जणया।

समवायांग समय २५.

छाया— स्त्रीपशुपण्डकसंसक्तशय्यासनवर्जनता स्त्रीकथाविवर्जनता स्त्रीणामिन्द्रियाणामालोकनवर्जनता पूर्वरतपूर्वक्रीडानां अनुस्मरणता प्रणीताहारवर्जनता।

भाषा टीका— स्त्री, पशु तथा नपुंसकों से लगे हुए शय्या तथा आसन को छोड़ना,

स्त्रियों की कथा का त्याग करना, स्त्रियों की इन्द्रियों के देखने का त्याग करना, पहिले भोगे हुए भोग और पहिले की हुई क्रीड़ाओं को स्मरण न करना, पौष्टिक आहार का त्याग करना, [यह पांच ब्रह्मचर्य व्रत की भावनाएं हैं] ।

मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पंच ।

७, ८.

सोइन्दियरागोवरई चक्खिंदियरागोवरई घाणिंदियरागोवरई जिब्भिंदियरागोवरई फासिंदियरागोवरई ।

समवायांग समय २५.

छाया— श्रोत्रेन्द्रियरागोपरतिः चक्षुरिन्द्रियरागोपरतिः घ्राणेन्द्रियरागोपरतिः जिह्वेन्द्रियरागोपरतिः स्पर्शनेन्द्रियरागोपरतिः ।

भाषा टीका — कर्ण इन्द्रिय के राग उत्पन्न करने वाले विषयों का त्याग, नेत्र इन्द्रिय के राग का त्याग, घ्राण इन्द्रिय के राग का त्याग, जिव्हा इन्द्रिय के राग (शौक) का त्याग, तथा स्पर्शन इन्द्रिय के राग का त्याग [यह पांच परिग्रह त्याग महाव्रत की भावनाएं हैं]

हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ।

७, ९.

दुःखमेव वा ।

७, १०.

संवेगिणी कहा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—इहलोगसंवेगणी परलोगसंवेगणी आतसरीरसंवेगणी परसरीरसंवेगणी। णिव्वेगणी कहा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—इहलोगे दुच्चिन्ना कम्मा इहलोगे दुहफलविवागसंजुत्ता भवंति ।। १ ।। इहलोगे दुच्चिन्ना कम्मा परलोगे दुहफलविवागसंजुत्ता भवंति ।। २ ।। परलोगे दुच्चिन्ना कम्मा इहलोगे दुहफलविवागसंजुता भवंति ।। ३ ।।

परलोगे दुच्चिन्ना कम्मा परलोये दुहफलविवागसंजुत्ता भवंति ॥ ४ ॥ इहलोगे सुचिन्ना कम्मा इहलोगे सुहफलविवागसंजुत्ता भवंति ॥ १ ॥ इहलोगे सुचिन्ना कम्मा परलोगे सुहफलविवागसंजुत्ता भवंति, एवं चउभंगो ।

स्थानांग स्थान ४ उद्दे० २ सूत्र. २८२

छाया— संवेगिनी कथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—इहलोकसंवेगनी परलोकसंवेगनी, आत्मशरीरसंवेगनी परशरीरसंवेगनी ।

निर्वेदनी कथा चतुर्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—इहलोके दुश्चीर्णानि कर्माणि इहलोके दुःखफलविपाकसंयुक्तानि भवन्ति ॥ १ ॥ इहलोके दुश्चीर्णानि कर्माणि परलोके दुःखफलविपाकसंयुक्तानि भवन्ति ॥ २ ॥ परलोके दुश्चीर्णानि कर्माणि इहलोके दुःखफलविपाकसंयुक्तानि भवन्ति ॥ ३ ॥ परलोके दुश्चीर्णानि कर्माणि परलोके दुःखफलविपाकसंयुक्तानि भवन्ति ॥ ४ ॥ इहलोके सुचीर्णानि कर्माणि इहलोके सुखफलविपाकसंयुक्तानि भवन्ति ॥ १ ॥ इहलोके सुचीर्णानि कर्माणि परलोके सुखफलविपाकसंयुक्तानि भवन्ति ॥ २ ॥ एवं चतुर्भङ्गः ।

भाषा टीका — संवेगिनी कथा चार प्रकार की कही गई है—इहलोक संवेगिनी, परलोक संवेगनी, आत्मशरीर संवेगनी, परशरीर सवेगनी ।

निर्वेदनी कथा भी चार प्रकार की कही गई है—इस लोक में बुरी तरह एकत्रित किये हुए कर्म इस लोक मे दुःख, फल और विपाक देते हैं ॥ १ ॥ इसलोक में बुरी तरह एकत्रित किये हुए कर्म परलोक में दुःख, फल और विपाक देते हैं ॥ २ ॥ परलोक में बुरी तरह एकत्रित किये हुए कर्म इस लोक में दुःख फल और विपाक से संयुक्त होते हैं ॥३॥ परलोक में बुरी तरह एकत्रित किये हुए कर्म परलोक में ही दुःख, फल और विपाक से संयुक्त होते हैं ॥ ४ ॥

इस लोक में अच्छी तरह किये हुए कर्म इस लोक में सुख, फल और विपाक से

संयुक्त होते हैं ॥ १ ॥ इस लोक में अच्छी तरह किये हुए कर्म परलोक में सुख, फल और विपाक से संयुक्त होते हैं ॥ २ ॥ इस प्रकार चार भंग हैं।

संगति—विचार कर देखने पर पता चलेगा कि उपरोक्त आगम वाक्य भी यही कह रहे हैं कि हिंसा आदि पांचों पाप इस लोक और परलोक में पाप और दुःख को ही देने वाले है और स्वयं दुःख रूप है। सूत्र और आगम वाक्य में केवल कहने के ढंग का भेद है।

मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि च सत्वगुणाधिकक्लिश्यमानाऽविनयेषु ।

७, ११

मित्तिं भूएहिं कप्पए......

सूत्र कृतांग० प्रथम श्रुतस्कंध अध्याय १५ गाथा ३।

सुप्पडियाणंदा ।

औपपातिक सूत्र १ प्रश्न २०

साणुकोस्सयाए ।

औपपातिक भगवदुपदेश।

मज्झत्थो निजरापेही समाहिमणुपालए ।

आचारांग प्रथम श्रुतस्कंध अध्याय ८ उद्दे० ८ गाथा ५

छाया— मैत्रीं भूतैः कल्पयेत् ।

सुप्रत्यानन्दः ।

सानुक्रोशः ।

मध्यस्थः निर्जरापेक्षी समाधिमनुपालयेत् ।

भाषा टीका—समस्त प्राणियों में मैत्री भाव रखे, अपने से अधिक गुण वालों को देखकर आनन्द में भर जावे, दुखी जीवों पर दया करे और अविनयी लोगों में समाधि का पालन करता, निर्जरा की अपेक्षा करता हुआ माध्यस्थ भाव रखे।

जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम् ।

७, १२.

भावणाहि य सुद्धाहिं, सम्मं भावेत्तु अप्पयं ।

उत्तराध्ययन अध्यय १६ गाथा ६४.

अणिच्चे जीवलोगम्मि ।

जीवियं चेव रूवं च, विज्जुसंपायचंचलम् ।

उत्तराध्ययन अध्ययन १८ गाथा ११, १३

छाया— भावनाभिश्च शुद्धाभिः सम्यग् भावयित्वाऽऽत्मानम् ।

अनित्ये जीवलोके……जीवितं चैव रूपं च विद्युत्संपातचंचलम् ।

भाषा टीका—शुद्ध भावनाओं से अपने आप को अच्छी तरह चिन्तवन करके अनित्य जीव लोक में जीवन और रूप को बिजली के गिरने के समान चंचल चिन्तवन करे।

संगति—यह वाक्य भी दूसरे शब्दों में यही कह रहे हैं कि संवेग और वैराग्य के वास्ते जगत् और काय के स्वभाव का चिन्तवन करे।

प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा ।

७. १३.

तत्थ णं जेते पमत्तसंजया ते असुहं जोगं पडुच्च आयारंभा परारंभा जाव णो अणारंभा ।

व्याख्या प्रज्ञप्ति शतक १ उद्दे० १ सूत्र ४८

छाया— तत्र ये ते प्रमत्तसंयतास्तेऽशुभं योगं प्रतीत्य आत्मारंभाःअपि परारम्भाः यावत् नो अनारम्भाः ।

भाषा टीका—प्रमत्तसंयत गुण स्थान वाले मुनि भी अशुभयोग को प्राप्त होकर आत्मारम्भ होते हुए भी परारम्भ हो जाते हैं और पूर्ण आरम्भ करने लगते हैं।

संगति—इस आगम वाक्य में बतलाया गया है कि प्रमत्त संयत गुण स्थान वाले मुनि प्रमाद के योग से प्राणव्यपरोपण रूप हिंसा में फिर भी लग सकते हैं। अन्य लोगों के विषय में तो क्या कहा जावे।

असदभिधानमनृतम् ।

७ १४

अलियं……असच्चं संधत्तणं……असब्भाव……

अलियं

प्रश्न व्याकरणांग आस्रवद्वार २

छाया— अलीकमसत्यं संधत्तणं असद्भावः अलीकम् ।

भाषा टीका — जैसा न हो वैसा असत्य स्थापित करना असत्य कहलाता है ।

अदत्तादानं स्तेयं ।

७. १५

अदत्तं……तेणिक्को ।

प्रश्न व्या० आस्रवद्वार ३

छाया— अदत्तं स्तेनः ।

भाषा टीका — बिना दिये हुए को लेना चोरी है ।

मैथुनमब्रह्म ।

७. १६

अबम्भ मेहुणं ।

प्र० व्या० आस्रवद्वार ४

छाया— अब्रह्म मैथुनम् ।

भाषा टीका — मैथुन करना अब्रह्म पाप कहलाता है ।

मूर्छा परिग्रहः ।

७. १७

मुच्छा परिग्गहो वुत्तो ।

दश० अध्ययन ६ गाथा २१.

छाया— मूर्छा परिग्रहः उक्तः ।

भाषा टीका — चेतन अचेतन रूप परिग्रह में ममत्व परिणाम रूप मूर्छा को परिग्रह कहा गया है।

निश्शल्यो व्रती ।

७, १८

पडिक्कमामि तिहिं सल्लेहिं—मायासल्लेण नियाणसल्लेणं मिच्छादंसणसल्लेणं ।

आवश्यक० चतु० आवश्य० सूत्र ७

छाया— प्रतिक्रमामि त्रिभिः शल्यैः—मायाशल्येन निदानशल्येन मिथ्यादर्शनशल्येन ।

भाषा टीका — मैं तीन शल्यों से प्रतिक्रमण करता हूं—माया शल्य से, निदान शल्य से और मिथ्यादर्शन शल्य से। इस प्रकार प्रतिक्रमण करना ही व्रती का लक्षण है।

आगार्यनगारश्च ।

७, १९

चरित्तधम्मे दुविहे पन्नत्ते· तं जहा—आगारचरित्तधम्मे चेव, अणगारचरित्तधम्मे चेव ।

स्थानांग स्थान २, उ० १

छाया— चारित्रधर्मः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—आगारचारित्रधर्मश्चैवानागारचरित्रधर्मश्चैव ।

भाषा टीका — चारित्र धर्म दो प्रकार का होता है—आगार चारित्रधर्म अथवा गृहस्थ धर्म और अनागार चारित्र धर्म अथवा मुनिधर्म।

अणुव्रतोऽगारी ।

७, २०

आगारधम्मं ...... अणुव्वयाइं इत्यादि ।

औपपातिक सूत्र श्रीवीर देशना.

छाया— आगरधर्मोऽणुव्रतादिः इत्यादि ।

भाषा टीका — अणुव्रत आदि का धारण करना आगार धर्म कहलाता है ।

दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रतसम्पन्नश्च ।

७, २१.

आगरधम्मं दुवालसविहं आइक्खइ, तं जहा–पंच अणुव्वयाइं तिण्णि गुणव्वयाइं चत्तारि सिक्खावयाइं ।

तिण्णि गुणव्वाइं, तं जहा–अणत्थदंडवेरमणं दिसिव्वयं, उपभोगपरिभोगपरिमाणं । चत्तारि सिक्खावयाइं तं जहा–सामाइयं देसावगासियं पोसहोववासे अतिहिसंविभागे ।

औपपातिकम श्रीवीरदेशना सूत्र ५७

छाया— आगारधर्मः द्वादशविधः आख्यते, तद्यथा–पञ्चाणुव्रतानि त्रीणि गुणव्रतानि चत्वारि शिक्षाव्रतानि ।

त्रीणि गुणव्रतानि, तद्यथा–अनर्थदंडवेरमणं, दिग्व्रतं, उपभोगपरिभोगपरिमाणं ।

चत्वारि शिक्षाव्रतानि–तद्यथा–सामायिकं देशावकाशिकं, प्रोषधोपवासः, अतिथिसंविभागश्च ।

भाषा टीका — आगार धर्म बारह प्रकार का कहा जाता है — पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ।

तीन गुणव्रत यह हैं—अनर्थदंड त्याग, दिग्व्रत और उपभोग परिभोग परिमाण ।

चार शिक्षाव्रत यह हैं—सामायिक, देशावकाशिक, प्रोषधोपवास और अतिथि संविभाग ।

मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता ।

७, २२.

अपच्छिमा मारणंतिआ संलेहणा जूसणाराहणा ।

औपपा० सू० ५७.

छाया— अपश्चिमा मारणांतिकीं सल्लेखनां जूषणा आराधना ।

भाषा टीका — अन्तिम समय में मरते समय सल्लेखना को आराधना करे ।

शङ्काकांक्षाविचिकित्साऽन्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतिचाराः ।

७, २३

सम्मत्तस्स पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा—संका कंखा वितिगिच्छा, परपासंडपसंसा, परपासंडसंथवो ।

उपासकदशांग, अध्याय १

छाया— सम्यक्त्वस्य पञ्चातिचाराः प्रधाना ज्ञातव्याः । न समाचरितव्या, तद्यथा शङ्का, कांक्षा, विचिकित्सा, परपाखण्डप्रशंसा, परपाखण्डसंस्तवः ।

भाषा टीका — सम्यग्दर्शन के पांच प्रधान अतिचार होते हैं । उनको न करे । वह यह हैं—शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, दूसरे के पाखंडी प्रसंशा करना, पाखंडी का संसर्ग करना ।

व्रतशीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ।

७, २४

भाषा टीका — इसी प्रकार पांच २ अतिचार पांच व्रतों, तीन गुणव्रतों और चारों शिक्षाव्रतों के क्रमशः हैं ।

बन्धवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः

७, २५.

थूलस्स पाणाइवायवेरमणस्स समणोवासएणं पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा, न समायरियव्वा। तं जहा—बहबंधच्छविच्छेए अइभारे भत्तपाणवोच्छेए।

उपा० अ० १

छाया— स्थूलस्य प्राणातिपातवेरमणस्य श्रमणोपासकेन पञ्चातिचाराः प्रधानाः ज्ञातव्याः। न समाचरितव्या। तद्यथा--बधबन्धच्छविच्छेदः अतिभारः भक्तपानव्यवच्छेदः।

भाषा टीका — स्थूल हिंसा का त्याग करने वाले श्रावक को पांच प्रधान अतिचार जानने चाहिये। उनको कभी न करे। वह यह हैं—मारना, बांधना, शरीर छेदना, अत्यन्त बोझा लादना और अपने आधीन को अन्न पानी न देना।

मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेखक्रिया-न्यासापहारसाकारमंत्रभेदाः।

७, २६.

थूलगमुसावायस्स पंच अइयारा जाणियव्वा। न समारियव्वा। तं जहा—सहसाभक्खाणे रहसाभक्खाणे सदारमंतभेए मोसोवएसेए कूडलेहकरणे य।

उपा० अ० १

छाया— स्थूलमृषावादस्य पञ्चातिचाराः ज्ञातव्याः,। न समाचरितव्याः। तद्यथा-सहसाभ्याख्यानं, रहोभ्याख्यानं, स्वदारमंत्रभेदः मृषोपदेशः कूटलेखकरणश्च।

भाषा टीका — स्थूल झूठ के पांच अतिचार जानने चाहियें। उनको कभी न करे। वह यह हैं—बिना सोचे एक दम कह देना, गुप्त बात कह देना, अपनी स्त्री के गुप्त भेद का प्रगट करना, झूठ बोलने का उपदेश देना, झूठी दस्तावेज लिखना।

स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रम-हीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः ।

७, २७.

थूलगअदिएणादाणस्स पंचअइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा—तेनाहडे, तक्करप्पउगे, विरुद्धरजाइक्कम्मे, कूडतुल्लकूडमाणे, तप्पडिरूवगववहारे ।

छाया— स्थूलादत्तादानस्य पञ्चातिचाराः ज्ञातव्याः, न समाचरितव्याः, तद्यथा—स्तेनाहृतं, तस्करप्रयोगः, विरुद्धराज्यातिक्रमः, कूटतुला-कूटमानः, तत्प्रतिरूपकव्यवहारः ।

भाषा टीका — स्थूल चोरी के पांच अतिचार जानने चाहियें । उनको कभी न करे वह यह हैं—चोरी का माल लेना, चोरी को तरकीब बतलाना, राज्य विरुद्ध कार्य करना, देने तोलने के नाप बाट तराजू आदि का कम बढ़ती रखना और असली माल में नकली माल अथवा कम मूल्य की वस्तु मिलाकर बेचना ।

परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीताऽपरिगृहीता-गमनाऽनङ्गक्रीडाकामतीव्राभिनिवेशाः ।

७, २८.

सदारसंतोसिए पंच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा—इत्तरियपरिग्गहियागमणे अपरिग्गहियागमणे, अणंगकीड़ा, परविवाहकरणे कामभोएसु तिव्वाभिलासो ।

उपा० अध्याय १.

छाया— स्वदारसंतुष्टे पञ्चातिचाराः ज्ञातव्याः, न समाचरितव्याः, तद्यथा इत्वरपरिग्रहीतागमनं, अपरिग्रहीतागमनं, अनङ्गक्रीडा, परविवाह-करणं, कामभोगेषु तीव्राभिलाषः ।

भाषा टीका — स्वदारसंतोष व्रत के भी पांच अतिचार जानने चाहियें। उनको कभी न करे। वह यह हैं—

१. इत्वरिकापरिग्रहीतागमन—दूसरे की विवाह की हुई कुलटा स्त्री से गमन करना। अथवा छोटी अवस्था में विवाह की हुई किन्तु संभोग के योग्य अवस्था न होने पर भी अपनी स्त्री से विषय करना।

२. अपरिग्रहीतागमन—अविवाहिता कुमारी अथवा वेश्या आदि के साथ गमन करना अथवा किसी कन्या के साथ अपनी मंगनी होजाने पर उसके एकान्त में मिलने पर उसे अपनी भावी स्त्री जानकर विवाह के पूर्व ही उससे भोग करना।

३ अनंग क्रीडा—काम के अंगों से भिन्न अंगों में क्रीड़ा करना।

४. पर विवाह करण—कुमारी कन्या का विवाह पुण्य समझ कर या अन्य कारण से दूसरे का विवाह करना। अथवा दूसरे की मंगनी तुड़वा कर अपना विवाह करना।

५ काम भोग तीव्राभिलाषा—काम भोग सेवन की तीव्र अभिलाषा रखना।

क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदास-कुप्यप्रमाणातिक्रमाः ।

७, २९.

इच्छापरिमाणस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा. न समायरियव्वा। तं जहा — धणधन्नपमाणाइक्कमे खेतवत्थुप्पमाणाइक्कमे हिरण्णसुवण्णपरिमाणाइक्कमे दुपयचउप्पयपरिमाणाइक्कमे कुवियपमाणाइक्कमे।

उपासक० अध्याय १.

छाया— इच्छापरिमाणस्य श्रमणोपासकेन पञ्चातिचाराः ज्ञातव्याः, न समाचरितव्याः, तद्यथा–धनधान्यप्रमाणातिक्रमः, क्षेत्रवास्तुप्रमाणातिक्रमः, हिरण्यसुवर्णपरिमाणातिक्रमः, द्विपदचतुष्पदपरिमाणातिक्रमः, कुप्यप्रमाणातिक्रमः।

भाषा टीका — इच्छा परिमाण व्रत के भी पांच अतिचार जानने चाहियें। उनको कभी न करे। वह यह हैं—

१. धनधान्यप्रमाणातिक्रम—किये हुये धन और धान्य (अनाज) के परिमाण को उल्लंघन करना।

२. क्षेत्र वास्तु प्रमाणातिक्रम—किये हुए भूमि तथा गृह आदि के परिमाण का उल्लंघन करना।

३. हिरण्यसुवर्णपरिमाणातिक्रम— किये हुए चांदी सोने के परिमाण का उल्लंघन करना।

४ द्विपद्चतुष्पद्परिमाणातिक्रम—किये हुए दासी दास पशु आदि के परिमाण का उल्लंघन करना।

५. कुप्यप्रमाणातिक्रम-किये हुए घर के उपकरणों के परिमाण का उल्लंघन करना।

ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यन्तराधानानि

७, ३०.

दिसिव्वयस्स पंच अइयारा जाणियव्वा। न समायरियव्वा, तं जहा—उड्ढदिसिपरिमाणाइक्कमे, अहोदिसिपरिमाणाइक्कमे, तिरियदिसिपरिमाणाइक्कमे, खेत्तवुड्ढिस्स सइअंतरड्ढा।

उपा० अध्या १

छाया— दिग्व्रतस्य पञ्चातिचाराः ज्ञातव्याः, न समाचरितव्याः, तद्यथा—ऊर्ध्वदिग्परिमाणातिक्रमः, अधोदिग्परिमाणातिक्रम, तिर्यग्दिग्प्रमाणातिक्रमः, क्षेत्रवृद्धिः, स्मृत्यन्तराधानम्।

भाषा टीका — दिग्व्रत के पांच अतिचार जानने चाहियें। उनको कभी न करे। वह यह है—ऊर्ध्व दिशा में जाने को किये हुए परिमाण का उल्लंघन करना, नीचे की दिशा में जाने के लिये किये हुए परिमाण का उल्लंघन करना, तिरछी दिशा में जाने के लिए किये हुए परिमाण का उल्लघंन करना, किये हुए क्षेत्र के परिमाण को बढ़ा लेना, किये हुये परिमाण को भूल जाना।

आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः ।

७, ३१.

देशावगासियस्स समणोवासएण पंच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा—आणवणपयोगे, पेसवणपओगे, सद्दाणुवाए, रूवाणुवाए, वहियापोग्गलपक्खवे ।

उपा० अध्या० १

छाया— देशावकाशिकस्य श्रमणोपासकेन पञ्चातिचाराः ज्ञातव्याः, न समाचरितव्याः, तद्यथा—आनयनप्रयोगः प्रेष्यप्रयोगः, शब्दानुपातः, रूपानुपातः, वहिपुद्गलप्रक्षेपः ।

भाषा टीका — श्रमणोपासक को देशावकाशिक के पांच अतिचार जानने चाहियें। किन्तु उन पर आचरण न करना चाहिये । वह यह हैं —

आनयन प्रयोग—सीमा के बाहर से किसी वस्तु को मंगवा लेना ।

प्रेष्य प्रयोग— अपने न जाने के प्रदेश से बाहिर किसी वस्तु को भेजना ।

शब्दानुपात—नियत देश से बाहिर न जाते हुए भी शब्द के द्वारा अपना काम निकाल लेना ।

रूपानुपात—इसी प्रकार सीमा से बाहिर कोई संकेत आदि दिखाकर अपना काम निकाल लेना ।

बहिपुद्गल प्रक्षेप—इसी प्रकार परिमाण से बाह्य देश में ढेला पाषाण आदि फेंक कर अपना काम चलाना ।

कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्याऽसमीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ।

७, ३२.

अणट्ठादंडवेरमणस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा—कन्दप्पे कुक्कुइए

मोहरिए संजुत्ताहिगरणे उपभोगपरिभोगाइरित्ते ।

उपा० अध्या १

छाया— अनर्थदण्डवेरमणस्स श्रमणोपासकेन पञ्चातिचाराः ज्ञातव्याः, न समाचरितव्याः, तद्यथा–कन्दर्पः, कौत्कुच्यः मौखर्यं, संयुक्ताधिकरणम् उपभोगपरिभोगातिरिक्तः ।

भाषा टीका — अनर्थदण्ड विरति व्रत के श्रमणोपासक का पांच अतिचार जानने चाहियें । किन्तु उन पर आचरण नहीं करना चाहिये । वह यह हैं—

कन्दर्प — स्वभाव की उत्कटता से हास्य मिश्रित भण्ड वचन बोलना ।

कौत्कुच्य — हास्य मिश्रित भण्ड वचन बोलना तथा शरीर से भी निन्दनीय क्रिया करना ।

मौखर्य — बहुत निरर्थक प्रलाप करना ।

संयुक्ताधिकरण — बिना विचारे आवश्यकता से अधिक हिंस्र सामग्री एकत्रित करना ।

उपभोग परिभोगातिरिक्त — भोग उपभोग के जिन पदार्थों से अपना काम चल जाता है उनसे अधिक संग्रह करना ।

योगदुष्प्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ।

७, ३३.

सामाइयस्स पंच अइयारा समणोवासएणं जाणियव्वा । न समारियव्वा, तं जहा—मणदुप्पणिहाणे, वएदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे, सामाइयस्स सति अकरणयाए, सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया ।

उपा० अध्या १

छाया— सामायिकस्य पञ्चातिचाराः श्रमणोपासकेन ज्ञातव्याः, न समाचरितव्याः, तद्यथा – मनःदुष्प्रणिधानं, वचःदुष्प्रणिधानं, कायदुष्प्रणिधानं, सामायिकस्य स्मृत्यकरणता, सामायिकस्यानवस्थितस्य करणता ।

भाषा टीका — श्रमणोपासक को समायिक व्रत के पांच अतिचार जानने चाहियें, किन्तु उनपर आचरण न करना चाहिये। वह यह हैं—

१. मनो दुष्प्रणिधान — सामायिक के समय मनको अन्यथा चलायमान करना।

२. वाग्दुष्प्रणिधान — सामायिक के समय वचन को चलायमान करना।

३. कायदुष्प्रणिधान — सामायिक के समय काय को चलायमान करना।

४. स्मृति अकरण — सामायिक के समय आदि को भूल जाना।

५. अनवस्थितकरण — समायिक के काल और उसकी क्रिया का निश्चित रूप से पालन न करना।

अप्रत्यवेक्षिताऽप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि।

७, ३४

पोसहोववासस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समारियव्वा. तं जहा– अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय सिज्जासंथारे, अप्पमज्जियदुप्पमज्जियसिज्जासंथारे. अप्पडिलेहियदुप्पडिलेहिय उच्चार पासवणभूमी, अप्पमज्जियदुप्पमज्जिय उच्चारपासवणभूमी. पोसहोववासस्स सम्मं अणणुपालणया।

उपा० अध्या १

छाया— प्रोषधोपवासस्य श्रमणोपासकेन पञ्चातिचारा ज्ञातव्या, न समाचरितव्याः, तद्यथा – अप्रत्युपेक्षितदुष्प्रत्युपेक्षितशय्यासंस्तारः, अप्रमार्जितदुष्प्रमार्जितशय्यासंस्तारकः अप्रत्युपेक्षितदुष्प्रत्युपेक्षितोच्चारप्रस्रवणभूमिः, अप्रमार्जितदुष्प्रमार्जितोच्चारप्रस्रवणभूमिः, प्रोषधोपवासस्य सम्यक् अननुपालनना।

भाषा टीका — प्रोषधोपवास के पांच अतिचार श्रमणोपासक को जानने चाहियें, किन्तु उनका आचरण नहीं करना चाहिये। वह यह हैं—

१. अप्रत्युपेक्षित दुष्प्रत्युपेक्षित शय्यासंस्तारक — प्रोषधोपवास किए हुये स्थान

पर शय्या और संस्तारक को भली प्रकार विशेष रूप से निरीक्षण न करना। यदि करना तो अस्थिर चित्त से।

२. अप्रमार्जित दुष्प्रमार्जित शय्यासंस्थारक—शय्या और संस्तारक को भली प्रकार विशेष रूप से रजोहरणादि द्वारा प्रमार्जित न करना। यदि करना तो अस्थिर चित्त से।

३. अप्रत्युपेक्षित दुष्प्रत्युपेक्षित उच्चारप्रस्रवण भूमि — भलीप्रकार विशेष रूप से उच्चार (मल) प्रस्रवण (मूत्र) के त्यागने की भूमि को निरीक्षण न करना। यदि करना तो अस्थिर चित्त से।

४. अप्रमार्जित दुष्प्रमार्जित प्रस्रवण भूमि — भलीप्रकार विशेष रूप से मल मूत्र के त्यागने की भूमि को प्रमार्जित (शुद्ध) नहीं करना। यदि करना तो अस्थिर चित्त से।

५ प्रोषधोपवासस्य सम्यगननुपालनता — प्रोषधोपवास का भली प्रकार पालन न करना। उसमें चित्त को अस्थिर रखना।

सचित्तसम्बन्धसम्मिश्राभिषवदुःपक्वाहाराः।

७, ३५.

भोयणओ समणोवासएणं पञ्च अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा—सचित्ताहारे सचित्तपडिबद्धाहारे उप्पउलिओसहिभक्खणया, दुप्पोलितोसहिभक्खणया, तुच्छोसहिभक्खणया।

उपा० अध्या० १

छाया— भोजनतः श्रमणोपासकेन पञ्चातिचाराः ज्ञातव्याः, न समाचरितव्याः, तद्यथा—सचित्ताहारः, सचित्तप्रतिबद्धाहारः, अपक्कौषधिभक्षणता, दुःपक्कौषधिभक्षणता, तुच्छौषधिभक्षणता।

भाषा टीका — श्रमणोपासक को भोजन (उपभोगपरिभोगपरिमाण) के पांच अतिचार जानने चाहियें। किन्तु उनका आचरण नहीं करना चाहिये। वह यह हैं—

१. सचित्ताहार—त्यागहोने पर जीव सहित पुष्प फल आदि का आहार करना।

२. सचित्तप्रबद्धाहार — सचित्त वस्तु से स्पर्श हुए पदार्थों का आहार करना।

३. अपक्वाहार — अग्नि से न पकाये हुये तथा औषधि आदि मिश्र पदार्थों का खाना।

४. दुपक्वाहार — भलीप्रकार न पके अथवा देर से परिपक्व होने वाले पदार्थों का भोजन करना।

५. तुच्छौषधिभक्षणता — ऐसे पदार्थ को खाना जिसके खाने से हिंसा विशेष होती हो किन्तु उदर पूर्ति न हो सके।

सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः।

७, ३६

अहासंविभागस्स पंच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा—सचित्तनिक्खेवणया, सचित्तपेहणया, कालाइक्कमदाणे परोवएसे मच्छरया।

उपा० अध्या० १

छाया— अतिथिसंविभागस्य पञ्चातिचाराः ज्ञातव्याः, न समाचरितव्याः, तद्यथा—सचित्तनिक्षेपणता, सचित्तपिधानता, कालातिक्रमदानं, परव्यपदेशः, मत्सरता।

भाषा टीका —अतिथिसंविभाग व्रत के पांच अतिचार जानने चाहियें। किन्तु उन पर आचरण नहीं करना चाहिये। वह यह हैं—

१. सचित्तनिक्षेपणता — न देने की बुद्धि से जल अन्न अथवा वनस्पति आदि में अचित्त आहार रखना।

२. सचित्तपिधानता — सचित्र कमलपत्र आदि से ढक कर आहार का रखना।

३. कालातिक्रमदान — दान देने के काल का उल्लघन करके अकाल में विनती करना। अथवा बीते हुए समय वाली वस्तु का दान करना।

४. परव्यपदेश — न देने की बुद्धि से साधु को अन्य की वस्तु बतला देनी अथवा अन्य की वस्तु का उसकी बिना आज्ञा दान करना।

५. मत्सरता — अमुक गृहस्थ ने इस प्रकार का दान दिया है तो क्या मैं उससे किसी प्रकार न्यूनता रखता हूं? नहीं, अतः मैं भी दान दूंगा। इस प्रकार असूया या अहंकार पूर्वक दान करना।

जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबन्धनिदानानि।

७, ३७.

अपच्छिममारणंतियसंलेहणा झूसणाराहणाए पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा—इहलोगासंसप्पओगे, परलोगासंसप्पओगे, जीवियासंसप्पओगे, मरणासंसप्पओगे, कामभोगासंसप्पओगे।

उपा० अध्याय १

छाया— अपश्चिममारणान्तिकसल्लेखनाजूषणाऽऽराधनायाः, पञ्चातिचाराः ज्ञातव्याः, न समाचरितव्याः, तद्यथा–इहलोकाशंसाप्रयोगः, परलोकाशंसाप्रयोगः, जीविताशंसाप्रयोगः, मरणाशंसाप्रयोगः कामभोगाशंसाप्रयोगः।

भाषा टीका — आयु के अन्तिम भाग मरण समय में होने वाली सल्लेखना के पांच अतिचार जानने चाहियें। उन पर आचरण न करना चाहिये। वह यह हैं —

१. इहलोकाशंसाप्रयोग—मरने के पश्चात इहलोक के सुखों की इच्छा करना।

२. परलोकाशंसाप्रयोग—मरने के पश्चात उत्तम देवलोक आदि के सुखों की इच्छा करना।

३. जीविताशंसाप्रयोग—जीवित ही रहने की इच्छा करना।

४. मरणाशंसाप्रयोग—दुख आदि से छूटने के लिये शीघ्र मरने की इच्छा करना।

५. कामभोगाशंसाप्रयोग—विशेष काम भोग की इच्छा करना।

अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम्।

७, ३८.

समणोवासए णं तहारूवं समणं वा जाव पडिलाभेमाणे

तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा समाहिं उप्पाएति, समाहिकारएणं तमेव समाहिं पडिलभइ ।

व्याख्या० शत० ७, उ० १, सू० २६३.

छाया— श्रमणोपासकः तथारूपं श्रमणं वा यावत् प्रतिलाभ्यन् तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा समाधिं उत्पादयति, समाधिकारकेण तमेव समाधिं प्रतिलभते ।

भाषा टीका—श्रमणोपासक तथारूप श्रमण अथवा माहन (श्रावक) को यावत् आहार आदि देता हुआ तथा रूप श्रमण अथवा माहन को समाधि उत्पन्न करता है। समाधि ही के कारण से उसको भी समाधि की प्राप्ति होती है।

संगति—उपरोक्त आगम वाक्य में दान का लक्षण करते हुए उसका महत्त्व भी बतलाया है। जो कि सूत्र के "अनुग्रहार्थं" पद से स्पष्ट है।

विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः ।

७, ३९.

दव्वसुद्धेणं दायगसुद्धेणं तवस्सिविसुद्धेणं तिकरणसुद्धेणं पडिगाहसुद्धेणं तिविहेणं तिकरणसुद्धेणं दाणेणं ।

व्याख्या प्र० श० १५, सू० ५४१.

छाया— द्रव्यशुद्धेन दायकशुद्धेन तपस्विशुद्धेन त्रिकरणशुद्धेन प्रतिगाहशुद्धेन त्रिविधेन त्रिकरणशुद्धेन दानेन ।

भाषा टीका—द्रव्य शुध्द से, दातृ शुध्द से, तपस्वि शुध्द से, त्रिकरण (मन वचन काय) शुध्द से, पात्र शुध्द से दान की विशेषता होती है।

संगति—इन सभी सूत्र और आगम वाक्यों के अक्षर प्राय. मिलते हैं। जहां कहीं भेद है तो वह शाब्दिक ही है। तात्त्विक बिल्कुल नहीं है।

इति श्री-जैनमुनि-उपाध्याय-श्रीमदात्माराम-महाराज-संगृहीते

तत्त्वार्थसूत्रजैनाऽऽगमसमन्वये

❋ सप्तमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ७ ॥ ❋

अष्टमोऽध्यायः

———:o:———

मिथ्यादर्शनाऽविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः।

८, १.

पंच आसवदारा पगणत्ता, तं जहा—मिच्छत्तं अविरई पमाया कसाया जोगा ।

समवायांग, समय ५.

छाया— पञ्च आस्रवद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—मिथ्यात्वमविरतिः प्रमादाः कषायाः योगाः ।

भाषा टीका—आस्रव के द्वार पांच बतलाये गये हैं—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग।

सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्धः ।

८, २.

जोगबंधे कसायबंधे ।

समवायांग समवाय ५.

दोहिं ठाणेहिं पापकम्मा बंधंति, तं जहा—रागेण य दोसेण य। रागे दुविहे पगणत्ते, तं जहा—माया य लोभे य। दोसे दुविहे पगणत्ते, तं जहा—कोहे य माणे य ।

स्थानांग स्थान २, उ० २.

प्रज्ञापना पद २३, सू० ५.

छाया— योगबन्धः कषायबन्धः ।

द्वाभ्यां स्थानाभ्यां पापकर्माणि बध्नन्ति, तद्यथा—रागेण च द्वेषेण च। रागः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—माया च लोभश्च। द्वेषः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—क्रोधश्च मानश्च ।

भाषा टीका—बन्ध योग से होता है और कषाय से होता है।

दो स्थानों से पाप कर्म बंधते हैं—राग से और द्वेष से। राग दो प्रकार का कहा गया है—माया और लोभ। द्वेष दो प्रकार का कहा गया है—क्रोध और मान।

संगति—उपरोक्त आगम वाक्य में स्पष्ट है कि बंध जीव के कषाय युक्त होने पर ही होता है। कर्म के योग्य पुद्गलों का ग्रहण करना स्पष्ट ही है।

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः।

८, ३.

चउव्विहे बन्धे पण्णत्ते, तं जहा—पगइबंधे ठिइबन्धे अणुभावबन्धे पएसबन्धे।

समवायांग समवाय ४

छाया— चतुर्विधः बन्धः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—प्रकृतिबन्धः, स्थितिबन्धः, अनुभागबन्धः, प्रदेशबन्धः।

भाषा टीका—बन्ध चार प्रकार का बतलाया गया है—प्रकृतिबंध, स्थिति बंध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबंध।

आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाः।

८, ४.

अट्ठ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—णाणावरणिज्जं, दंसणावरणिज्जं, वेदणिज्जं, मोहणिज्जं, आउयं, नामं, गोयं, अंतराइयं।

प्रज्ञापना पद २१, उ० १, सू० २८८

छाया— अष्टौ कर्मप्रकृतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—ज्ञानावरणीयं, दर्शनावरणीयं, वेदनीयं, मोहनीयं, आयुः, नाम, गोत्रं, अन्तरायः।

भाषा टीका—कर्मप्रकृतियां आठ प्रकार की बतलाई गई हैं। वह यह हैं—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय।

पंचनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपंचभेदा यथाक्रमम् ।

८, ५.

भाषा टीका—उनके भेद क्रम से पांच, नव, दो, अट्ठाईस, चार, बयालीस, दो और पांच होते हैं।

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानाम् ।

८, ६.

पंचविहे णाणावरणिज्जे कम्मे पण्णत्ते, तं जहा—आभिणिबोहियणाणावरणिज्जे सुयणाणावरणिज्जे, ओहिणाणावरणिज्जे मणपज्जवणाणावरणिज्जे केवलणाणावरणिज्जे ।

स्थानांग स्थान ५, उ० ३, सू० ४६४.

छाया— पञ्चविधं ज्ञानावरणीयं कर्म प्रज्ञप्तं, तद्यथा—आभिनिबोधिकज्ञानावरणीयं, श्रुतज्ञानावरणीयं, अवधिज्ञानावरणीयं, मनःपर्ययज्ञानावरणीयं, केवलज्ञानावरणीयं ।

भाषा टीका—ज्ञानावरणीय कर्म पांच प्रकार का होता है—आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय (मतिज्ञानावरणीय), श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय. मनःपर्यय ज्ञानावरणीय और केवल ज्ञानावरणीय।

चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च ।

८, ७.

णवविधे दरिसणावरणिज्जे कम्मे पण्णत्ते, तं जहा—निद्दा निद्दानिद्दा पयला पयलापयला थीणगिद्धी चक्खुदंसणावरणे अचक्खुदंसणावरणे, अवधिदंसणावरणे केवलदंसणावरणे ।

स्थानांग स्थान ९, सू० ६६८.

छाया— नवविधं दर्शनावरणीयं कर्म प्रज्ञप्तं, तद्यथा—निद्रा निद्रानिद्रा प्रचला प्रचलाप्रचला स्त्यानगृद्धिः चक्षुदर्शनावरणोऽचक्षुदर्शनावरणो ऽवधिदर्शनावरणः केवलदर्शनावरणः।

भाषा टीका—दर्शनावरणीय कर्म नौ प्रकार का होता है—निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचला प्रचला, स्त्यानगृध्दि, चक्षु दर्शनावरण, अचक्षु दर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण।

सदसद्वेद्ये।

८, ८.

सातावेदणिज्जे य असायावेदणिज्जे य।

प्रज्ञापना पद २३, उ० २, सू० २९३

छाया— सातावेदनीयश्चासातावेदनीयश्च।

भाषा टीका—वेदनीय कर्म दो प्रकार का होता है—साता वेदनीय और असाता वेदनीय।

दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडशभेदाः सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयान्यकषायकषायौ हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुंनपुंसकवेदा अनंतानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाः।

८, ९.

मोहणिज्जे णं भंते! कम्मे कतिविधे पण्णत्ते? गोयमा दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—दंसणमोहणिज्जे य चरित्तमोहणिज्जे य। दंसणमोहणिज्जे णं भंते! कम्मे कतिविधे पण्णत्ते? गोयमा!

तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—सम्मत्तवेदणिज्जे, मिच्छत्तवेदणिज्जे, सम्मामिच्छत्तवेयणिज्जे ।

चरित्तमोहणिज्जे णं भंते! कम्मे कतिविधे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—कसायवेदणिज्जे नोकसायवेदणिज्जे ।

कसायवेदणिज्जे णं भंते! कतिविधे पण्णत्ते?

गोयमा! सोलसविधे पण्णत्ते, तं जहा—अणंताणुबंधीकोहे अणंताणुबंधी माणे अ० माया अ० लोभे, अपच्चक्खाणे कोहे एवं माणे माया लोभे, पच्चक्खणावरणे कोहे एवं माणे माया लोभे संजलणकोहे एवं माणे माया लोभे ।

नोकसायवेयणिज्जे णं भंते! कम्मे कतिविधे पण्णत्ते?

गोयमा! णवविधे पण्णत्ते, तं जहा—इत्थीवेयवेयणिज्जे, पुरिसवे० नपुंसगवे० हासे रती अरती भए सोगे दुगुंछा ।

प्रज्ञापना कर्मबन्ध पद २३, उ० २.

छाया— मोहनीयं भगवन्! कर्म कतिविधं प्रज्ञप्तं?

गौतम! द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—दर्शनमोहनीयश्च, चारित्रमोहनीयश्च ।

दर्शनमोहनीयं भगवन्! कर्म कतिविधं प्रज्ञप्तं?

गौतम! त्रिविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—सम्यक्त्ववेदनीयः, मिथ्यात्ववेदनीयः, सम्यङ्मिथ्यात्ववेदनीयः ।

चारित्रमोहनीयं भगवन्! कर्म कतिविधं प्रज्ञप्तं?

गौतम! द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—कषायवेदनीयः नोकषायवेदनीयः।
कषायवेदनीयः भगवन्! कतिविधः प्रज्ञप्तः?

गौतम! षोडशविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—अनन्तानुबन्धीक्रोधः, अनन्तानुबन्धीमानः, अ० माया, अ० लोभः; अप्रत्याख्यानक्रोधः, एवं मानः, माया, लोभः; प्रत्याख्यानावरणक्रोधः, एवं मानः, माया, लोभः; संज्वलनक्रोधः, एवं मानः, माया, लोभः।

नोकषायवेदनीयं भगवन्! कर्म कतिविधं प्रज्ञप्तं?

गौतम! नवविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—स्त्रीवेदवेदनीयः, पुरुषवेदवेदनीयः, नपुंसकवेदवेदनीयः, हास्यः, रतिः, अरतिः, भयः, शोकः, जुगुप्सा।

प्रश्न—भगवन्! मोहनीय कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर—गौतम! वह दो प्रकार का कहा गया है—दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय।

प्रश्न—भगवन्! दर्शन मोहनीय कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर—गौतम! तीन प्रकार का कहा गया है—सम्यक्त्व वेदनीय, मिथ्यात्व वेदनीय, सम्यक्मिथ्यात्ववेदनीय।

प्रश्न—भगवन्! चारित्र मोहनीय कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर—गौतम दो प्रकार का कहा गया है—कषाय वेदनीय और नो कषायवेदनीय।

प्रश्न—भगवन्! कषायवेदनीय कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर—गौतम! वह सोलह प्रकार का कहा गया है:—अनन्तानुबन्धी क्रोध, अनन्तानुबन्धी मान, अ० माया, अ० लोभ; अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ; प्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ और संज्वलन क्रोध मान माया लोभ।

प्रश्न—भगवन्! नो कषाय वेदनीय कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर—गौतम! वह नौ प्रकार का कहा गया है:—स्त्रीवेदनय, पुरुषवेदनय, नपुंसक वेदनय, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, और जुगुप्सा।

नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ।

८, १०.

आउएणं भंते! कम्मे कइविहे पण्णत्ते? गोयमा! चउविहे पण्णत्ते, तं जहा — णेरइयाउए, तिरियआउए, मनुस्साउए, देवाउए।

प्रज्ञापना पद २३, उ० २.

छाया— आयुः भगवन्! कर्म कतिविधं प्रज्ञप्तं? गौतम! चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—नैरयिकायुः, तिर्यगायुः, मनुष्यायुः, देवायुः।

प्रश्न—भगवन्! आयु कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर—गौतम! वह चार प्रकार का कहा गया है:—नरक आयु, तिर्यञ्च आयु, मनुष्य आयु और देव आयु!

गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गनिर्माणबन्धनसंघातसंस्थानसंहननस्पर्शरसगंधवर्णानुपूर्व्यागुरुलघूपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतयः प्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादेययशःकीर्तिमेतराणि तीर्थकरत्वं च ।

८. ११.

णामेणं भंते! कम्मे कतिविहे पण्णत्ते? गोयमा! बायालीसतिविहे पण्णत्ते, तं जहा—गतिनामे १, जातिनामे २, सरीरणामे ३, सरीरोवंगणामे ४, सरीरबंधणणामे ५, सरीरसंघयणनामे ६, संघायणणामे ७, संठाणणामे ८, वण्णणामे ९, गंधणामे १०, रसणामे ११, फासणामे १२, अगुरुलघुणामे १३, उपघायणामे १४, पराघायणामे १५, आणुपुव्वीणामे १६, उस्सासणामे १७, आय-

वरणामे १८, उज्जोयणामे १६, विहायगतिणामे २०, तसणामे २१, थावरणामे २२, सुहुमनामे २३, बादरणामे २४, पज्जत्तणामे २५, अपज्जत्तणामे २६. साहारणसरीरणामे २७, पत्तेयसरीरणामे २८, थिरणामे २६. अथिरणामे ३०, सुभणामे ३१, असुभणामे ३२, सुभगणामे ३३, दुभगणामे ३४, सूसरनामे ३५, दूसरनामे ३६, आदेज्जनामे ३७, अणादेज्जनामे ३८, जसोकित्तिणामे ३६, अजसोकित्तिणामे ४०, णिम्माणणामे ४१, तित्थगरणामे ४२ ।

प्रज्ञापना, उ० २, पद २३, सू० २९३.
समवायांग० स्थान ४२.

छाया— नाम भगवन् ! कर्म कतिविधं प्रज्ञप्तं ? गौतम ! द्विचत्वारिंशद्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा – १ गतिनाम, २ जातिनाम, ३ शरीरनाम, ४ शरीराङ्गोपांगनाम, ५ शरीरबन्धननाम, ६ शरीरसंघातनाम, ७ संहनननाम, ८ संस्थाननाम, ९ वर्णनाम, १० गन्धनाम, ११ रसनाम, १२ स्पर्शनाम, १३ अगुरुलघुनाम, १४ उपघातनाम, १५ परघातनाम, १६ आनुपूर्वीनाम, १७ उच्छ्वासनाम, १८ आतपनाम, १९ उद्योतनाम, २० विहायोगतिनाम, २१ त्रसनाम, २२ स्थावरनाम, २३ सूक्ष्मनाम, २४ बादरनाम, २५ पर्याप्तनाम, २६ अपर्याप्तनाम, २७ साधारणशरीरनाम, २८ प्रत्येकशरीरनाम, २९ स्थिरनाम, ३० अस्थिरनाम, ३१ शुभनाम ३२ अशुभनाम, ३३ सुभगनाम, ३४ दुर्भगनाम, ३५ सुस्वरनाम, ३६ दुःस्वरनाम, ३७ आदेयनाम, ३८ अनादेयनाम, ३९ यशःकीर्तिनाम, ४० अयशःकीर्तिनाम, ४१ निर्माणनाम, ४२ तीर्थकरनाम ।

प्रश्न — भगवन् ! नामकर्म कितने प्रकार का कहा जाता है ?

उत्तर — गौतम ! वह बयालीस प्रकार का कहा गया है :—

१. गतिनाम, २. जातिनाम, ३. शरीरनाम, ४. शरीराङ्गोपाङ्गनाम, ५. शरीर-बन्धननाम, ६ शरीरसंघात नाम, ७ संहनन नाम, ८ संस्थान नाम, ९ वर्णनाम, १० गन्ध नाम, ११ रसनाम, १२ स्पर्शनाम, १३ अगुरुलघुनाम, १४ उपघातनाम, १५ परघातनाम, १६ आनुपूर्वीनाम, १७ उच्छ्वासनाम, १८ आतपनाम, १९ उद्योतनाम, २० विहायोगतिनाम, २१ त्रसनाम, २२ स्थावरनाम, २३ सूक्ष्मनाम, २४ बादरनाम, २५ पर्याप्तनाम, २६ अपर्याप्तनाम, २७ साधारणशरीरनाम, २८ प्रत्येकशरीरनाम, २९ स्थिरनाम, ३० अस्थिरनाम, ३१ शुभनाम, ३२ अशुभनाम, ३३ सुभगनाम, ३४ दुर्भगनाम, ३५ सुस्वरनाम, ३६ दुःस्वरनाम, ३७ आदेयनाम, ३८ अनादेयनाम, ३९ यशःकीर्तिनाम, ४० अयशःकीर्तिनाम, ४१ निर्माणनाम, ४२ तीर्थकरनाम।

संगति — १. जिसके उदय से आत्मा भवान्तर के प्रति सम्मुख होकर गमन को प्राप्त होता है सो **गतिनाम कर्म** है। यह चार प्रकार का होता है—१ नरकगति, २ तिर्यंच-गति ३ देवगति और ४ मनुष्य गति।

२. उक्त गतियों में जो अविरोधी समान धर्मों से आत्मा को एक रूप करता है सो **जातिनाम कर्म** है। उसके पांच भेद हैं — एकेन्द्रियजातिनामकर्म, द्वीन्द्रियजातिनामकर्म, त्रींद्रियजातिनामकर्म, चतुरिन्द्रियजातिनामकर्म, और पंचेंद्रियजातिनामकर्म।

३. जिसके उदय से शरीर की रचना होती है उसे **शरीर नामकर्म** कहते हैं। यह भी पांच प्रकार का है — औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर और कार्मणशरीर।

४. जिसके उदय से शरीर के अंग उपांगों का भेद प्रगट हो उसको **शरीराङ्गोपाङ्ग-नामकर्म** कहते हैं। मस्तक, पीठ, हृदय, बाहु, उदर, जांघ, हाथ, और पांव इनको तो अंग कहते हैं और इनके ललाट नासिका आदि भागों को उपांग कहते हैं। अंगोपांग नाम कर्म तीन प्रकार का है —

१ औदारिकशरीरांगोपांग, २ वैक्रियिक शरीरांगोपांग और ३ आहारकशरीरांगोपांग।

५. जिसके उदय से शरीर नाम कर्म के वश से ग्रहण किये हुए आहारवर्गणा के पुद्गलस्कन्धों के प्रदेशों का मिलना हो, वह **शरीरबन्धन नाम कर्म** है। यह पांच प्रकार का होता है — औदारिक बन्धन नाम कर्म, वैक्रियिक बन्धन नाम कर्म, आहारकबन्धन

नाम कर्म, तैजसबन्धन नाम कर्म, और कार्मणबन्धन नाम कर्म। जिसके उदय से औदारिक बन्ध हो सो औदारिक बन्धन नाम कर्म है। इसी प्रकार शेष बन्धनों का लक्षण भी लगा लेना चाहिये।

६. जिसके उदय से औदारिक आदि शरीरों का छिद्र रहित अन्योन्यप्रदेशानुप्रवेशरूप संगठन (एकता) हो उसे **शरीरसंघातनाम कर्म** कहते हैं। यह भी पांचो शरीरों की अपेक्षा से औदारिकशरीरसंघात नाम कर्म आदि पांच प्रकार का है।

७. जिसके उदय से शरीर के अस्थिपंजर (हाड़) आदि के बन्धनों में विशेषता हो उसे **संहनन नाम कर्म** कहते हैं। वह छह प्रकार का है — १ वज्रवृषभनाराचसंहनन, २ वज्रनाराचसंहनन, ३ नाराचसंहनन, ४ अर्द्धनाराचसंहनन, ५ कीलकसंहनन, और ६ असंप्राप्तासृपाटिका संहनन। नसों में हाड़ों के बन्धने का नाम ऋषभ या वृषभ है, नाराच नाम कीलने का है और संहनन नाम हाड़ों के समूह का है। सो जिस कर्म के उदय से वृषभ (वेष्टन), नाराच (कील) और संहनन (अस्थिपंजर) ये तीनों ही वज्र के समान अभेद्य हों, उसे वज्रवृषभनाराच संहनन कहते हैं।

जिसके उदय से नाराच और संहनन तो वज्रमय हों और वृषभ सामान्य हो, वह वज्रनाराच संहनन नाम कर्म है।

जिसके उदय से हाड़ तथा सन्धियों के कीले तो हों, परन्तु वे वज्रमय न हों और वज्रमय वेष्टन भी न हो, सो नाराच संहनन नाम कर्म है।

जिसके उदय से हाड़ों की संधियां अर्द्धकीलित हों, अर्थात् कीले एक तरफ तो हों दूसरी तरफ न हों, वह अर्द्धनाराच संहनन नाम कर्म है।

जिसके उदय से हाड़ परस्पर कीलित हों, सो कीलक संहनन नाम कर्म है।

जिसके उदय से हाड़ों की संधियां कीलित तो न हों, किन्तु नसों, स्नायुओं और मांस से बन्धी हों वह असंप्राप्तासृपाटिका संहनन नाम कर्म है।

८. जिसके उदय से शरीर की आकृति (आकार) उत्पन्न हो, उसे **संस्थान नाम कर्म** कहते हैं। यह छह प्रकार का है — १ समचतुरस्रसंस्थान, २ न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान, ३ सादिसंस्थान, ४ कुब्जकसंस्थान, ५ वामनसंस्थान, और ६ हुंडक संस्थान।

जिसके उदय से ऊपर, नीचे और मध्य में समान विभाग से शरीर की आकृति

उत्पन्न हो उसे समचतुरस्र संस्थान नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से शरीर का नाभि के नीचे का भाग वटवृक्ष के समान पतला हो और ऊपर का स्थूल व मोटा हो, वह न्यग्रोध परिमंडल संस्थान नाम कर्म है। जिसके उदय से शरीर के नीचे का भाग स्थूल या मोटा हो और ऊपर का पतला हो, उसे स्वातिसंस्थान नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से पीठ के भाग में बहुत से पुद्गलों का समूह हो अर्थात् कुबड़ा शरीर हो, उसे कुब्जक संस्थान नामकर्म कहते हैं। जिसके उदय से शरीर बहुत छोटा हो वह वामन संस्थान नामकर्म है। और जिसके उदय से शरीर के अंग उपांग कहीं के कहीं, छोटे, बड़े वा संख्या में न्यूनाधिक हों—इस तरह विषम बेडौल आकार का शरीर हो, उसे हुंडक संस्थान नामकर्म कहते हैं।

९. जिसके उदय से शरीर में वर्ण (रंग) उत्पन्न हो, उसे **वर्णनामकर्म** कहते हैं। यह पांच प्रकार का है :—१. शुक्लवर्ण नामकर्म, २. कृष्णवर्ण नामकर्म, ३ नीलवर्ण नाम कर्म, ४. रक्तवर्ण नामकर्म, और ५. पीतवर्ण नामकर्म।

१०. जिसके उदय से शरीर में गंध प्रगट हो, सो **गन्धनामकर्म** है। यह दो प्रकार का है। एक सुगन्ध नामकर्म, दूसरा दुर्गन्ध नामकर्म।

११. जिसके उदय से देह में रस (स्वाद) उत्पन्न हो उसे **रसनाम कर्म** कहते हैं। यह पांच प्रकार का है :— १. तिक्तरस, २. कटुरस, ३. कषायरस, ४. अम्लरस और ५. मधुर रसनामकर्म।

१२. जिसके उदय से शरीर मे स्पर्शगुण प्रगट होता है उसे **स्पर्शनामकर्म** कहते हैं। यह आठ प्रकार का है :— १. कर्कशस्पर्श, २. मृदुस्पर्श, ३. गुरुस्पर्श, ४. लघुस्पर्श, ५. स्निग्ध स्पर्श, ६. रूक्षस्पर्श, ७. शीत स्पर्श और ८. उष्णस्पर्शनामकर्म।

१३ जिसके उदय से जीवों का शरीर लोहपिंड के समान भारीपन के कारण नीचे नहीं पड़जाता है, और आक की रुई के समान हलकेपन से उड़ भी नहीं जाता है उसको **अगुरुलघु नामकर्म** कहते हैं। यहां पर शरीर सहित आत्मा के सम्बन्ध मे अगुरुलघु कर्मप्रकृति मानी गई है। द्रव्यों में जो अगुरुलघुत्व है वह उनका स्वभाविक गुण है।

१४. जिसके उदय से शरीर के अवयव ऐसे होते है कि उनसे उसीका बंधन वा घात हो जाता हो उसे **उपघात नामकर्म** कहते हैं।

१५. जिसके उदय से पैने सींग, नख वा डंक इत्यादि पर को घात करने वाले

अवयव होते हैं उसे परघात नामकर्म कहते हैं।

१६. पूर्वायु के उच्छेद होने पर पूर्व के निर्माण नामकर्म की निवृत्ति होने पर विग्रह गति में जिसके उदय से मरण से पूर्व के शरीर के आकार का विनाश नहीं हो उसे आनुपूर्वी नामकर्म कहते हैं। इसके चारों गतियों की अपेक्षा से चार भेद होते हैं। जिस समय मनुष्य अथवा तिर्यंच की आयु पूर्ण हो और आत्मा शरीर से प्रथक् होकर नरक भव के प्रति जाने को संमुख हो, उस समय मार्ग में जिसके उदय से आत्मा के प्रदेश पहले शरीर के आकार के रहते हैं उसको नरकगतिप्रयोग्यानुपूर्वी नाम कर्म कहते हैं। इसी प्रकार देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और मनुष्य गति-प्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म को भी समझना चाहिये। इस कर्मका उदय विग्रहगति में ही होता है। इस कर्म का उदय काल जघन्य एक समय, मध्यम दो समय और उत्कृष्ट तीन समय मात्र है।

१७. जिसके उदय से शरीर में उच्छ्वास उत्पन्न हो सो उच्छ्वास नामकर्म है।

१८. जिसके उदय से शरीर आतापकारी होता है, वह आतपनामकर्म है। इस कर्म का उदय सूर्य के विमान में जो बादर पर्याप्त जीव पृथिवीकायिक मणिस्वरूप होते हैं, उनके ही होता है। अन्य के नहीं होता।

१९. जिसके उदय से उद्योतरूप शरीर होता है सो उद्योतनामकर्म है। इसका उदय चन्द्रमा आदि के विमान के पृथिवीकायिक जीवों के, तथा आगिया (पटबीजना जुगनू) आदि जीवों के होता है।

२०. जिसके उदय से आकाश में गमन हो उसे विहायोगतिनामकर्म कहते हैं। यह दो प्रकार की होती है। एक प्रशस्त विहायोगति दूसरी अप्रशस्तविहायोगति।

२१. जिसके उदय से आत्मा द्वीन्द्रिय आदि शरीर धारण करता है सो त्रसनामकर्म है।

२२. जिसके उदय से जीव पृथिवी, अप, तेज, वायु और वनस्पतिकाय में उत्पन्न होता है सो स्थावरनामकर्म है।

२३. जिसके उदय से ऐसा सूक्ष्म शरीर प्राप्त हो जो अन्य जीवों के उपकार या घात करने में कारण न हो, पृथ्वी जल अग्नि पवन आदि से जिसका घात नहीं हो और

पहाड़ आदि में प्रवेश करते हुए भी नहीं रुके उसे **सूक्ष्मशरीर नामकर्म** कहते हैं।

२४. जिसके उदय से अन्य का रोकने योग्य वा अन्य से रुकने योग्य स्थूल शरीर प्राप्त हो उसको **बादर शरीर नामकर्म** कहते हैं।

२५. जिसके उदय से जीव आहारादि पर्याप्ति पूर्ण करता है उसे **पर्याप्तिनामकर्म** कहते हैं। यह छह प्रकार का है:— १. आहार पर्याप्ति, २. शरीर पर्याप्ति, ३. इन्द्रिय पर्याप्ति, ४. प्राणापान पर्याप्ति, ५. भाषा पर्याप्ति, और ६. मनः पर्याप्ति।

यहां यह प्रश्न हो सकता है कि प्राणापानपर्याप्ति नाम कर्म के उदय का जो उदर से पवन का निकालना वा प्रवेश होना फल है, वही उच्छ्वास कर्म के उदय का भी है। फिर इन दोनों में अंतर क्या हुआ? सो इसका उत्तर यह है कि–इन दोनों में इन्द्रिय अतीन्द्रिय का भेद है। अर्थात् पञ्चेन्द्रिय जीवों के सर्दी-गर्मी के कारण जो श्वास चलती है और जिसका शब्द सुन पड़ता है तथा मुंह के पास हाथ ले जाने से जो स्पर्श से मालूम होती है वह तो उच्छ्वास नाम कर्म के उदय से होती है। और जो समस्त संसारी जीवों के होती है और जो इन्द्रिय गोचर नहीं होती है वह प्राणापान पर्याप्ति के उदय से होती है।

एकेन्द्रिय जीवों के भाषा और मनको छोड़ कर चार; द्वीन्द्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिन्द्रिय और असैनी पंचेन्द्रिय जीवों के भाषा सहित पांच और सैनी पंचेन्द्रियों के छहों पर्याप्ति होती हैं।

२६. जिसके उदय से जीव छहों पर्याप्ति में से एक को भी पूर्ण नहीं कर सके उसे **अपर्याप्तिनामकर्म** कहते हैं।

२७. जिसके उदय से एक शरीर बहुत से जीवों के उपभोगने का कारण हो उसे **साधारण शरीर नामकर्म** कहते हैं। जिन अनंत जीवों के आहार आदि चार पर्याप्ति, जन्म, मरण, श्वासोच्छ्वास, और उपकार एक ही काल मे होते हैं वे साधारण जीव हैं। जिस काल मे जिस आहार आदि पर्याप्ति, जन्म, मरण, श्वासोच्छ्वास को एक जीव ग्रहण करता है उसी काल में उसी पर्याप्ति आदि को दूसरे भी अनन्त जीव ग्रहण करते हैं। ये साधारण जीव वनस्पति काय में होते हैं। अन्य स्थावरों में नहीं होते। इनके साधारण शरीर नामकर्म का उदय रहता है।

२८. जिसके उदय से एक शरीर एक आत्मा के भोगने का कारण हो उसे **प्रत्येकशरीर**

नामकर्म कहते हैं।

२९. जिसके उदय से रस आदि सात धातुएं और उपधातुएं अपने २ स्थान में स्थिरता को प्राप्त हों, दुष्कर उपवास आदि तपश्चरण से भी उपांगों में स्थिरता रहे—रोग नहीं होवे उसे स्थिर नामकर्म कहते हैं। रस, रुधिर, मांस, मेद, हाड़, मज्जा और वीर्य ये सात धातुएं हैं। वात, पित्त, कफ, शिरा स्नायु, चाम और जठराग्नि ये सात उपधातुएं हैं।

३०. जिसके उदय से तनिक उपवास आदि करने से तथा थोड़ी बहुत सर्दी लगने से अंगोपांग कृश होजांय, धातु उपधातुओं की स्थिरता नहीं रहे, रोग हो जावें उसे अस्थिरनामकर्म कहते हैं।

३१. जिसके उदय से शरीर के मस्तक आदि अवयव सुंदर हों—देखने में रमणीक हों, उसे शुभनामकर्म कहते हैं।

३२. जिसके उदय से शरीर के अवयव सुन्दर न हों उसे अशुभनामकर्म कहते हैं।

३३. जिसके उदय से अन्य के प्रीति उत्पन्न हो अर्थात् दूसरों के परिमाण देखते ही प्रीति रूप हो जावें सो सुभगनामकर्म है।

३४. जिसके उदय से रूप आदि गुणों से युक्त होने पर भी दूसरों के अप्रीति उत्पन्न हो, बुरा मालूम हो उसे दुर्भग नाम कर्म कहते हैं।

३५. जिसके उदय से मनोज्ञ स्वर की अर्थात सबको प्यारे लगने वाले शब्द की प्राप्ति हो उसे सुस्वर नाम कर्म कहते हैं।

३६. जिसके उदय से अमनोज्ञ स्वर की प्राप्ति हो, उसे दुःस्वर नाम कर्म कहते हैं।

३७. जिसके उदय से प्रभा सहित शरीर हो उसे आदेय नाम कर्म कहते हैं।

३८. जिसके उदय से शरीर प्रभारहित हो उसे अनादेय नाम कर्म कहते हैं।

३९. जिसके उदय से पुण्यरूप गुणों की ख्याति प्रसिद्धि हो उसे यशः कीर्ति नाम कर्म कहते हैं।

४०. जिसके उदय से पापरूप गुणों की ख्याति हो उसे अयशः कीर्तिनामकर्म कहते हैं।

४१. जिसके उदय से अंग उपांगों की उत्पत्ति हो उसे निर्माणनामकर्म कहते हैं। यह दो प्रकार का है:— १. स्थाननिर्माण, और २. प्रमाण निर्माण। जातिनामक नामकर्म

के उदय से जो नाक कान आदि को योग्य स्थान में निर्माण करता है, सो तो स्थान निर्माण नाम कर्म है और जो उन्हें योग्य लम्बाई-चौड़ाई आदिका प्रमाण लिये रचना करता है, सो प्रमाण निर्माण है।

४२. जिस प्रकृति के उदय से अचिंत्यविभूति संयुक्त तीर्थंकरपने की प्राप्ति हो उसे तीर्थंकरनामकर्म कहते हैं।

इस प्रकार नामकर्म की बयालीस मूल प्रकृतियां हैं। किन्तु इनके अवान्तर भेदों का जोड़ने से नामकर्म की तिरानवे उत्तर प्रकृतियाँ होती हैं।

उच्चैर्नीचैश्च।

८, १२.

गोए णं भंते! कम्मे कइविहे पण्णत्ते? गोयमा! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—उच्चागोए य नीयागोए य।

प्रज्ञापना पद २३, उ० २, सू० २९३.

छाया— गोत्रं भगवन! कर्म कतिविधं प्रज्ञप्तं? गौतम! द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—उच्चगोत्रश्च नीचगोत्रश्च।

प्रश्न — भगवन्! गोत्र कर्म कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर—गौतम! वह दो प्रकार का है—उच्चगोत्र और नीचगोत्र।

दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम्।

८, १३.

अंतराए णं भंते! कम्मे कतिविधे पण्णत्ते? गोयमा! पंचविधे पण्णत्ते, तं जहा—दाणंतराइए, लाभंतराइए, भोगंतराइए, उवभोगंतराइए, वीरियंतराइए।

प्रज्ञापना पद २३ उद्दे० २ सूत्र २९३.

छाया— अन्तरायः भगवन! कर्म कतिविधः प्रज्ञप्तः? गौतम! पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—दानान्तरायिकः, लाभान्तरायिकः, भोगान्तरायिकः, उपभोगान्तरायिकः, वीर्यान्तरायिकः।

प्रश्न—भगवन् ! अंतराय कर्म कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर—गौतम ! वह पांच प्रकार का कहा गया है:— दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ।

इस प्रकार प्रकृतिबंध का वर्णन किया गया । अब स्थितिबंध का वर्णन किया जाता है—

आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः परा स्थितिः ।

८, १४.

उदहीसरिसनामाण, तीसई कोडिकोडीओ ।
उक्कोसिया ठिई होइ, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥ १६ ॥
आवरणिज्जाण दुण्हंपि, वेयणिज्जे तहेव य ।
अन्तराए य कम्मम्मि, ठिई एसा वियाहिया ॥ २० ॥

उत्तराध्ययन अध्ययन ३३.

छाया— उदधिसदृङ्नाम्नां, त्रिंशत्कोटाकोटयः ।
उत्कृष्टा स्थितिर्भवति, अन्तर्मुहूर्तं जघन्यका ॥ १९ ॥
आवरणीद्वयोरपि, वेदनीये तथैव च ।
अन्तराये च कर्मणि, स्थितिरेषा व्याख्याता ॥ २० ॥

भाषा टीका—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागर और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त होती है ।

सप्ततिर्मोहनीयस्य ।

८, १५.

उदहीसरिसनामाण, सत्तरिं कोडिकोडीओ ।
मोहणिज्जस्स उक्कोसा, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

उत्तराध्ययन अ० ३३, गाथा २१.

छाया— उदधिसदृङ्नाम्नां, सप्ततिः कोटाकोटयः।
मोहनीयस्योत्कृष्टा, अन्तर्मुहुर्तं जघन्यका ॥

भाषा टीका — मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहुर्त होती है।

विंशतिर्नामगोत्रयोः।

८, १६.

उदहीसरिसनामाण, वीसई कोडिकोडीओ।
नामगोत्ताणं उक्कोसा, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

उत्तराध्ययन अध्य० ३३ गाथा २३.

छाया— उदधिसदृङ्नाम्नां, विंशतिः कोटाकोटयः।
नामगोत्रयोरुत्कृष्टा, अन्तर्मुहुर्तं जघन्यका ॥

भाषा टीका — नाम और गोत्र कर्म की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोड़ाकोड़ी सागर की है और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहुर्त होती है।

त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः।

८. १७.

तेत्तीस सागरोवमा उक्कोसेण वियाहिया।
ठिइ उ आउकम्मस्स, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥

उत्तराध्ययन अ० ३३, गाथा २२.

छाया— त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा, उत्कर्षेण व्याख्याता।
स्थितिस्त्वायुः कर्मणः, अन्तर्मुहुर्त्तं जघन्यका ॥

भाषा टीका — आयु कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तेंतीस सागर की है और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहुर्त होती है।

अपरा द्वादशमुहुर्ता वेदनीयस्य।

८, १८.

सातावेदणिज्जस्य.......जहन्नेणं बारसमुहुत्ता ।

प्रज्ञापना पद २३, उ० २ सू० २९३.

छाया— सातावेदनीयस्य जघन्येन द्वादशमुहुर्ताः ।

भाषा टीका — साता वेदनीय की जघन्य आयु बारह मुहुर्त होती है।

नामगोत्रयोरष्टौ ।

८, १९.

जसोकित्तिनामाएणं पुच्छा ? गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठमुहुत्ता ।
उच्चगोयस्स पुच्छा ? गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठमुहुत्ता ।

प्रज्ञापना पद २३, उ० २, सूत्र २९४.

छाया— यशःकीर्तिनाम्नः पृच्छा ? गौतम ! जघन्येनाष्टमुहुर्ताः ।
उच्चगोत्रस्य पृच्छा ? गौतम ! जघन्येनाष्टमुहुर्ताः ॥

भाषा टीका — हे गौतम ! यशःकीर्ति नाम कर्म को जघन्य आयु आठ मुहुर्त होती है, और हे गौतम ! उच्च गोत्र कर्म को जघन्य आयु भी आठ मुहुर्त होती है।

शेषाणामन्तर्मुहुर्ताः ।

८, २०.

अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ।

उत्तराध्ययन अ० ३३, गाथा १९ से २२ तक.

छाया— अन्तर्मुहुर्तं जघन्यका ।

भाषा टीका — शेष कर्मों की जघन्य आयु अन्तर्मुहुर्त होती है ।

संगति — इन सभी सूत्रों के शब्द और आगम वाक्य प्रायः एकसे ही हैं ।

इस प्रकार स्थिति बन्ध का वर्णन किया गया ।

अब अनुभागबन्ध का वर्णन किया जाता है —

विपाकोऽनुभवः ।

८,२१.

स यथानाम ।

८, २२.

अणुभागफलविवागा ।

समवायांग, विपाकश्रुत वर्णन ।

सव्वेसिं च कम्माणं ।

प्रज्ञापना पद २३, उ० २.
उत्तराध्ययन अ० ३३, गाथा १७.

छाया — अनुभागफल विपाकाः ।
सर्वेषां च कर्मणाम् ।

भाषा टीका — सब कर्मों का अनुभाग उन २ कर्मों के फल का विपाक है । अर्थात् उन में जो फलदान शक्तिका पड़जाना और उदय में आकर अनुभव होने लगना है सो अनुभव वा अनुभाग है ।

ततश्च निर्जरा ।

८, २३.

उदीरिया वेइया य निज्जिन्ना ।

व्याख्या प्रज्ञप्ति शत० १, उ० १, सू० ११.

छाया — उदीरिताः वेदिताश्च निर्जीर्णाः ।

भाषा टीका — उस अनुभव के पश्चात् उन कर्मों की फल देकर निर्जरा हो जाती है ।

संगति — इन सब सूत्रों के अक्षर आगमवाक्यों से प्रायः मिलते हैं ।

अब प्रदेश बन्ध का वर्णन किया जाता है —

नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः ।

८, २४

सव्वेसिं चेव कम्माणं पएसग्गमणन्तगं ।
गण्ठियसत्ताईयं, अन्तो सिद्धाण आउयं ॥

सव्वजीवाण कम्मं तु, संगहे छद्दिसागयं ।

सव्वेसु वि पएसेसु, सव्वं सव्वेण बद्धगं ॥

उत्तराध्ययन अ० ३३, गाथा १७—१८.

छाया— सर्वेषां चैव, कर्मणां प्रदेशाग्रमनन्तकम् ।
ग्रन्थिकसत्वातीतं, अन्तरं सिद्धानामाख्यातम् ॥ १७ ॥
सर्वजीवानां कर्म तु, संग्रहे षड्दिशागतम् ।
सर्वेरप्यात्मप्रदेशैः, सर्वं सर्वेण बद्धकम् ॥ १८ ॥

भाषा टीका — सब कर्मों के प्रदेश अनन्त हैं। उनकी संख्या अभव्यराशि से अधिक और सिद्धराशि से कम है। *

सब जीवों का एक समय का कर्म संग्रह छहों दिशाओं से होता है और आत्मा के सब प्रदेशों में सब प्रकार से बंध जाता है।

संगति — सारांश यह है कि ज्ञानावरणीय आदि सभी कर्मों की प्रकृतियों के अनन्तानन्त कर्म पुद्गलों के प्रदेश हैं जो आत्मा के समस्त प्रदेशों में सूक्ष्म तथा एकक्षेत्रावगाह रूप से स्थित हैं।

सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम् ।

८, २५.

अतोऽन्यत्पापम् ।

८, २६.

सायावेदणिज्ज……तिरिआउए मणुस्साउए देवाउए सुहणामस्सणं……उच्चागोत्तस्स…असाया वेदणिज्ज इत्यादि ।

प्रज्ञापना सूत्र पद २३, उ० १

एगे पुण्णे एगे पावे ।

स्थानांग स्थान १, सूत्र १६.

छाया— सातावेदनीयः……तिर्यगायुः मनुष्यायुःदेवायुः शुभनाम……

उच्चगोत्रं असातावेदनीयः इत्यादिः एकः पुण्यः एकः पापः ।

भाषा टीका — साता वेदनीय, तिर्यञ्च आयु, मनुष्यायु, देवायु, शुभनाम, उच्च गोत्र और असाता वेदनीय आदि । एक पुण्य रूप हैं और एक पाप रूप हैं ।

संगति — ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय यह चार घातिया कर्म कहलाते हैं । ये चारों ही अशुभ (पाप) रूप होते हैं । शेष चारो अघातिया कर्म कहलाते हैं । और यह पाप तथा पुण्य दोनों रूप हैं ।

इति श्री-जैनमुनि-उपाध्याय-श्रीमदात्माराम-महाराज-संगृहीते
तत्त्वार्थसूत्रजैनाऽऽगमसमन्वये

* अष्टमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ८ ॥ *

---:o:---

नवमोऽध्यायः

---:o:---

आस्रवनिरोधः संवरः ।

९, १.

निरुद्धासवे संवरो ।

उत्तराध्ययन अ० २९, सूत्र ११.

छाया— निरुद्धाश्रवः संवरः ।

भाषा टीका — आस्रव का रुकजाना संवर है ।

स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः ।

९, २.

तपसा निर्जरा च ।

९, ३.

एगे संवरे ।

समई गुत्ती धम्मो अणुपेह परीसहा चरित्तं च ।

सत्तावन्नं भेआ पणतिगभेयाइं संवरणे ॥

स्थानांग वृत्ति स्थान १.

एवं तु संजयस्सावि पावकम्मनिरासवे ।

भवकोडीसंचियं कम्मं, तवसा निज्जरिज्जइ ॥

उत्तराध्ययन अ० ३० गाथा ६.

छाया— एकः संवरः ।

समितिः गुप्तिः धर्मोऽनुप्रेक्षाः परीषहाश्चरित्रश्च ।

सप्तपञ्चाशद्भेदाः पञ्चत्रिकभेदादयः संवरे ॥

एवं तु संयतस्यापि, पापकर्मनिरास्रवे ।

भवकोटिसंचितं कर्म, तपसा निर्जीयते ॥

भाषा टीका — उस संवर के समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परिषहजय और चारित्र यह भेद होते हैं। जिनके क्रमशः पांच, तीन, दश, बारह, बाईस, और पांच भेदों को जोड़ने से संवर के कुल सत्तावन भेद होते हैं।

पापकर्मों के नष्ट होजाने पर व्रती के करोड़ जन्मों के संचित कर्मों को भी तपसे निर्जरा होजाती है।

सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः।

९, ४.

गुत्ती नियत्तणे वुत्ता, असुभत्थेसु सव्वसो।

उत्तराध्ययन अ० २४ गाथा २६.

छाया— गुप्तयो निवर्तने उक्ताः, अशुभार्थेभ्यः सर्वेभ्यः।

भाषा टीका — सभी अशुभ अर्थों (प्रयोजनों) से [मन वचन काय के] रोकने को गुप्ति कहा गया है।

ईर्याभाषैषणाऽऽदाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः।

९, ५.

पंच समिईओ पण्णत्ता, तं जहा—ईरियासमिई भासासमिई एसणासमिई आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिई उच्चारपासवणखेल-सिंघाणजल्लपारिट्ठावणियासमिई।

समवायांग समवाय ५.

छाया — पञ्च समितयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—ईर्यासमितिः भाषासमितिः एषणा-समितिः आदानभाण्डमात्रनिक्षेपणासमितिः उच्चारप्रस्रवणखेलसिं-घाणजल्लपरिष्ठापणासमितिः।

भाषा टीका — समिति पांच होती हैं — ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति, आदानभन्डमात्र निक्षेपणसमिति (आदाननिक्षेपण समिति), उच्चार * प्रस्रवण † खेल ‡ सिंघाण || जलपरिष्ठापणा § समिति (प्रतिष्ठापणा अथवा उत्सर्ग समिति)

---

*. पुरीष, † मूत्र ‡ निष्ठीवन अथवा थूक, || नाकमैल, § गिराना या डालना।

उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः ।

९, ६.

दसविहे समणधम्मे पण्णत्ते, तं जहा—खंती १ मुत्ती २ अज्जवे ३, मद्दवे ४ लाघवे ५ सच्चे ६ संजमे ७ तवे ८ चियाए ९ बंभचेरवासे १० ।

समवायांग समवाय १०

छाया— दशविधः श्रमणधर्मः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-क्षान्तिः मुक्तिः आर्जवः मार्दवः लाघवः सत्यः संयमः तपः त्यागः ब्रह्मचर्यवासः ।

भाषा टीका —श्रमणों का दशप्रकार का धर्म कहा गया है – उत्तम क्षान्ति (क्षमा) मुक्ति (आकिंचन्य), आर्जव, मार्दव, लाघव (शौच), सत्य, संयम, तप, त्याग (दान), और ब्रह्मचर्य से रहना ।

अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्मस्वाख्यातत्त्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः ।

९, ७

अणिच्चाणुप्पेहा १, असरणाणुप्पेहा २, एगत्ताणुप्पेहा ३, संसाराणुप्पेहा ४ ।

स्थानांग स्थान ४, उ० १, सू० २४७

अण्णत्ते [अणुप्पेहा] ५—अन्ने खलु णातिसंजोगा अन्नो अहमंसि । असुइअणुप्पेहा ६ ।

सूत्रकृतांग श्रुतस्कंध २, अ० १, सू० १३.

इमं सरीरं अणिच्चं, असुइं असुइसंभवं ।

असासयावासमिणं, दुक्खकेसाण भायणं ।

उत्तराध्ययन अ० १६, गाथा १२.

अवायाणुप्पेहा ७ ।

स्थानांग स्थान ४, उ० १, सू० २४७.

संवरे [अणुप्पेहा] ८—

जा उ अस्साविणी नावा, न सा पारस्स गामिणी ।
जा निस्साविणी नावा, सा उ पारस्स गामिणी ॥

उत्तराध्ययन अध्ययन २३, गाथा ७१.

णिज्जरे [अणुप्पेहा] ६ ।

स्थानांग स्थान १, सू० १६.

लोगे [अणुप्पेहा] १० ।

स्थानांग स्थान १, सू० ५.

बोहिदुल्लहे [अणुप्पेहा] ११ ।

संबुज्झह किं न बुज्झह, संबोही खलु पेज्जदुल्लहा ।
णो हूवणमंतिराइओ, नो सुलभं पुणरावि जीवियं ॥

सूत्रकृतांग प्रथम श्रुतिस्कन्ध गाथा १.

धम्मे [अणुप्पेहा] १२—

उत्तमधम्मसुई हु दुल्लहा ।

उत्तराध्ययन अ० १० गाथा १८.

छाया— अनित्यानुप्रेक्षा, अशरणानुप्रेक्षा, एकत्वानुप्रेक्षा, संसारानुप्रेक्षा, अन्यत्वानुप्रेक्षा—अन्ये खलु ज्ञातिसंयोगाः अन्योऽहमस्मि ।

अशुच्यनुप्रेक्षा—

इदं शरीरमनित्यं, अशुच्यशुचिसंभवं ।
अशाश्वतावासमिदं, दुःखक्लेशानां भाजनम् ॥

अपायानुप्रेक्षा,

संवरानुप्रेक्षा–

या त्वास्राविणी नौः, न सा पारस्य गामिनी ।
या निरास्राविणी नौः, सा तु पारस्य गामिनी ॥

निर्जरानुप्रेक्षा,

लोकानुप्रेक्षा,

बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा–

संबुध्यध्वं किं न बुद्ध्यध्वं, संबोधी खलु प्रेत्य दुर्लभः ।
नैव उपनमंति रात्र्यः, नैव सुलभं पुनरपि जीवितं ॥

धर्मानुप्रेक्षा—

उत्तमधर्मश्रुतिः खलु दुर्लभा ।

भाषा टीका—१. अनित्य अनुप्रेक्षा [संसार के पदार्थों जोवन काय आदि को भी नाशवान् क्षणभंगुर अनित्य समझना,]

२. अशरण अनुप्रेक्षा- [सिंह के हाथ में पड़े हुए मृग के समान इस संसार में इस जीव को शरण देकर इसकी रक्षा करने वाला कोई नहीं है ।]

३. एकत्व अनुप्रेक्षा — [यह जीव संसार में अकेला ही आया है और इसको अकेला ही जाना है । ऐसा बारंबार चिंतवन करना ।]

४. संसार अनुप्रेक्षा — [यह जीव इस संसार में सदा जन्म लेकर के भ्रमण करता रहता है । यह संसार दुःखरूप है आदि संसार के स्वरूपका बारंबार चिंतवन करना ।]

५. अन्यत्व अनुप्रेक्षा — जाति के सम्बन्ध भिन्न हैं और मैं भिन्न हूँ । [इस प्रकार बारंबार चिन्तवन करना ।]

६. अशुचि भावना — यह शरीर अनित्य, अपवित्र, अपवित्र पदार्थों से उत्पन्न हुआ, रहने का क्षणभंगुर स्थान है और दुःख तथा क्लेशों का भाजन है । [ऐसा बारंबार चिन्तवन करना ।]

७. अपाय भावना अथवा आस्रव भावना [इस लोक में कर्म इस प्रकार दुःख देने वाले हैं और वह इस प्रकार आत्मा में आते हैं आदिका चिंतवन करना ।]

८. संवर भावना — जिस नाव में छिद्र होता है वह नदी के पार नहीं जा सकती। किन्तु जिस नाव में छिद्र नहीं होता वही पार लेजा सकती है। इसी प्रकार जब आत्मा में नवीन कर्मों के आने का मार्ग रुक कर संवर होता है तभी यह उत्तम मार्ग पर चलकर क्रमशः संसार रूपी समुद्र को पार करता है।

९. निर्जरा भावना — [संवर होने के पश्चात् आत्मा में बाकी रहे कर्मों को तप आदि के द्वारा नष्ट करना निर्जरा कहलाता है।]

१०. लोक भावना — [लोक के स्वरूप का विशेष रूप से चिंतवन करना।]

११. बोधि दुर्लभ भावना — समझो, ज्ञान क्यों नहीं प्राप्त करते। मरण के पश्चात् फिर ज्ञान होना दुर्लभ है। इस प्रकार विचार करने के लिये रात्रियां बारंबार नहीं आतीं और यह जन्म भी बारबार नहीं प्राप्त होता। [इस प्रकार ज्ञान की दुर्लभता का विचार करना।]

१२. धर्म भावना — उत्तम धर्म का सुनना बड़ा दुर्लभ है [इस प्रकार धर्म के स्वरूप का बारंबार चिन्तवन करना।]

संगति — इन सूत्रों और आगमवाक्य का शब्द साम्य ध्यान देने योग्य है।

मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः ।

९, ८.

नो विनिहन्नेज्जा ।

उत्तराध्ययन अ० २ प्रथम पाठ.

सम्मं सहमाणस्स...णिज्जरा कज्जति ।

स्थानांग स्थान ५ उ० १ सू० ४०६.

छाया— न विहन्येत्, सम्यक् सहन्तः निर्जरा क्रियते ।

भाषा टीका — पीछे न हटे।

भली प्रकार सहन करने वाले के निर्जरा होती है।

संगति — परीषह सेवन दो प्रयोजन से किया जाता है — एक, मार्ग से च्युत न होने — पीछे न हटने के लिये तथा दूसरा, निर्जरा के लिये। क्यों कि भली प्रकार सहन करने वाले के निर्जरा होती है।

क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारति-स्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाचनाऽलाभरोग-तृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाऽज्ञानाऽदर्शनानि ९, ९.

बावीस परिसहा पएणत्ता, तं जहा—दिगिंछापरीसहे १, पिवासापरीसहे २, सीतपरीसहे ३, उसिणपरीसहे ४, दंसमसगपरीसहे ५, अचेलपरीसहे ६, अरइपरीसहे ७, इत्थीपरीसहे ८, चरिआपरीसहे ९, निसीहियापरीसहे १०, सिज्जापरीसहे ११, अक्कोसपरीसहे १२, वहपरीसहे १३, जायणापरीसहे १४, अलाभपरीसहे १५, रोगपरीसहे १६, तणफासपरीसहे १७, जल्लपरीसहे १८, सक्कारपुरक्कारपरीसहे १९, पएणापरीसहे २०, अएणाण परीसहे २१, दंसणपरीसहे २२।

समवायांग समवाय २२.

छाया— द्वाविंशतिपरीषहाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—१ क्षुधापरीषहः, २ पिपासापरीषहः, ३ शीतपरीषहः, ४ उष्णपरीषहः, ५ दंशमशकपरीषह, ६ अचेलपरीषहः, ७ अरतिपरीषहः, ८ स्त्रीपरीषहः, ९ चर्यापरिषहः, १० निषद्यापरीषहः, ११ शय्यापरीषहः, १२ आक्रोशपरीषहः १३ वधपरीषहः, १४ याचनापरीषहः, १५ अलाभपरीषहः, १६ रोगपरीषहः, १७ तृणस्पर्शपरीषहः, १८ जल्लपरीषहः, १९ सत्कारपुरस्कारपरीषहः, २० प्रज्ञापरीषहः, २१ अज्ञानपरीषहः, २२ दर्शनपरीषहः।

भाषा टीका — परीषह बाईस कही गई हैं — १. क्षुधा परीषह, २ पिपासा परीषह, ३ शीत परीषह, ४ उष्ण परीषह, ५ दंशमशक परीषह, ६ अचेल परीषह, ७ अरति परीषह, ८ स्त्री परीषह, ९ चर्या परीषह, १० निषद्या परीषह ११ शय्या परीषह १२ आक्रोश परीषह, १३ बध परीषह, १४ याचना परीषह, १५ अलाभ परीषह. १६ रोग परीषह, १७ तृणस्पर्श परीषह, १८ जल्ल अथवा मल परीषह १९ सत्कारपुरस्कार परीषह, २० प्रज्ञा परीषह, २१ अज्ञान परीषह, और २२ दर्शन परीषह।

सूक्ष्मसाम्परायछद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश ।

९, १०.

एकादश जिने ।

९. ११.

बादरसाम्पराये सर्वे ।

९. १२

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ।

९. १३

दर्शनमोहांतराययोरदर्शनालाभौ ।

९. १४

चारित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोशयाचनासत्कारपुरस्काराः ।

९, १५

वेदनीये शेषाः ।

९. १६

एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतेः ।

९, १७.

नाणावरणिज्जे णं भंते ! कम्मे कति परीसहा समोयरंति? गोयमा! दो परीसहा समोयरंति, तं जहा—पन्नापरीसहे नाणपरीसहे य। वेयणिज्जे णं भंते! कम्मे कति परीसहा समोयरंति? गोयमा! एक्कारसपरीसहा समोयरंति, तं जहा—

पंचेव आणुपुव्वी चरिया सेज्जा वहे य रोगे य।
तणफास जल्लमेव य, एक्कारस वेदणिज्जंमि ॥ १ ॥

दंसणमोहणिज्जे णं भंते! कम्मे कति परीसहा समोयरंति? गोयमा। एगे दंसणपरीसहे समोयरइ। चरित्तमोहणिज्जे णं भंते! कम्मे कति परीसहा समोयरंति? गोयमा! सत्तपरीसहा समोयरंति, तं जहा—

अरती अचेल इत्थी, निसीहिया जायणा य अक्कोसे।
सक्कारपुरक्कारे चरित्तमोहंमि सत्ते ते ॥ १ ॥

अंतराइए णं भंते! कम्मे कति परीसहा समोयरंति? गोयमा! एगे अलाभपरीसहे समोयरइ। सत्तविहबंधगस्स णं भंते! कति परीसहा पण्णत्ता? गोयमा! बावीसं परीसहा पण्णत्ता, वीसं पुण वेदेइ, जं समयं सीयपरीसहं वेदेति णो तं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ, जं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ णो तं समयं सीयपरीसहं वेदेइ, जं समयं चरियापरीसहं वेदेति णो तं समयं निसीहियापरीसहं वेदेति जं समयं निसीहियापरीसहं वेदेइ णो तं समयं चरियापरीसह वेदेइ।

अट्ठविहबंधगस्स णं भंते! कतिपरीसहा पण्णत्ता? गोयमा!

बावीसं परीसहा पण्णत्ता, तं जहा-छुहापरीसहे पिवासापरीसहे सीयप० दंसप० मसगप० जाव अलाभप० एवं अट्ठविहबंधगस्स वि सत्तविहबंधगस्स वि ।

छव्विहबंधगस्स णं भंते ! सरागछउमत्थस्स कति परीसहा पण्णत्ता ? गोयमा ! चोद्दस परीसहा पण्णत्ता ।बारस पुण वेदेइ। जं समयं सीयपरीसहं वेदेइ णो तं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ, जं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ नो तं समयं सीयपरीसहं वेदेइ । जं समयं चरियापरीसहं वेदेइ णो तं समयं सेज्जापरीसहं वेदेइ, जं समयं सेज्जापरीसहं वेदेति णो तं समयं चरियापरीसहं वेदेइ।

एक्कविहबंधगस्स णं भंते ! वीयरागछउमत्थस्स कति परीसहा पण्णत्ता ? गोयमा ! एवं चेव जहेव छव्विहबंधगस्स णं। एगविह बंधगस्स णं भंते! सजोगिभवत्थकेवलिस्स कति परीसहा पण्णत्ता ? गोयमा ! एक्कारस परीसहा पण्णत्ता, नव पुण वेदेइ, सेसं जहा छव्विहबंधगस्स ।

अबंधगस्स णं भंते! अजोगिभवत्थकेवलिस्स कति परीसहा पण्णत्ता ? गोयमा ! एकारस्स परीसहा पण्णत्ता, नव पुण वेदेइ । जं समयं सीयपरीसहं वेदेति नो तं समयं उसिणपरीसहं वेदेइ, जं समयं उसिणपरीसहं वेदेति नो तं समयं सीयपरीसहं वेदेइ । जं समयं चरियापरीसहं वेदेइ नो तं समयं सेज्जापरीसहं वेदेति, जं समयं सेज्जापरीसहं वेदेइ नो तं समयं चरियापरीसहं वेदेइ ।

व्याख्या प्रज्ञप्ति श० ८, उ० ८, सू० ३४३.

छाया— ज्ञानावरणीये भगवन्! कर्मणि कति परीषहाः समवतरन्ति? गौतम! द्वौ परीषहौ समवतरन्तः, तद्यथा—प्रज्ञापरीषहः ज्ञान-परीषहश्च।

वेदनीये भगवन्! कर्मणि कति परीषहाः समवतरन्ति? गौतम! एकादश परीषहाः समवतरन्ति, तद्यथा—

पञ्चैव आनुपूर्वी चर्या शय्या वधश्च रोगश्च।
तृणस्पर्शः जल्लमेव च एकादश वेदनीये॥

दर्शनमोहनीये भगवन्! कर्मणि कति परिषहाः समवतरंति? गौतम! एकः दर्शनपरीषहः समवतरति।

चारित्रमोहनीये भगवन्! कर्मणि कति परीषहाः समवतरंति? गौतम! सप्त परीषहाः समवतरंति, तद्यथा—

अरतिः अचेलः स्त्री निषद्या याचना च आक्रोशः।
सत्कारपुरस्कारः चारित्रमोहे सप्तैते॥

अन्तराये भगवन्! कर्मणि कति परीषहाः समवतरंति? गौतम! एकोऽलाभपरीषहः समवतरति।

सप्तविधबंधकस्य भगवन्! कति परीषहाः प्रज्ञप्ताः? गौतम! द्वाविंशतिपरीसहाः प्रज्ञप्ताः, विंशतिं पुनः वेदयते। यस्मिन् समये शीतपरीषहं वेदयते न तस्मिन् समये उष्णपरीषहं वेदयते, यस्मिन् समये उष्णपरीषहं वेदयते न तस्मिन् समये शीतपरीषहं वेदयते। यस्मिन् समये चर्यापरीषहं वेदयते न तस्मिन् समये निषद्यापरीषहं वेदयते, यस्मिन् समये निषद्यापरीषहं वेदयते न तस्मिन् समये चर्यापरीषहं वेदयते।

अष्टविधबंधकस्य भगवन्! कतिपरीषहाः प्रज्ञप्ताः? गौतम! द्वाविंशतयः परीषहाः प्रज्ञप्ताः। तद्यथा—क्षुत्परीषहः, पिपासापरीषहः शीतपरीषहः, दंशपरीषहः, मशकपरीषहः, या-

वत् अलाभपरीषहः, एवं अष्टविधबंधकस्यापि सप्तविधबन्धक-स्यापि ।

षड्विधबन्धकस्य भगवन्! सरागछद्मस्थस्य कति परीषहाः प्रज्ञप्ताः? गौतम! चतुर्दश परीषहाः प्रज्ञप्ताः। द्वादशं पुनः वेदयते। यस्मिन् समये शीतपरीषहं वेदयते न तस्मिन् समये उष्णपरीषहं वेदयते, यस्मिन् समये उष्णपरीषहं वेदयते न तस्मिन् समये शीतपरीषहं वेदयते। यस्मिन् समये चर्यापरीषहं वेदयते न तस्मिन् समये शय्यापरीषहं वेदयते, यस्मिन् समये शय्या-परीषहं वेदयते न तस्मिन् समये चर्यापरीषहं वेदयते।

एकविधबन्धकस्य भगवन्! वीतरागछद्मस्थस्य कति परीषहाः प्रज्ञप्ताः? गौतम! एवं चैव यथैव षड्विधबन्धकस्य। एकविध-बन्धकस्य भगवन्! सयोगिभवस्थकेवलिनः कति परीषहाः प्रज्ञप्ताः? गौतम! एकादशपरीषहाः प्रज्ञप्ताः नवं पुनः वेदयते। शेषं यथा षड्विधबन्धकस्य।

अबन्धकस्य भगवन्! अयोगिभवस्थकेवलिनः कति परीषहाः प्रज्ञप्ताः? गौतम! एकादश परीषहाः प्रज्ञप्ताः, नवं पुनः वेदयते। यस्मिन् समये शीतपरीषहं वेदयते न तस्मिन् समये उष्णपरी-षहं वेदयते, यस्मिन् समये उष्णपरीसहं वेदयते न तस्मिन् समये शीतपरीषहं वेदयते। यस्मिन् समये चर्यापरीषहं वेदयते न तस्मिन् समये शय्यापरीषहं वेदयते, यस्मिन् समये शय्यापरीषहं वेदयते न तस्मिन् समये चर्यापरीषहं वेदयते।

प्रश्न — भगवन्! कौन २ सी परीषह ज्ञानावर्णीय कर्म में आती हैं?

उत्तर — गौतम! दो परीषह आती हैं — प्रज्ञापरीषह और ज्ञानपरीषह।

प्रश्न — भगवन्! वेदनीय कर्म में कौन सी परीषह ली जाती हैं।

उत्तर — हे गौतम! ग्यारह परीषह ली जाती हैं — पंच आनुपूर्वी (क्षुधा, तृषा,

शीत, उष्ण, दंशमशक), चर्या, शय्या, बध, रोग, तृणस्पर्श और मल (जल्ल), ये ग्यारह वेदनीय में गिनी जाती हैं।

प्रश्न — भगवन् ! दर्शनमोहनीय कर्म में कितनी परीषह होती हैं ?

उत्तर — गौतम ! एक दर्शनपरीषह ही गिनी जाती है।

प्रश्न — भगवन् ! चारित्रमोहनीय कर्म में कितनी परीषह होती हैं ?

उत्तर — गौतम ! सात परीषह होती हैं — अरति, अचेल, स्त्री, निषद्या, याचना, आक्रोश और सत्कारपुरस्कार, यह सात चारित्रमोहनीय में होती हैं।

प्रश्न — भगवन् ! अन्तराय कर्म में कितनी परीषह होती हैं ?

उत्तर — गौतम ! केवल एक अलाभ परीषह होती है।

प्रश्न — भगवन् ! सात प्रकार के बन्धवालों के कितनी परीषह होती हैं ?

उत्तर — गौतम ! बाईसों परीषह होती हैं। किन्तु एक काल में अनुभव बीस परीषह का होता है। जिस समय में शीतपरीषह होती है उस समय उष्णपरीषह नहीं होती। जिस समय उष्णपरीषह होती है उस समय शीतपरीषह नहीं होती। जिस समय चर्यापरीषह की वेदना होती है उस समय निषद्या परीषह नहीं होती। जिस समय निषद्या परीषह होती है उस समय चर्या परीषह नहीं होती।

प्रश्न — भगवन् ! आठ प्रकार के बन्ध वालों के कितनी परीषह होती हैं ?

उत्तर — गौतम ! बाईसों परीषह ही होती हैं — क्षुधापरीषह, तृषा परीषह, शीत परीषह, दंशपरीषह, और मशकपरीषह से लगा कर अलाभ परीषह तक। इसी प्रकार आठ प्रकार के बंधवालों के तथा सात प्रकार के बन्धवालों के होती हैं।

प्रश्न — भगवन् ! छह प्रकार के बंधवाले सरागछद्मस्थ के कितनी परीषह कही गई हैं।?

उत्तर — गौतम ! चौदह परीषह कही गई हैं और बारह परीषहों का एक साथ अनुभव होता है। जिस समय शीत परीषह होती है उस समय उष्णपरीषह नहीं होती, जिस समय उष्णपरीषह होती है उस समय शीतपरीषह नहीं होती। जिस समय चर्या परीषह होती है उस समय शय्यापरीषह नहीं होती, जिस समय शय्या परीषह होती है उस समय चर्या परीषह नहीं होती।

प्रश्न — भगवन् ! एक प्रकार के बंधवाले वीतरागछद्मस्थ के कितनी परीषह कही गई हैं ?

उत्तर — गौतम ! उतनी ही होती हैं जितनी छह प्रकार के बन्धवाले के होती हैं।

प्रश्न — भगवन् ! एक प्रकार के बन्धवाले सयोगि भवस्थ केवली के कितनी परीषह कही गई हैं ?

उत्तर — गौतम ! ग्यारह परीषह कही गई हैं। किन्तु वेदना एक साथ केवल नौ को ही होती है। शेष छै प्रकार के बन्ध वाले के समान होती हैं।

प्रश्न — भगवन् ! बिना बन्धवाले अयोगि भवस्थ केवली के कितनी परीषह होती हैं ?

उत्तर — गौतम ! ग्यारह परीषह कही गई हैं। किन्तु अनुभव नौ का ही होता है। जिस समय शीतपरीषह होती है उसी समय उष्णपरीषह नहीं होती। जिस समय उष्णपरीषह होता है उस समय शीतपरीषह नहीं होती। जिस समय चर्यापरीषह होती है उस समय शय्या परीषह नहीं होती। जिस समय शय्या परीषह होती है उसी समय चर्यापरीषह नहीं होती।

सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्परायययथाख्यातमिति चारित्रम्।

९, १८.

सामाइयत्थ पढमं, छेदोवट्ठावणं भवे बीयं।
परिहारविसुद्धीयं, सुहुम तह संपरायं च ॥ ३२ ॥
अकसायमहक्खायं, छउमत्थस्स जिणस्स वा।
एवं चयरित्तकरं चारित्तं होइ आहियं ॥ ३३ ॥

उत्तराध्ययन अ० २८, गाथा ३२-३३

छाया— सामायिकमत्र प्रथमं, छेदोपस्थानं भवेद्द्वितीयम्।
परिहारविशुद्धिकं, सूक्ष्मं तथा सम्परायं च ॥ ३२ ॥
अकषायं यथाख्यातं, छद्मस्थस्य जिनस्य वा।
एतच्चयरिक्तकरं, चारित्रं भवत्याख्यातम् ॥ ३३ ॥

भाषा टीका — सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय, और बिनाकषाय वाला यथाख्यात यह छद्मस्थ अथवा जिनके चारित्र कहे गये हैं। यह कर्मों के समूह को नष्ट करने वाले हैं।

अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः।

९, १९.

बाहिरए तवे छव्विहे पण्णत्ते तं जहा—अणसण ऊणोयरिया भिक्खायरिया य रसपरिच्चाओ। कायकिलेसो पडिसंलीणया वज्झो (तवो होई)॥

व्याख्याप्रज्ञप्ति शत० २५, उ० ७, सू० ८०२.

छाया— बाह्यतपः षड्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—अनशनः अवमौदर्यः भिक्षाचर्या (वृत्तिपरिसंख्यानं) च रसपरित्यागः। कायक्लेशः प्रतिसंलीनता (विविक्तशय्यासनं) बाह्यं (तपः भवति)।

भाषा टीका — बाह्य तप छै प्रकार के कहे गये हैं:— अनशन, अवमौदर्य, भिक्षा, चर्या (वृत्तिपरिसंख्यान), रसपरित्याग, कायक्लेश और प्रतिसंलीनता (अथवा विविक्त शय्याशन)।

प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम्।

९, २०.

अब्भिंतरए तवे छव्विहे पण्णत्ते तंजहा—पायच्छित्तं विणओ वेयावच्चं तहेव सज्झाओ, झाणं विउसग्गा।

व्याख्याप्रज्ञप्ति श० २५, उ० ७, सू० ८०२.

छाया— आभ्यन्तरतपः षड्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—प्रायश्चित्तं, विनयः, वैयावृत्यं, स्वाध्यायः, ध्यानं, व्युत्सर्गः।

भाषा टीका — आभ्यन्तर तप भी छै प्रकार के कहे गये हैं:— प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग।

नवचतुर्दशपंचद्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात्।

९, २१.

भाषा टीका — उन आभ्यन्तर तपों के ध्यान से पूर्व २ क्रमशः नौ, चार, दश, पांच और दो भेद हैं।

आलोचनाप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्ग-तपश्छेदपरिहारोपस्थापनाः।

९, २२.

णवविधे पायच्छित्ते पराणत्ते, तं जहा—आलोअणारिहे पडि-कम्मणारिहे तदुभयारिहे विवेगारिहे विउसग्गारिहे तवारिहे छेदा-रिहे मूलारिहे अणवट्ठप्पारिहे।

स्थानांग स्थान ९, सू० ६८८.

छाया— नवविधः प्रायश्चित्तः, प्रज्ञप्तः, तद्यथा—आलोचनार्हं, प्रतिक्रमणार्हं, तदुभयार्हं, विवेकार्हं, व्युत्सर्गार्हं, तपसर्हं, छेदार्हं, मूलार्हं, (परिहारार्हं) अनवस्थापनार्हं।

भाषा टीका — प्रायश्चित नौ प्रकार का कहा गया है:— आलोचनायोग्य, प्रतिक्रमण योग्य, तदुभय योग्य, विवेक योग्य, व्युत्सर्ग योग्य, तप योग्य, छेद योग्य, मूल योग्य, (परिहार योग्य) और अनवस्था अथवा उपस्थापना योग्य।

संगति — यहां तक आगम और सूत्र के शब्द प्रायः मिलते हैं।

ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः।

९, २३.

विणए सत्तविहे पराणत्ते, तं जहा—णाणविणए दंसणविणए

चरित्तविणए मणविणए वइविणए कायविणए लोगोवयारविणए।

व्याख्याप्रज्ञप्ति श० २५, उ० ७, सू० ८०२.

छाया— विनयः सप्तविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—ज्ञानविनयः दर्शनविनयः चारित्रविनयः मनोविनयः वचःविनयः कायविनयः लोकोपचारविनयः।

भाषा टीका — विनय सात प्रकार का कहा गया है:—
ज्ञान विनय, दर्शन विनय, चरित्र विनय, मनो विनय, वचन विनय, काय विनय और लोकोपचार विनय।

संगति — सूत्र में मन, वचन और काय की विनय को न लेकर संक्षेप से केवल चार भेद माने हैं। किन्तु आगम ने विस्तार की दृष्टि से सात भेद माने हैं।

आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्षग्लानगणकुलसंघसाधुमनोज्ञानाम् ।

९, २४.

वेयावच्चे दसविहे पण्णत्ते. तं जहा—आयरियवेआवच्चे उवज्झायवेआवच्चे सेहवेआवच्चे गिलाणवेआवच्चे तपस्सिवेआवच्चे थेरवेआवच्चे साहम्मिअवेआवच्चे कुलवेआवच्चे गणवेआवच्चे संघवेआवच्चे।

व्याख्याप्रज्ञप्ति श० २५, उ० ७, सू० ८०२.

छाया— वैयावृत्यः दशविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—आचार्यवैयावृत्यः, उपाध्यायवैयावृत्यः, शैक्षवैयावृत्यः, ग्लाणवैयावृत्यः, तपस्विवैयावृत्यः, स्थविरवैयावृत्यः, साधर्मिवैयावृत्यः, कुलवैयावृत्यः, गणवैयावृत्यः, संघवैयावृत्यः।

भाषा टीका—वैयावृत्य दश प्रकार का कहा गया है:—आचार्य वैयावृत्य, उपाध्याय का वैयावृत्य, शैक्ष का वैयावृत्य, ग्लान का वैयावृत्य, तपस्वियों का वैयावृत्य, स्थविर

(साधुओं) का वैयावृत्य, साधर्मियां (मनोज्ञां) का वैयावृत्य, कुल का वैयावृत्य, गण का वैयावृत्य, और संघ का वैयावृत्य ।

संगति — यहां संख्या समान होने हुये भी दो नामों में अन्तर हैं । सूत्र के साधु और मनोज्ञ के स्थान पर आगम में क्रमश: स्थविर और साधर्मि कहा गया है । जिसमें कोई विशेष भेद नहीं है ।

वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः ।

९, २५.

सज्झाए पंचविहे पएणत्ते, तं जहा—वायणा पडिपुच्छणा, परिअट्टणा अणुप्पेहा धम्मकहा ।

व्याख्याप्रज्ञप्ति श० २५, उ० ७, सू० ८०२.

छाया— स्वध्याय: पञ्चविध: प्रज्ञप्त:, तद्यथा—वाचना, प्रतिपृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा, धर्मकथा ।

भाषा टीका — स्वाध्याय पांच प्रकार का कहा गया है:— वाचना, परिपृच्छना, परिवर्तना (आम्नाय), अनुप्रेक्षा और धर्मकथा (धर्मोपदेश) ।

बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ।

९, २६

विउसग्गे दुविहे पएणत्ते, तं जहा—दव्वविउसग्गे य भावविउसग्गे य ।

व्याख्याप्रज्ञप्ति श० २५, उ० ७, सू० ८०२.

छाया— व्युत्सर्ग: द्विविध: प्रज्ञप्त:, तद्यथा—द्रव्यविसर्गश्च भावविसर्गश्च ।

भाषा टीका — व्युत्सर्ग दो प्रकार का कहा गया है:—द्रव्य का विसर्ग (त्याग) और भाव का विसर्ग ।

संगति — बाह्य परिग्रह और द्रव्य परिग्रह प्रथक् २ नहीं हैं । इसी प्रकार भाव परिग्रह अथवा आभ्यन्तर परिग्रह भी प्रथक् २ नहीं हैं।

उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यान-मान्तर्मुहूर्त्तात् ।

९. २७

केवतियं कालं अवट्ठियपरिणामे होज्जा? गोयमा! जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अन्तमुहुत्तं ।

व्याख्याप्रज्ञप्ति श० २५, उ० ६, सू० ७७०.

अंतोमुहुत्तमित्तं चित्तावत्थाणमेगवत्थुम्मि ।
छउमत्थाणं झाणं जोगनिरोहो जिणाणं तु ।

स्थानांग वृत्ति० स्थान ४, उ० १, सू० २४७.

छाया— कियत्कालं अवस्थितपरिणामः भवति? गौतम! जघन्येन एकं समयं उत्कर्षेण अन्तर्मुहुर्तं ।

अन्तर्मुहुर्तमात्रं चित्तावस्थानमेकत्र वस्तुनि ।
छद्मस्थानां ध्यानं योगनिरोधः जिनानान्तु ॥ १ ॥

प्रश्न — निश्चत (ध्यान के) परिणाम कितनी देर तक रहते हैं ?

उत्तर — कम से कम एक समय तक और अधिक से अधिक अन्तर्मुहुर्त तक।

छद्मस्थ और जिन के मन वचन और काय की क्रियाओं का रोकना ही ध्यान होता है ।

संगति — यह बात स्मरण रखने की है कि क्षपक श्रेणि उत्तम संहनन वाले ही बांधते हैं ।

आर्त्तरौद्रधर्मशुक्लानि ।

९. २८.

चत्तारि झाणा पण्णत्ता, तं जहा—अट्टे झाणे, रोद्दे झाणे, धम्मे झाणे, सुक्के झाणे ।

व्याख्याप्रज्ञप्ति श० २५, उ० ७, सू० ८०३.

छाया— चत्वारि ध्यानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-आर्तं ध्यानं, रौद्रं ध्यानं, धर्मं ध्यानं, शुक्लं ध्यानम् ।

भाषा टीका — ध्यान चार प्रकार के कहे गये हैं:— आर्त ध्यान, रौद्र ध्यान, धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान ।

परे मोक्षहेतुः ।

९, २९.

धम्मसुक्काइं झाणाइं, झाणं तं तु बुहा वए ।

उत्तराध्ययन अ० ३० गाथा ३५.

छाया— धर्मशुक्ले ध्याने, ध्यानं तत् तु बुद्धा वदेयुः ।

भाषा टीका — धर्म और शुक्ल ध्यान को बुद्ध कहते हैं ।

संगति — बुद्धिमानों ने मोक्ष का कारण होने से धर्म और शुक्ल को ही वास्तविक ध्यान माना है ।

आर्त्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः ।

९, ३०.

अट्टे झाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—अमणुन्नसंपयोग-संपउत्ते तस्स विप्पयोग सति समन्नागए यावि भवइ ।

व्याख्याप्रज्ञप्ति श० २५, उ० ७, सू० ८०३.

छाया— आर्त्तं ध्यानं चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, अमनोज्ञसम्प्रयोगसम्प्रयुक्तो तस्य विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वागतश्चापि भवति ।

भाषा टीका — आर्त ध्यान चार प्रकार का कहा गया है । [उनमें से प्रथम अनिष्ट संयोग है] ।

अनिष्ट अथवा अप्रिय व्यक्ति से संयोग होने पर उसके वियोग के लिये बारबार चिन्ता करना [अनिष्ट संयोग आर्तध्यान है] ।

विपरीतं मनोज्ञस्य ।

९, ३१.

मणुन्नसंपओगसंपउत्ते तस्स अविप्पओग सति समण्णागते यावि भवति ।

व्याख्याप्रज्ञप्ति श० २५, उ० ७, सू० ८०३.

छाया— मनोज्ञसम्प्रयोगसम्प्रयुक्तो तस्य अविप्रयोगाय स्मृतिसमन्वागतश्चापि भवति ।

इष्ट व्यक्ति के संयोग होने पर उसका वियोग न होने की चिन्ता करना।

अथवा इष्ट व्यक्ति का वियोग होने पर उसके मिलने के लिये बारबार चिन्ता करना [इष्ट वियोग नामक आर्तध्यान है ।]

वेदनायाश्च ।

९, ३२.

आयंकसंपओगसंपउत्ते तस्स विप्पओग सति समण्णागए यावि भवति ।

व्याख्याप्रज्ञप्ति श० २५, उ० ७, सू० ८०३.

छाया— आतङ्कसम्प्रयोगसम्प्रयुक्तो तस्य विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वागतश्चापि भवति।

भाषा टीका — किसी दुःख अथवा कष्ट के पड़ने पर उसके दूर होने के लिये बारबार चिन्ता करना [वेदना नामक आर्त ध्यान है]।

निदानञ्च ।

९, ३३

परिजुसितकामभोगसंपओगसंपउत्ते तस्य अविप्पओग सति समण्णागते यावि भवइ ।

व्याख्याप्रज्ञप्ति श० २५, उ० ७, सू० ८०३.

छाया— परिजूषितकामभोगसम्प्रयोगसम्प्रयुक्तो तस्य अविप्रयोगाय स्मृति-समन्वागतश्चापि भवति।

भाषा टीका — अनुभव किये अथवा भोगे हुए काम भोगों के वियोग न होने के लिये वांछा करना और उसका विचार करते रहना [निदान नामक आर्तध्यान कहलाता है]

संगति — इन सब सुत्रों के शब्द आगम वाक्यों से प्रायः मिलते हैं।

तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम्।

९, ३४.

अट्टरुद्दाणि वज्जित्ता, झाएज्जा सुसमाहिये।

उत्तराध्ययन अध्ययन ३०, गाथा ३५.

छाया— आर्त्तरौद्राणि वर्जयित्वा, ध्यायेत् सुसमाहितः।

भाषा टीका—आर्त और रौद्र को छोड़कर उत्तम समाधि में लगा हुआ ध्यान करे।

संगति -- उत्तम समाधि की प्राप्ति सातवें गुणस्थान से आरम्भ होती है। अतः यह स्वयं ही सिद्ध हो गया कि आर्त ध्यान सातवें से पहिले २ अर्थात् प्रथम गुणस्थान से लगाकर छटे प्रमत्तसंयत गुणस्थान तक होता है।

हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरत-देशविरतयोः।

९, ३५.

रौद्दज्झाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—हिंसाणुबंधी मोसा-णुबंधी तेयाणुबन्धी, सारक्खणाणुबंधी।

व्याख्याप्रज्ञप्ति श० २५ उ० ७, सू० ८०३.

झाणाणं च दुयं तहा जे भिक्खू वज्जई निच्चं।

उत्तराध्ययन अ० ३१, गाथा ६.

छाया— रौद्रध्यानं चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—हिंसानुबन्धी, मृषानुबन्धी, स्तेयानुबन्धी, संरक्षणानुबन्धी।

ध्यानानां च द्विकं तथा, यो भिक्षुर्वर्जयति नित्यं ।

भाषा टीका — रौद्र ध्यान चार प्रकार का कहा गया है — १ हिंसानुबन्धी अथवा हिंसानन्दी-[हिंसा करने का बार बार चितन्तवन करना और उसमें आनन्द मानना,]

२ मृषानुबन्धी अथवा मृषानन्दी-[झूंठ बोलने का चिन्तवन करना और उसमें आनन्द मानना ।]

३ स्तेयानुबन्धी अथवा चौर्यानन्दी-[चोरी करने का चिन्तवन करना और उसमें आनन्द मानना ।]

४ संरक्षणानुबन्धी अथवा परिग्रहानन्दी-[विषयों की सामग्री का संरक्षण करने का चिन्तवन करना और उसमें आनन्द मानना ।]

इन ध्यानों का भिक्षु सदा त्यागन करता है ।

संगति — इससे प्रगट है कि यह ध्यान भिक्षु अथवा छटे गुण स्थान वाले के नहीं होता । अत: यह स्वयं सिद्ध होगया कि यह प्रथम गुण स्थान से लगाकर पांचवें देशविरत गुणस्थान तक होता है ।

आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यम् ।

९, ३६.

धम्मे झाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा-आणाविजए, अवायविजए, विवागविजए, संठाणविजए ।

व्याख्याप्रज्ञप्ति श० २५, उ० ७, सू० ८०३

छाया— धर्मध्यानं चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-आज्ञाविचयः, अपायविचयः, विपाकविचयः संस्थानविचयः ।

भाषा टीका — धर्म ध्यान चार प्रकार का कहा गया है— आज्ञाविचय, अपाय विचय, विपाकविचय, और संस्थानविचय ।

संगति — उपदेशदाता के अभाव से और अपनी मंद बुद्धि से सूक्ष्म पदार्थों का स्वरूप अच्छी तरह समझ में न आवे तो उस समय सर्वज्ञ की आज्ञा को प्रमाण मान कर गहन पदार्थ का अर्थ अवधारण करना आज्ञाविचय धर्म ध्यान है ।

मिथ्यादृष्टियों के कहे हुये उन्मार्ग से ये प्राणी कैसे फिरेंगें ? ये कब सन्मार्ग में आवेंगे ? इस प्रकार सन्मार्ग के अपाय का अथवा आस्रव के स्वरूप का चिन्तवन करना अपाय विचय धर्मध्यान है ।

ज्ञानावरण आदि कर्मों का द्रव्य क्षेत्र काल भाव के अनुसार जो विपाक अर्थात फल होता है उसका चिन्तवन करना विपाक विचय धर्मध्यान है। और

लोक के संस्थानों का चिन्तवन करना सो संस्थान विचय धर्मध्यान है ।

यह धर्मध्यान चौथे असंयत, पांचवे देशसंयत, छटे प्रमत संयत और सातवें अप्रमत्त संयत इन चार गुणस्थानों में होता है।

शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ।

९, ३७.

सुहमसंपरायसरागचरित्तारिया य बायरसपरायसरागचत्तारिया य,······उवसतकसायवीयरायचरित्तारिया य खीणकसाय वीयरायचरित्तारिया च ।

प्रज्ञापना सूत्र पद १, चारित्रार्यविषय.

छाया— सूक्ष्मसाम्परायसरागचरित्रार्याश्च बादरसाम्परायसरागचरित्रार्याश्च । उपशान्तकषायवीतरागचरित्रार्याश्च क्षीणकषायवीतरागचरित्रार्याश्च ।

भाषा टीका—सूक्ष्मसाम्पराय सराग चारित्र वाले आर्य, बादरसाम्परायसरागचारित्र वाले आर्य, उपशान्त कषाय वीतराग चारित्र वाले आर्य और क्षीणकषाय वीतराग चारित्र वाले आर्य [इनके पृथक्त्ववितर्क और एकत्ववितर्क नामके दो शुक्ल ध्यान होते हैं।]

परे केवलिन ।

९, ३८

सजोगिकेवलिखीणकषायवीयरायचरित्तारिया य अजोगिकेवलिखीणकसायवीयरायचरित्तारिया य ।

प्रज्ञापनासूत्र पद १ चारित्रार्यविषय.

छाया— सयोगिकेवलिक्षीणकषायवीतरागचरित्रार्याश्च अयोगिकेवलिक्षीणकषायवीतरागचरित्रार्याश्च ।

भाषा टीका —सयोगि केवलि क्षीणकषायवीतरागचारित्र वाले आर्यों के और अयोगिकेवलि क्षीणकषायवीतरागचारित्रवाले आर्यों के [सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरत क्रियानिवर्ति नाम के बाद के दो शुक्लध्यान होते हैं ।]

पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतक्रियानिवर्तीनि ।

९, ३९

सुक्के झाणे चउव्विहे पराणत्ते तं जहा–पुहुत्तवितक्के सवियारी १, एगत्तवितक्के अवियारी २, सुहुमकिरिये अणियट्टी ३, समुच्छिन्नकिरिए अप्पडिवाती ।

व्याख्याप्रज्ञप्ति श० २५, उ० ७, सू० ८०३

छाया— शुक्लध्यानं चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–पृथक्त्ववितर्कः सविचारि १, एकत्ववितर्कः अविचारि २, सूक्ष्मक्रिया अनिवर्त्ति ३, समुच्छिन्नक्रिया अप्रतिपाति ।

भाषा टीका — शुक्लध्यान के चार भेद होते हैं— १. पृथक्त्व वितर्क सविचारी, २. एकत्ववितर्क अविचारी, ३. सूक्ष्मक्रिया अनिवर्ति अथवा सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति और ४. समुच्छिन्नक्रिया अप्रतिपाती अथवा व्युपरतक्रियानिवर्ति ।

त्र्येकयोगकाययोगायोगानाम् ।

९, ४०

सुहमसंपरायसरागचरित्तारिया य बायरसंपरायसरागचरित्तारिया य, ·········उवसंतकसायवीतरायचरित्तारिया य खीणकसायवीयरायचरित्तारिया च ।

सजोगिकेवलिखीणकसायवीयरायचरित्तारिया य अजोगि-केवलिखीणकसायवीयरायचरित्तारिया य।

प्रज्ञापना सूत्र पद १ चारित्रार्यविषय।

छाया— सूक्ष्मसाम्परायसरागचरित्रार्याश्च बादरसाम्परायसरागचरित्रार्याश्च। उपशान्तकषायवीतरागचरित्रार्याश्च क्षीणकषायवीतरागचरित्रार्याश्च।

सयोगिकेवलिक्षीणकषायवीतरागचरित्रार्याश्च। अयोगिकेवलिक्षीणकषायवीतरागचरित्रार्याश्च।

भाषा टीका — सूक्ष्मसाम्पराय सरागचारित्र वाले आर्य, बादरसाम्परायसरागचारित्र वाले आर्य, उपशान्तकषाय वीतरागचारित्र वाले आर्य, क्षीणकषाय वीतरागचारित्र वाले आर्य, सयोगिकेवलि क्षीणकषाय वीतरागचारित्र वाले आर्य, और अयोगिकेवलि क्षीणकषाय वीतरागचारित्र वाले आर्य के [यह शुक्ल ध्यान होते हैं।]

(संगति) इस कथन में प्रगट है कि पृथक्त्ववितर्क नामका प्रथम शुक्ल ध्यान मन, वचन और काय इन तीनों योगों के धारक के होता है। दूसरा एकत्ववितर्क नामका शुक्ल ध्यान तीनों में से किसी एक योगवाले के होता है। तीसरा सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति नामका ध्यान काययोग वालों के ही होता है और चौथा व्युपरतक्रियानिवर्ति नामका ध्यान अयोगकेवली के ही होता है।

अब प्रथम के दो ध्यानों के विशेष रूप से जानने के लिये सूत्र कहे जाते हैं—

एकाश्रये सवितर्कविचारे पूर्वे।

९, ४१.

अविचारं द्वितीयम्।

९, ४२.

वितर्कः श्रुतम्।

९, ४३.

विचारोऽर्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिः।

९, ४४.

उप्पायठितिभंगाइं पज्जयाणं जमेगदव्वंमि।
नाणानयाणुसरणं पुव्वगयसुयाणुसारेणं ॥ १ ॥
सवियारमत्थवंजणजोगंतरओ तयं पढमसुक्कं।
होति पुहुत्तवियक्कं सवियारमरागभावस्स ॥ २ ॥
जं पुण सुनिप्पकंपं निवायसरणप्पईवमिव चित्तं।
उप्पायठिइभंगाइयाणमेगंमि पज्जाए ॥ ३ ॥
अवियारमत्थवंजणजोगंतरओ तयं बिइयसुक्कं।
पुव्वगयसुयालंबणमेगत्तवियक्कमवियारं ॥ ४ ॥

स्थानांग सूत्र वृत्ति स्था० ४, उ० १, सू० २४७.

छाया— उत्पादस्थितिभंगादिपर्यवानां यदेकस्मिन् द्रव्ये।
नानानयैरनुसरणं पूर्वगतश्रुतानुसारेण ॥ १ ॥
सविचारमर्थव्यञ्जनयोगान्तरतस्तत् प्रथमशुक्लम्।
भवति पृथक्त्ववितर्कं सविचारमरागभावस्य ॥ २ ॥
यत्पुनः सुनिष्प्रकंपं निवातस्थानप्रदीपमिव चित्तं।
उत्पादस्थितिभंगादीनामेकस्मिन् पर्याये ॥ ३ ॥
अविचारमर्थव्यञ्जनयोगान्तरतस्तत् द्वितीयं शुक्लम्।
पूर्वगतश्रुतालम्बनमेकत्ववितर्कमविचारम् ॥ ४ ॥

भाषा टीका — जो एक द्रव्य में पूर्वगतश्रुत के अनुसार अनेक नयों के द्वारा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य आदि पर्यायों का विचार सहित अर्थ, व्यञ्जन और योग का अन्तर (पलटना अथवा संक्रान्ति) है उसे पृथक्त्ववितर्क सविचार नामका प्रथम शुक्लध्यान कहते हैं। यह रागरहित भाववाले मुनियों के होता है ॥ १—२ ॥

और जो उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य आदि भंगों में से एक पर्याय में अर्थ, व्यञ्जन और योग के अन्तर के विचार रहित निर्वातस्थान में दीपक के समान निष्कम्प रहता है वह पूर्वगतश्रुतालम्बन रूप एकत्ववितर्क अविचार नामका द्वितीय शुक्ल ध्यान है ॥ ३—४ ॥

इस प्रकार बाह्य और आभ्यन्तर तपों का वर्णन किया गया। यह दोनों प्रकार के तप

नवीन कर्मों का निरोध करने के कारण होने से संवर के कारण हैं और पूर्व बंधे कर्मों के नष्ट करने के निमित्त होने से निर्जरा के भी कारण हैं।

अब तपश्चरण आदि करने से जो निर्जरा होना कहा है वह समस्त सम्यग्दृष्टि जीवों के एक सी ही होती है अथवा भिन्न२ प्रकार की होती है यह बतलाने के लिये सूत्र कहते हैं—

सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशान्तमोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः ।

९, ४५.

कम्मविसोहिमग्गणं पडुच्च चउदस जीवट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—....अविरयसम्मदिट्ठी विरयाविरए पमत्तसंजए अप्पमत्तसंजए निअट्टीबायरे अनिअट्टिबायरे सुहुमसंपराए उवसामए वा खवए वा उवसंतमोहे खीणमोहे सजोगी केवली अयोगी केवली।

समवायांग समवाय १४.

छाया— कर्मविशुद्धिमार्गणां प्रतीत्य चतुर्दशजीवस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—अविरतसम्यग्दृष्टिः विरताविरतः प्रमत्तसंयतः अप्रमत्तसंयतः निवृत्तिबादरः अनिवृत्तबादरः सूक्ष्मसाम्परायः उपशमकः वा क्षपकः वा उपशान्तमोहः क्षीणमोहः सयोगी केवली अयोगी केवली।

भाषा टीका—कर्मों की विशुद्धि के मार्ग की दृष्टि से जीव स्थान चौदह होते हैं:—अविरतसम्यग्दृष्टि, देशव्रत के धारक श्रावक, प्रमत्तसंयत वाले मुनि, अप्रमत्तसंयत, निवृत्तिबादर, अनिवृत्ति बादर, सूक्ष्मसाम्पराय उपशमक अथवा क्षपक, उपशान्त मोह, क्षीण मोह, सयोगी केवली (जिन) और अयोगी केवली [इनके क्रमशः असंख्यातगुणी निर्जरा होती है।]

पुलाकबकुशकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातका निर्ग्रन्थाः ।

९, ४६.

पंच णियंठा पन्नत्ता, तं जहा—पुलाए बउसे कुसीले णियंठे सिणाए।

व्याख्याप्रज्ञप्ति श० २५, उ० ६, सू० ७५१.

छाया— पञ्च निर्ग्रन्थाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पुलाकः बकुशः कुशीलः, निर्ग्रन्थः स्नातकः।

भाषा टीका — निर्ग्रन्थ पांच प्रकार के कहे गये हैं:— पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक।

अब इन्हीं के अन्य भेद भी कहे जाते हैं:—

संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिङ्गलेश्योपपाद-स्थानविकल्पतः साध्याः।

९, ४७

पडिसेवणा णाणे तित्थे लिंग—खेत्ते काल गइ संजम....... लेसा।

व्याख्याप्रज्ञप्ति श० २५, उ० ५, सू० ७५१

छाया— परिसेवना ज्ञानं तीर्थः लिङ्गः क्षेत्रः कालः गतिः संयमः लेश्या।

भाषा टीका — परिसेवना (प्रतिसेवना) ज्ञान (श्रुत), तीर्थ, लिङ्ग, क्षेत्र (स्थान), काल, गति (उपपाद), संयम और लेश्या [के भेदों से भी विचार करें]

संगति—आगम तथा सूत्र के शब्दों में नाम मात्र का ही अन्तर है। आगम में इन भेदों को विस्तार दृष्टि से छत्तीस प्रकार का बतलाया गया है, जिन में सूत्र के योग्य यहां छांट लिये गये हैं।

इति श्री-जैनमुनि-उपाध्याय-श्रीमदात्माराम-महाराज-संगृहीते
तत्त्वार्थसूत्रजैनाऽऽगमसमन्वये

❀ नवमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ९ ॥ ❀

———:o:———

दशमोऽध्याय:

———:o:———

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम् ।

१०, १.

खीणमोहस्स णं अरहओ ततो कम्मंसा जुगवं खिज्जंति, तं जहा—नाणावरणिज्जं दंसणावरणिज्जं अंतरातियं ।

स्थानांग स्थान ३, उ० ४, सू० २२६.

तप्पढमयाए जहाणुपुव्वीए अट्ठवीसइविहं मोहणिज्जं कम्मं उग्घाएइ, पञ्चविहं नाणावरणिज्जं, नवविहं दंसणावरणिज्जं, पंचविहं अन्तराइयं, एए तिन्नि वि कम्मंसे जुगवं खवेइ ।

उत्तराध्ययन अध्ययन २९, सू० ७१.

छाया— क्षीणमोहस्यार्हतस्ततः कर्मांशाः युगपत् क्षपयन्ति, तद्यथा—ज्ञानावरणीयं, दर्शनावरणीयं अंतरायिकं ।

तत्प्रथमतया यथानुपूर्व्या अष्टाविंशतिविधं मोहनीयं कर्मोद्घातयति । पंचविधं ज्ञानावरणीयं, नवविधं दर्शनावरणीयं, पञ्चविधमन्तरायिकमेतानि त्रीण्यपि कर्माणि युगपत् क्षपयति ।

भाषा टीका—मोहनीय कर्म को नष्ट करने वाले अर्हत के इसके पश्चात् निम्नलिखित कर्मों के अंश एक साथ नष्ट होते हैं— ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अंतराय ।

[अर्थात्] सब से प्रथम पूर्व आनुपूर्वी के अनुसार अट्ठाइस प्रकार के मोहनीय कर्म को नष्ट करता है । [इसके पश्चात्] पांच प्रकार के ज्ञानावरणीय, नौ प्रकार के दर्शनावरणीय, और पांच प्रकार के अंतराय इन तीनों ही कर्मों को एक साथ नष्ट करता है ।

संगति — और तब इसके केवलज्ञान प्रगट होता है ।

बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ।

१०, २.

अणगारे समुच्छिन्नकिरियं अनियट्टिसुक्कज्झाणं झियायमाणे वेयणिज्जं आउयं नामं गोत्तं च एए चत्तारि कम्मंसे जुगवं खवेइ ।

उत्तराध्ययन अध्ययन २९, सूत्र ७२.

छाया— अनगारः समुच्छिन्नक्रियमनिवृत्तिशुक्लध्यानं ध्यायन्वेदनीयमायुर्नाम गोत्रं चैतान् चतुरः कर्मांशान् युगपत्क्षपयति ।

भाषा टीका—[इसके पश्चात् वह] मुनि समुच्छिन्नक्रिया अनिवृत्ति अथवा व्युपरतक्रियानिवर्ति नाम के चतुर्थ शुक्ल ध्यान का ध्यान करते हुए वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र इन चार कर्मों के अंशों अथवा प्रकृतियों को एक साथ नष्ट करते हैं ।

संगति — वीतराग होने के कारण उस समय बंध के सभी कारणों का अभाव हो जाता है और प्रतिक्षण निर्जरा होने २ अंत में चारों अघातिया कर्मों की भी निर्जरा हो जाती है । उस समय सम्पूर्ण कर्मों का नाश रूप मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

औपशमिकादिभव्यत्वानाञ्च ।

१०, ३

नोभवसिद्धिए नोअभवसिद्धिए ।

प्रज्ञापना पद १८.

छाया— न भवसिद्धिकः नाऽभवसिद्धिकः ।

भाषा टीका — उस समय न भव्यत्व भाव रहता है और न अभव्यत्व भाव रहता है ।

संगति — औपशमिक, क्षायोपशमिक, औदयिक तथा भव्यत्व [तथा अभव्यत्व] भावों का और पुद्गलकर्मों की समस्त प्रकृतियों का नाश हो जाने पर मोक्ष होता है ।

अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः ।

१०, ४.

† खीणमोहे (केवलसम्मत्तं) केवलणाणी, केवलदंसी सिद्धे।

अनुयोगद्वारसूत्र षण्णामाधिकार सू० १२६.

छाया— क्षीणमोहः (केवलसम्यक्त्वं), केवलज्ञानी, केवलदर्शी, सिद्धः।

भाषा टीका — क्षीण मोह वाले, (केवल सम्यक्त्व वाले), केवल ज्ञान वाले, और केवल दर्शन वाले सिद्ध होते हैं।

संगति — केवल सम्यक्त्व, केवल ज्ञान, केवल दर्शन और केवल सिद्धत्व भावों के सिवाय अन्य भावों का मुक्त जीवों के अभाव है। अनन्त वीर्य आदि भावों का उपरोक्त भावों के साथ अविनाभाव सम्बन्ध होने से उनका अभाव न समझना चाहिये।

तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात।

१०, ५.

अणुपुव्वेणं अट्ठ कम्मपगडीओ खवेत्ता गगणतलमुप्पइत्ता उप्पिं लोयग्गपतिट्ठाणा भवन्ति।

ज्ञाताधर्मकथांग, अध्ययन ६, सू० ६२.

छाया— अनुपूर्वेण अष्टकर्मप्रकृतयः क्षपयित्वा गगनतलमुत्पत्य उपरि लोकाग्रप्रतिष्ठानाः भवन्ति।

भाषा टीका — इस प्रकार क्रम से आठों कर्मों की प्रकृतियों को नष्ट करके आकाश में ऊर्ध्व गति द्वारा लोक के अग्र भाव में स्थित होते हैं।

पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद्बंधच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च।

१०, ६.

आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्च।

१०, ७.

† सिद्धा सम्मादिट्ठी (सिद्धाः सम्यग्दृष्टिः) प्रज्ञापना १६ सम्यक्त्व पद.

अत्थि णं भंते! अकम्मस्स गती पन्नायति? हंता अत्थि, कहन्नं भंते! अकम्मस्स गती पन्नायति? गोयमा निस्संगयाए निरंगणयाए गतिपरिणामेणं बंधणछेयणयाए निरंधणयाए पुव्वपयोगेणं अकम्मस्स गती पन्नत्ता। कहन्नं भंते! निस्संगयाए निरंगणयाए गइपरिणामेणं बंधणछेयणयाए निरंधणयाए पुव्वप्पओगेणं अकम्मस्स गती पन्नायति? से जहानामए· केई पुरिसे सुक्कं तुंबं निच्छिड्डं निरुवहयं आणुपुव्वीए परिकम्मेमाणे २ दब्भेहि य कुसेहि य वेढेइ १ अट्ठहिं मट्टियालेवेहिं लिंपइ २ उण्हे दलयति भूतिं २ सुक्कं समाणं अत्थाहमतारमपोरसियंसि उदगंसि पक्खिवेज्जा, से नूणं गोयमा! से तुंबे तेसिं अट्ठण्हं मट्टियालेवेणं गुरुयत्ताए भारियत्ताए गुरुसंभारियत्ताए सलिलतलमतिवइत्ता अहे धरणितलपइट्ठाणे भवइ?· हंता भवइ· अहे णं से तुंबे अट्ठण्हं मट्टियालेवेणं परिक्खएणं धरणितलमतिवइत्ता उप्पिं सलिलतलपइट्ठाणे भवइ? हंता भवइ· एवं खलु गोयमा! निस्संगयाए निरंगणयाए गइपरिणामेणं अकम्मस्स गई पन्नायति। कहन्नं भंते! बंधणछेदणयाए अकम्मस्स गई पन्नत्ता? गोयमा! से जहानामए—कलसिंबलियाइ वा मुग्गसिंबलियाइ वा माससिंबलियाइ वा सिंबलिसिंबलियाइ वा एरंडमिंजियाइ वा उण्हे दिन्ना सुक्का समाणी फुडित्ता णं एगंतमंतं गच्छइ, एवं खलु गोयमा!०। कहन्नं भंते! निरंधणयाए अकम्मस्स गती? गोयमा! से जहानामए–धूमस्स इंधणविप्पमुक्कस्स उड्ढं वीससाए निव्वाघाएणं,

गती पवत्तति, एवं खलु गोयमा! ०। कहन्नं भंते! पुव्वपओगेणं अकम्मस्स गती पन्नत्ता? गोयमा! से जहानामए–कंडस्स कोदंड-विप्पमुक्कस्स लक्खाभिमुही निव्वाघाएणं गती पवत्तइ, एवं खलु गोयमा! नीसंगयाए निरंगणयाए जाव पुव्वपओगेणं अकम्मस्स गती पण्णत्ता।

व्याख्याप्रज्ञप्ति श० ७, उ० १, सू० २६५

छाया— अस्ति भदन्त! अकर्मणः गतिः प्रज्ञायते? हन्त अस्ति। कथं नु भगवन्! अकर्मणः गतिः प्रज्ञायते? गौतम! निःसंगतया निरङ्ग-तया गतिपरिणामेण बन्धनछेदनतया निरिन्धनतया पूर्वप्र-योगेण अकर्मणः गतिः प्रज्ञप्ता। कथं नु भगवन्! निःसंगतया निरङ्गतया गतिपरिणामेण बन्धनछेदनतया निरिन्धनतया पूर्व-प्रयोगेण अकर्मणः गतिः प्रज्ञायते? अथ यथानामकः–कोऽपि पुरुषः शुष्कं तुम्बं निश्छिद्रं निरुपहतं आनुपूर्व्या परिक्रमन् २ दर्भैश्च कुशैश्च वेष्टयति २ अष्टाभिः मृत्तिकालेपैः लिम्पति २ उष्णे ददाति भूरि भूरि शुष्कं सन् अस्थाघे (अगाधे) अतार्ये अपौरुषिके उदके प्रक्षिपेत्, अथ नूनं गौतम! सस्तुम्बः तेषां अष्टानां मृत्तिकालेपानां गुरुकतया भारिकतया गुरुसंभारिकतया सलिलतलमतिपत्य अधस्तात् धरणितलप्रतिष्ठानः भवति? हंत भवति, अथ सस्तुम्बः अष्टानां मृत्तिकालेपानां परिक्षयेण धरणि-तलमतिपत्य उपरि सलिलतलप्रतिष्ठानः भवति? हंत भवति, एवं खलु गोयमा! निःसंगतया निरङ्गतया गतिपरिणामेण अकर्मणः गतिः प्रज्ञायते। कथं भगवन्! बन्धनछेदनतया अकर्मणः गतिः प्रज्ञप्ता? गौतम! अथ यथानामकः–कलसिम्बलिका (धान्यविशेष-फलिका) वा मुद्गसिम्बलिका वा माषसिम्बलिका वा शाल्मलि-सिम्बलिका वा एरण्डमिञ्जिका उष्णे दत्ता शुष्का सती स्फुटिता

एकान्तमन्तं गच्छति । एवं खलु गौतम! ०। कथं भगवन्! निरिन्धनतयाऽकर्म्मणः गतिः? गौतम! अथ यथानामकः- धूमस्येंधनविप्रमुक्तस्य ऊर्ध्वं विस्रसया निर्विघातेन गतिः प्रवर्तते, एवं खलु गौतम! ० । कथं नु भगवन्! पूर्वप्रयोगेणाऽकर्मणः गतिः प्रज्ञप्ता? गौतम! अथ यथानामकः, काण्डस्य कोदण्डविप्र-मुक्तस्य लक्ष्याभिमुखी निर्विघातेन गतिः प्रवर्तते। एवं खलु गौतम! निःसंगतया निरागतया यावत् पूर्वप्रयोगेण अकर्मणः गतिः प्रज्ञप्ता ।

भाषा टीका — [अब प्रश्न करते हैं कि जीव मुक्त होने पर ऊपर को ही क्यों जाता है सो इसके उत्तर में सूत्रार्थ कहते हैं]—

प्रश्न — भगवन् ! क्या कर्म रहित जीव के गति होती है ?

उत्तर — हाँ, होती है ?

प्रश्न — उनके गति किस प्रकार होती है ?

उत्तर — हे गौतम ! संग रहित होने से, राग (रंग) रहित होने से, स्वाभाविक ऊर्ध्व गमन स्वभाव वाला होने से, कर्म बन्ध के नष्ट हो जाने से, इंधन रहित होने से और पूर्व प्रयोग से कर्म रहित जीव के गति होती है।

प्रश्न — भगवन् ! संग रहित होने से, राग (रंग) रहित होने से, स्वाभाविक ऊर्ध्वगमन स्वभाववाला होने से, कर्म बन्ध के नष्ट हो जाने से, इंधन रहित होने से और पूर्व प्रयोग से कर्म रहित जीव के गति किस प्रकार होती है ?

उत्तर — जिस प्रकार कोई पुरुष छिद्ररहित बिना टूटी हुई सूखी तुम्बी को क्रमसे लाता हुआ पहिले दाभ और कुशाओं से बार २ लपेटता है । इसके पश्चात् वह उसके ऊपर मिट्टी के आठ लेप करता है। फिर उसको धूप में रख कर बार बार सुखाता है। इसके पश्चात् वह उस तुम्बी को मनुष्य के डूबने योग्य अगाध गहन जल में फेंक देता है। तब हे गौतम! क्या वह तुम्बी उन आठों मिट्टी के लेपों के बोझ से अत्यन्त भारी हो जाने के कारण पानी के बिल्कुल नीचे के पृथ्वीतल पर जा पड़ेगी ? अवश्य जा पड़ेगी ?

इसके पश्चात् क्या वह तुम्बी जल के कारण धीरे २ मिट्टी के आठों लेपों के घुल जाने से पृथ्वी तल से ऊपर उठ कर जल के ऊपर आजाती है ? निश्चय से आजाती है । उसी

प्रकार हे गौतम ! संग रहित होने से, राग (रंग) रहित होने से और स्वाभाविक ऊर्ध्व गमन स्वभाव होने से कर्म रहित जीव के भी गति होती है।

प्रश्न—भगवन् ! बंधन के नष्ट होने से कर्म रहित जीव के किस प्रकार गति होती है ?

उत्तर — हे गौतम ! जिस प्रकार कल नाम के अनाज की फली, मूंग की फली, उड़द की फली, सेंभल की फली अथवा एरण्ड की फली को धूप में रख कर सुखाने से जब वह फूटती है तो बीज टूट २ कर एक ओर को ही जाते हैं उसी प्रकार हे गौतम ! [कर्म] बन्धन के नष्ट होने से कर्म रहित जीव की गति होती है।

प्रश्न — भगवन् ! इंधन रहित होने से कर्म रहित जीव के गति किस प्रकार होती है ?

उत्तर — हे गौतम ! जिस प्रकार इंधन से निकला हुआ धुआं बिना किसी बाधा के हुए स्वभाव से ऊपर को ही जाता है उसी प्रकार इंधन रहित होने से कर्म रहित जीव के गति होती है।

प्रश्न — भगवन पूर्व प्रयोग से कर्म रहित के गति किस प्रकार कही गई है ?

उत्तर — हे गौतम ! जिस प्रकार धनुष से छोड़े हुए बाण की गति निर्बाध रूप से अपने लक्ष्य की ओर ही होती है, उसी प्रकार हे गौतम ! संग रहित होने से राग (रंग) रहित होने से, स्वाभाविक ऊर्ध्व गमन स्वभाव वाला होने से, बन्धन के नष्ट होने से, इंधन रहित होने से और पूर्व प्रयाग से कर्म रहित जीव के गति कही गई है।

जीव का जब ऊर्ध्व गमन स्वभाव है तो फिर वह लोक के अन्त में ही जाकर क्यों ठहर जाता है ? आगे क्यों नहीं चला जाता ? इसका उत्तर सूत्र द्वारा दिया जाता है—

धर्मास्तिकायाभावात् ।

१०, ८.

चउहिं ठाणेहिं जीवा य पोग्गला य णो संचातेंति बहिया लोगंता गमणताते, तं जहा – गतिअभावेणं णिरुवग्गहताते लुक्खताते लोगाणुभावेणं ।

स्थानांग स्थान ४, उ० ३, सू० ३३७

छाया— चतुर्भिः स्थानैः जीवाश्च पुद्गलाश्च न शक्नुवंति बहिस्ताल्लोकान्ताद्गमनाय। तद्यथा-गत्यभावेन निरुपग्रहतया (धर्मास्तिकायाभावेन) रूक्षतया लोकानुभावेन।

भाषा टीका — चार कारणों से जीव और पुद्गल लोक के अन्त से बाहिर नहीं जा सकते—

आगे गति का अभाव होने से, उपग्रह (धर्मास्तिकाय) का अभाव होने से, लोक के अंत भाग के परिमाणुओं के रूक्ष होने से और अनादि काल का स्वभाव होने से।

संगति — आगम में जीव और पुद्गल दोनों की अपेक्षा विशेष दृष्टि से कथन किया गया है, जैसा कि आगमों में प्राय: होता है। सूत्रों में संक्षिप्त ही वर्णन किया जाता है।

क्षेत्रकालगतिलिंगतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनान्तरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः।

१०, ९.

खेत्तकालगईलिङ्गतित्थे चरित्ते।

व्याख्याप्रज्ञप्ति श० २५, उ० ६, सू० ७५१.

पत्तेयबुद्धसिद्धा बुद्धबोहियसिद्धा।

नन्दिसूत्र केवलज्ञानाधिकार.

णाणे खेत्त अन्तर अप्पाबहुयं।

व्याख्याप्रज्ञप्ति श० २५, उ० ६, सू० ७५१.

सिद्धाणोगाहणा संखा।

उत्तराध्ययन अध्ययन ३६, गाथा ५३.

छाया— क्षेत्रकालगतिलिङ्गतीर्थः चरित्रः।
प्रत्येकबुद्धसिद्धाः बुद्धबोधितसिद्धाः।
ज्ञानं क्षेत्रान्तराल्पबहुत्वं।
सिद्धानामवगाहना संख्या।

भाषा टीका—क्षेत्र, काल, गति, लिङ्ग, तीर्थ, चारित्र, प्रत्येकबुद्धसिद्ध, बुद्धबोधित सिद्ध, ज्ञान, क्षेत्र, अंतर, अल्पबहुत्व, अवगाहना और संख्या इन अनुयोगों से सिद्धों में भी भेद साधने चाहियें।

संगति—सूत्र में तथा आगम में यहां शब्द साम्य देखने योग्य है।

इति श्री-जैनमुनि-उपाध्याय-श्रीमदात्माराम-महाराज-संगृहीते
तत्त्वार्थसूत्रजैनाऽऽगमसमन्वये

❀ दशमोऽध्यायः समाप्तः ॥ १० ॥ ❀

———:o:———

गुरुप्पसत्थी.

नायसुओ वद्धमाणो नायसुओ महामुणी ।
लोगे तित्थयरो आसी अपच्छिमो सिवंकरो ॥ १ ॥
सतित्थे ठविओ तेण पढमो अणुसासगो ।
सुहम्मो गणहरो नाम तेअंसी समणच्चिओ ॥ २ ॥
तत्तो पवट्टिओ गच्छो सोहम्मो नाम विस्सुओ ।
परंपराए तत्थासी सूरीचामरसिंघओ ॥ ३ ॥
तस्स संतस्स दंतस्स मोतीरामाभिहो मुणी ।
होत्थ सीसो महापन्नो गणिपयंविभूसिओ ॥ ४ ॥
तस्स पट्टे महाथेरो गणावच्छेअगो गुणी ।
गणपतिसन्निओ साहू सामण्णगुणसोहिओ ॥ ५ ॥
तस्स सीसो गुरुभत्तो सो जयरामदासओ ।
गणावच्छेअगो अत्थि समो मुत्तो व्व सासणे ॥ ६ ॥
तस्स सीसो सच्चसंधो पवट्टगपयंकिओ ।
सालिग्गामो महाभिक्खू पावयणी धुरंधरो ॥ ७ ॥
तस्संतेवासिणा भिक्खुअप्पारामेण निम्मिओ ।
उवज्झायपयंकेणं तत्तत्थस्स समन्नओ ॥ ८ ॥
तत्तत्थमूलसुत्तस्स जं बीअं उवलब्भइ ।
जिणागमेसु तं सव्वं संखेवेणेत्थ दंसिअं ॥ ९ ॥
इगूणवीसानवर–विक्कमवासेसु निम्मिओ एस ।
दिल्लीनामयनयरे मुक्ख सत्थस्स य समन्नयो ॥ १० ॥

परिशिष्ट नं. १.[†]

---:o:---

तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ।

१, १४.

तत्र 'नोइंदियअत्थावग्गहो' त्ति नोइन्द्रियं मनः, तच्च द्विधा द्रव्यरूपं भावरूपं च, तत्र मनःपर्याप्तिनामकर्मोदयतो यत् मनः प्रायोग्यवर्गणादलिकमादाय मनस्त्वेन परिणामितं तद्द्रव्यरूपं मनः तथा चाह चूर्णिकृत् — "मणपज्जत्तिनामकम्मोदयओ तज्जोग्गे मणोदव्वे घेत्तुं मणत्तेण परिणामिया दव्वा दव्वमणो भण्णइ ।" तथा द्रव्यमनोऽवष्टम्भेन जीवस्य यो मननपरिणामः स भावमनः तथा चाह चूर्णिकार एव—" जीवो पुण मणणपरिणामकिरियापन्नो भावमनो. किं भणियं होइ ? — मणदव्वालंबणो जीवस्स मणणवावारो भावमणो भण्णइ" तत्रेह भावमनसा प्रयोजनं, तद्ग्रहणे ह्यवश्यं द्रव्यमनसोऽपि ग्रहणं भवति, द्रव्यमनोऽन्तरेण भावमनसोऽसम्भवात्, भावमनो विनापि च द्रव्यमनो भवति, यथा भवस्थकेवलिनः, तत उच्यते—भावमनसेह प्रयोजनं, तत्र नोइन्द्रियेण—भावमनसाऽर्थावग्रहो द्रव्येन्द्रियव्यापारनिरपेक्षो घटाद्यर्थस्वरूपपरिभावनाभिमुखः प्रथम-

---

† इस परिशिष्ठ में वह पाठ है जो शीघ्रता के कारण मूलग्रन्थ के छपते समय उसमें न दिये जा सके थे ।

मेकसामयिको रूपाद्यर्थाकारादिविशेषचिन्ताविकलोऽनिर्देश्यसामान्यमात्रचिन्तात्मको बोधो नोइन्द्रियार्थावग्रहः ।

नन्दिसूत्र वृत्ति मतिज्ञान वर्णन.

श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् । १, २०.

अंगबाहिरं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—आवस्सयं च आवस्सयवइरित्तं च । से किं तं आवस्सयं? आवस्सयं छव्विहं पण्णत्तं, तं जहा—सामाइयं चउवीसत्थओ वंदणयं पडिक्कमणं काउस्सग्गो पच्चक्खाणं, सेत्तं आवस्सयं । से किं तं आवस्सयवइरित्तं? आवस्सयवइरित्तं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—कालिअं च उक्कालिअं च । से किं तं उक्कालिअं? उक्कालिअं अणेगविहं पण्णत्तं, तं जहा—दसवेआलियं कप्पिआकप्पिअं चुल्लकप्पसुअं महाकप्पसुअं उववाइअं रायपसेणिअं जीवाभिगमो पण्णवणा महापण्णवणा पमायप्पमायं नंदी अणुओगदाराइं देविंदत्थओ तंदुलवेआलिअं चंदाविज्झयं सूरपण्णति पोरिसिमंडलं मंडलपवेसो विज्जाचरणविणिच्छओ गणिविज्जा झाणविभत्ती मरणविभत्ती आयविसोही वीयरागसुअं संलेहणासुअं विहारकप्पो चरणविही आउरपच्चक्खाणं महापच्चक्खाणं एवमाइ, से तं उक्कालिअं । से किं तं कालिअं? कालिअं अणेगविहं पण्णत्तं, तं जहा—उत्तरज्झयणाइं दसाओ कप्पो ववहारो निसीहं महानिसीहं इसिभासिआइं जंबूदीवपन्नती दीवसागरपन्नत्ती चंदपन्नत्ती खुड्डिआ विमाणपविभत्ती महल्लिआ विमाणपविभत्ती अंगचूलिआ वग्ग-

चूलिया विवाहचूलिश्रा अरुणोववाए वरुणोववाए गरुलोववाए धरणोववाए वेसमणोववाए वेलंधरोववाए देविंदोववाए उट्ठाणसुए समुट्ठाणसुए नागपरिश्रावणिश्राश्रो निरयावलिश्राश्रो कप्पिश्राश्रो कप्पवडिंसिश्राश्रो पुप्फिश्राश्रो पुप्फचूलिश्राश्रो वण्हीदसाश्रो, एवमाइयाइं चउरासीइं पइन्नगसहस्साइं भगवश्रो अरहश्रो उसहसामिस्स श्राइतित्थयरस्स तहा संखिज्जाइं पइन्नगसहस्साइं मज्झिमगाणं जिणवराणं चोद्दसपइन्नगसहस्साणि भगवश्रो वद्धमाणसामिस्स, अहवा जस्स जत्तिश्रा सीसा उप्पत्तिश्राए वेणइश्राए कम्मियाए पारिणामिश्राए चउव्विहाए बुद्धीए उववेश्रा तस्स तत्तिश्राइं पइण्णगसहस्साइं, पत्तेअबुद्धावि तत्तिश्रा चेव, सेत्तं कालिश्रं, सेत्तं श्रावस्सयवइरित्तं, से तं अणंगपविट्ठं ।

नन्दी० सूत्र ४४.

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ।

१, २९.

केवलदंसणं केवलदंसणिस्स सव्वदव्वेसु अ सव्वपज्जवेसु अ ।

अनुयोगद्वार० सूत्र १४४.

मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ।

१, ३१.

अन्नाणे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते? गोयमा! तिविहे

पण्णत्ते, तं जहा—मइअन्नाणे सुयअन्नाणे विभंगन्नाणे।

व्याख्याप्रज्ञप्ति श० ८, उ० २, सु० ३१८.

संज्ञिनः समनस्काः।

२, २४.

जीवा णं भंते! किं सण्णी असण्णी नोसण्णीनोअसण्णी? गोयमा! जीवा सण्णीवि असण्णीवि नोसण्णीनोअसण्णीवि। नेरइयाणं पुच्छा? गोयमा! नेरइया सण्णीवि असण्णीवि नो नोसण्णीनोअसण्णी, एवं असुरकुमारा जाव थणियकुमारा। पुढविकाइयाणं पुच्छा? गोयमा! नो सण्णी असण्णी, नो नोसण्णीनोअसण्णी। एवं बेइंदियतेइंदियचउरिंदियावि। मणूसा जहा जीवा, पंचिंदियतिरिक्खजोणिया वाणमंतरा य जहा नेरइया, जोतिसियवेमाणिय। सण्णी नो असण्णी नो नोसण्णीनोअसण्णी। सिद्धाणं पुच्छा? गोयमा! नो सण्णी नो असण्णी नोसण्णीनोअसण्णी। नेरइयतिरियमणुया य वणायरगसुरा इ सण्णीऽसण्णी य। विगलिंदिया असण्णी जोतिसवेमाणिया सण्णी। पण्णवणाए सण्णीपयं समत्तं।

प्रज्ञापना, ३१ संज्ञापद, सूत्र ३१५.

शेषास्त्रिवेदाः।

२, ५२.

कइविहे णं भंते! वेए पएणत्ते? गोयमा! तिविहे वेए पएणत्ते, तं जहा—इत्थीवेए पुरिसवेए नपुंसकवेए। नेरइया णं भंत्ते! किं इत्थीवेया पुरिसवेया णपुंसगवेया पएणत्ता? गोयमा! णो इत्थीवेया णो पुंवेए णपुंसगवेया पएणत्ता। असुरकुमारा णं भंते! किं इत्थीवेया पुरिसवेया नपुंगवेया? गोयमा! इत्थीवेया पुरिसवेया णो णपुंसगवेया जाव थणियकुमारा। पुढवी आऊ तेऊ वाऊ वणस्सई बितिचउरिंदियसंमुच्छिमपंचिंदियतिरिक्ख-संमुच्छिममणुस्सा णपुंसगवेया। गब्भवक्कंतियमणुस्सा पंचिं-दियतिरिया य तिवेया। जहा असुरकुमारा तहा वाणमंतरा जोइसियवेमाणियावि।

समवायांग सूत्र १५६.

———:o:———

परिशिष्ट नं. २

——.o:——

तत्त्वार्थ सूत्र भाषा
(सूत्रों का अर्थ)

प्रथम अध्याय

मोक्षमार्ग का वर्णन—

१—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र यह तीनों मिला कर मोक्ष का मार्ग है।

सम्यग्दर्शन—

२—तत्त्व के (जो पदार्थ जिस रूप में विद्यमान् है उसके उसी) अर्थ का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

३—वह सम्यग्दर्शन दो प्रकार से उत्पन्न होता है—

स्वभाव से और अधिगम (दूसरे के द्वारा ज्ञान दिया जाने) से।

सात तत्व—

४—तत्त्व सात हैं—

जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष।

उनको जानने के साधन—

५—नाम, स्थापना, द्रव्य (भूत भविष्य की अपेक्षा वर्तमान में कथन करना) और भाव (वर्तमान् काल की अपेक्षा कथन) से उन सम्यग्दर्शन आदि तथा सात तत्वों का न्यास अर्थात् लोक व्यवहार होता है।

६—प्रमाण और नय से भी उनका ज्ञान होता है।

७—निर्देश, स्वामित्व, साधन (उत्पत्ति का कारण), अधिकरण (वस्तु का आधार), स्थिति, और विधान (भेद) से भी वह जाने जाते हैं ।

८—सत्, संख्या, क्षेत्र (पदार्थ का वर्तमान निवास), स्पर्शन (तीनों कालों में निवास करने का क्षेत्र), काल, अन्तर (विरह काल), भाव (औपशमिक आदि) और अल्पबहुत्व से भी उनका ज्ञान होता है ।

पांचां ज्ञान का वर्णन—

९—ज्ञान पांच प्रकार का होता है—

मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल ।

१०—वह पांच प्रकार का ज्ञान दो प्रमाण रूप है ।

११—आदि के दो मति और श्रुतज्ञान परोक्ष प्रमाण हैं ।

१२—बाकी के अवधि, मनः पर्यय और केवलज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण हैं ।

१३—मति (वर्तमान कालवर्ती पदार्थ को अवग्रह आदि रूप जानना), स्मृति (अनुभूत पदार्थ का कालान्तर में स्मरण करना), संज्ञा (प्रत्यभिज्ञान अथवा मति और स्मृति रूप ज्ञान), चिन्ता (अविनाभाव सम्बन्ध का ज्ञान), अभिनिबोध, (चिन्ह देखकर चिन्ह वाले का निश्चय कर लेना) और इनको आदि लेकर अन्य प्रतिभा, बुद्धि आदि सब अनर्थान्तर हैं, अर्थात् मतिज्ञान ही हैं ।

१४—वह मतिज्ञान पांच इन्द्रिय और मन के निमित्त से होता है ।

१५—उसके चार भेद हैं-अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ।

१६—बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त, ध्रुव, अल्प, एकविध, अक्षिप्र, निःसृत, उक्त और अध्रुव इस प्रकार बारह प्रकार का अवग्रह आदि रूप ज्ञान होता है ।

१७—यह उपरोक्त भेद प्रकट रूप पदार्थ के हैं, [जो २८८ हैं ।]

१८—अप्रकट रूप पदार्थ का केवल अवग्रह ही होता हैं, अन्य ईहा आदि नहीं होते।

१९—अप्रकट रूप पदार्थ का ज्ञान नेत्र और मन से नहीं होता । [अतएव अप्रकट रूप पदार्थ के कुल ४८ भेद ही होते हैं, अर्थात् मतिज्ञान के कुल ३३६ भेद होते हैं ।]

१०—श्रुतज्ञान मतिज्ञान के निमित्त से होता है। उसके दो भेद हैं—प्रथम अंगबाह्य के अनेक भेद हैं और अंगप्रविष्ठ के आचारांग आदि बारह भेद हैं।

२१—[अवधिज्ञान दो प्रकार का होता है–
भवप्रत्यय अवधि और क्षयोपशम निमित्त अवधि]
भवप्रत्यय अवधि देव और नारकियों के ही होता है।

२२—क्षयोपशम निमित्त अवधिज्ञान मनुष्य और तिर्यंचों के होता है। वह छै प्रकार का होता है—[अनुगामी, अननुगामी, वर्द्धमान, हीयमान, अवस्थित और अनवस्थित।]

२३—मनःपर्यय ज्ञान दो प्रकार का होता है—
ऋजुमति और विपुलमति।

२४—परिणामों की विशुद्धता और अप्रतीपात (केवलज्ञान होने तक चारित्र से न गिरने) से इन दोनों में न्यूनाधिकता है। अर्थात् ऋजुमति से विपुलमति वाले के परिणाम अधिक विशुद्ध होते हैं और न विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान वाला चारित्र से ही गिर सकता है।

२५—अवधि और मनः पर्यय ज्ञान में भी विशुद्धता, क्षेत्र, स्वामी और विषय की अपेक्षा से भेद होता है।

२६—मति और श्रुतज्ञान के विषयों के जानने का नियम द्रव्यों को कुछ पर्यायों में है। अर्थात् मतिज्ञान और श्रुत ज्ञान छहों द्रव्यों की सब पर्यायों को नहीं जानते, थोड़ी २ पर्यायों को ही जान सकते हैं।

२७—अवधिज्ञान के विषय का नियम रूपी अर्थात् मूर्तिक पदार्थों में है। अर्थात् अवधि ज्ञान पुद्गलद्रव्य की पर्यायों को ही जानता है।

२८—अवधिज्ञान द्वारा जाने हुए सूक्ष्म पदार्थ के अनंतवें भाग को मनःपर्यय ज्ञान जानता है।

२९—केवलज्ञान के विषय का नियम समस्त द्रव्यों की समस्त पर्यायों में है। अर्थात् केवल ज्ञान छहों द्रव्यों की समस्त पर्यायों को एक काल में जानता है।

३०— एक जीव में एक साथ विभाग किए हुए एक से लेकर चार ज्ञान तक हो सकते हैं।

तीन अज्ञान

३१—मति, श्रुत और अवधि यह तीन ज्ञान विपर्यय भी कहलाते हैं। [उस समय यह कुमति, कुश्रुत और कुअवधि अथवा विभंग ज्ञान कहलाते हैं।]

३२—सत् और असत् पदार्थों के भेद का ज्ञान न होने से स्वेच्छा रूप यद्वा तद्वा जानने के कारण उन्मत्त के समान यह मिथ्याज्ञान भी होते हैं।

सात नय—

३३—नय सात होती हैं—

नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत।

—:o:—

द्वितीय अध्याय

जीव के भाव

१—जीव के अपने पांच भाव होते हैं—

औपशमिक, क्षायिक, मिश्र अथवा क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक।

२—उनके क्रमशः दो, नौ, अठारह, इक्कीस और तीन भेद हैं अर्थात् औपशमिक भाव दो प्रकार के हैं, क्षायिक भाव नौ प्रकार के हैं, क्षायोपशमिक भाव अठारह प्रकार के हैं, औदयिक भाव इक्कीस प्रकार के हैं और पारिणामिक भाव तीन प्रकार के हैं।

३—औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र ये दो औपशमिक भाव के भेद हैं।

४—क्षायिक भाव नौ हैं—

केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग,

क्षायिक उपभोग, क्षायिक वीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र ।

५—क्षायोपशमिक भाव अठारह हैं—

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान, कुमति, कुश्रुत, विभंग ज्ञान, चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन, अवधिदर्शन, क्षायोपशमिक दान, क्षायोपशमिक लाभ, क्षायोपशमिक भोग, क्षायोपशमिक उपभोग, क्षायोपशमिक वीर्य, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, सराग चारित्र और संयमासंयम (देशव्रत) ।

६—औदयिक भाव इक्कीस हैं—

मनुष्यगति, देवगति, नरक गति, तिर्यंच गति, क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसक वेद, मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व, कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या, पीत लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या ।

७—पारिणामिक भाव तीन होते हैं—

जीवत्व भव्यत्व और अभव्यत्व ।

जीव का लक्षण—

८—जीव का लक्षण उपयोग है ।

९—वह उपयोग दो प्रकार का होता है। जिनमें से प्रथम ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का होता है और द्वितीय दर्शनोपयोग चार प्रकार का होता है।

जीवों के भेद—

१०—जीव दो प्रकार के होते हैं—

संसारी और मुक्त ।

११—संसारी जीव समनस्क और अमनस्क दो प्रकार के होते हैं ।

१२—संसारी जीव त्रस और स्थावर दो प्रकार के होते हैं ।

१३—स्थावर पांच प्रकार के होते हैं—

पृथिवी कायिक, अप्कायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, और वनस्पतिकायिक।

१४—द्वीन्द्रिय आदि जीव त्रस होते हैं ।

इन्द्रियां

१५—इन्द्रियां पांच ही होती हैं ।

१६—यह इन्द्रियां दो २ प्रकार की होती हैं-
द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय ।

१७—निर्वृति* और उपकरण† को द्रव्येन्द्रिय कहते हैं ।

१८—लब्धि‡ और उपयोग§ भावेन्द्रिय हैं ।

पांचों इन्द्रिय और उनके विषय—

१९—स्पर्शन (त्वचा), रसन (जीभ), घ्राण (नासिका), चक्षु (नेत्र), और श्रोत्र (कान) यह पांच इन्द्रियां हैं ।

२०—इन पांचों इन्द्रियों के विषय क्रम से स्पर्श (हलका, भारी, रूखा, चिकना, कड़ा, नरम, ठंडा, और गरम), रस (खट्टा, मीठा, कड़ुवा, कषायला और चरपरा), गंध (सुगन्ध, दुर्गन्ध), वर्ण (काला, पीला, नीला, लाल और सफेद) और शब्द हैं ।

२१—मन का विषय श्रुतज्ञान गोचर पदार्थ है ।

षट्काय जीव—

२२—पृथिवी कायिक, अप्कायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवों के पहिली स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है ।

---

* नामकर्म के निमित्त से हुई इन्द्रियाकार रचना विशेष को निर्वृति कहते हैं । यह दो प्रकार की होती है—एक आभ्यन्तर निर्वृति, दूसरी बाह्य निर्वृति । आत्मा के प्रदेशों का इन्द्रियों के आकार रूप होना आभ्यन्तर निर्वृति है । और पुद्गल परमाणु का इन्द्रिय रूप रचना होना सो बाह्य निर्वृति है ।

† निर्वृति को जो सहायक हो उसे उपकरण कहते हैं । जैसे नेत्र में सफेद भाग, पलक आदि ।

‡ ज्ञानावरण कर्म की क्षयोपशम रूप शक्ति विशेष को लब्धि कहते हैं ।

§ लब्धि होने पर आत्मा का विषयों के प्रति परिणमन होने से आत्मा मे उत्पन्न हुए ज्ञान को उपयोग कहते हैं ।

२३—लट, चिउंटी, भौंरा और मनुष्य आदि के क्रम से एक२ इन्द्रिय अधिक२होती है।
२४—मन सहित जीवों को संज्ञी कहते हैं।

विग्रह गति—

२५—नया शरीर धारण करने के लिये की जाने वाली गति में कार्माण योग रहता है।
२६ जीव और पुद्गलों का गमन आकाश के प्रदेशों की श्रेणि का अनुसरण करके होता है।
२७—मुक्त जीव की गति वक्रता रहित (मोड़े रहित) सीधी होती है।
२८—और संसारी जीव की गति चार समय से पहिले २ विग्रहवती वा मोड़े वाली है।
२९—मोड़े रहित गति एक समय मात्र ही होती है।
३०—विग्रह गति वाला जीव एक समय, दो समय अथवा तीन समय तक *अनाहारक रहता है।

तीन जन्म—

३१—सम्मूर्छन, गर्भ, और उपपाद यह तीन जन्म होते हैं।
३२—उन तीनों जन्मों की नौ योनियां होती हैं—
सचित्त, अचित, सचित्ताचित्त, शीत, उष्ण, शीतोष्ण, संवृत, विवृत और संवृतविवृत ।
३३—जरायुज (जरायु में लिपटे हुए उत्पन्न होने वाले), अंडज (अंडे से उत्पन्न होने वाले) और पोत (जो माता के उदर से निकलते ही चलने फिरने लगें) जीवों के गर्भ जन्म होता है।
३४—चारों प्रकार के देवों और नारकी जीवों के उपपाद जन्म होता है।
३५—इनसे अवशिष्ट संसारी जीवों का सम्मूर्छन जन्म होता है।

---

* औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीर तथा छहों पर्याप्तियों के योग्य पुद्गलवर्गणा के ग्रहण को आहार कहते हैं। जीव जब तक ऐसे आहार को ग्रहण नहीं करता है, तब तक उसे अनाहारक कहते हैं।

पांच शरीर—

३६—औदारिक*, वैक्रियिक+, आहारक‡, तैजस§ और कार्मण|| यह पांच शरीर होते हैं।

३७—अगले २ शरीर पहिले २ से सूक्ष्म २ हैं। अर्थात् औदारिक से वैक्रियिक सूक्ष्म है, वैक्रियिक से आहारक सूक्ष्म है, आहारक से तैजस और तैजस से कार्मण शरीर सूक्ष्म है।

३८—किन्तु प्रदेशों+ (परमाणुओं) की अपेक्षा तैजस से पहिले पहिले के शरीर असंख्यात गुणे हैं। अर्थात् औदारिक से वैक्रियिक शरीर में असंख्यात गुणे परमाणु हैं, और वैक्रियिक से आहारक शरीर में असंख्यात गुणे परमाणु हैं।

३९—शेष के दो शरीर–तैजस और कार्मण अनंत गुणे परमाणु वाले हैं। अर्थात् आहारक से तैजस में अनंत गुणे परमाणु हैं, और तैजस से कार्माण शरीर में अनन्त गुणे परमाणु हैं।

४०—तैजस और कार्माण यह दोनों ही शरीर अप्रतीघात हैं। अर्थात् अन्य मूर्तिमान पुद्गल आदि से रुकते नहीं हैं।

---

* स्थूल अर्थात प्रधान शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं।

+ जिसमें अनेक प्रकार के स्थूल, सूक्ष्म, हलका, भारी, आदि विकार होने संभव हों उसे वैक्रियिक शरीर कहते हैं।

‡ सूक्ष्म पदार्थ के निर्णय के लिये छटे गुणस्थान वाले मुनियो के शरीर प्रगट होने वाले शरीर को आहारक शरीर कहते हैं।

§ जिससे शरीर में तेज शक्ति होती है उसे तैजस शरीर कहते हैं।

|| ज्ञानावरण आदि अष्टकर्मों के समूह को कार्माण शरीर कहते हैं।

+ आकाश के जितने प्रदेश को पुद्गल का अविभागी परमाणु घेरे उसे प्रदेश कहते हैं। जिस प्रकार मूर्तिक द्रव्य (पुद्गल) के छोटे बड़े पने का अंदाज परमाणुओं से बतलाया जाता है, उसी प्रकार अमूर्तिक द्रव्यों (जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल) का अंदाज प्रदेशों से लगाया जाता है। यहां सूक्ष्म होने के कारण इन शरीरों का अंदाजा भी प्रदेशों से ही लगाया गया है। यद्यपि शरीर नाम कर्म के द्वारा रचना होने से यह शरीर भी पौद्गलिक ही हैं।

४१—इन दोनों शरीरों का आत्मा से अनादि काल से सम्बन्ध है [और संतान को अविवक्षा से सादि सम्बन्ध भी है ।]

४२—ये दोनों शरीर समस्त संसारी जीवों के होते हैं ।

४३—एक आत्मा में विभाजित किये हुए इन दोनों शरीरों को आदि लेकर एक साथ चार शरीर तक होते हैं ।

४४—अंत का कर्माण शरीर उपभोग रहित है अर्थात् इंद्रियों द्वारा शब्द आदि विषयों के उपभोग से रहित है ।

४५—गर्भ जन्म और सम्मूर्छन जन्म वालों के आदि का औदारिक शरीर ही होता है ।

४६—उपपाद जन्म से उत्पन्न होने वालों के वैक्रियिक शरीर होता है ।

४७—वैक्रियिक शरीर लब्धि अर्थात् तपो विशेष रूप ऋद्धि की प्राप्ति के निमित्त से भी होता है ।

४८—तथा तैजस शरीर भी लब्धि प्रत्यय अर्थात् ऋद्धि होने से प्राप्त होता है ।

४९—आहारक शरीर शुभ है अर्थात् शुभ कार्य को करता है, विशुद्ध है, व्याघात रहित है तथा प्रमत्तसंयत मुनि के ही होता है ।

जीवों के वेद—

५०—नारकी और सम्मूर्छन जीव नपुंसक होते हैं ।

५१—देव नपुंसक नहीं होते । अर्थात् देवों में पुरुषलिंग और स्त्रीलिंग दो ही लिंग होते हैं ।

५२—नारकी, देव और सम्मूर्छनों के अतिरिक्त गर्भज, तिर्यञ्च, और मनुष्य तीनों वेद वाले होते हैं ।

परिपूर्ण आयु वाले जीव—

५३—देव, नारकी, चरमशरीर वाले, और असंख्यात वर्ष की आयु वाले भोगभूमि के जीव परिपूर्ण आयु वाले होते हैं । अर्थात् इनकी अकाल मृत्यु नहीं होती ।

———o:———

तृतीय अध्याय

१—नरकों की सात भूमियां हैं :—

रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमप्रभा, और महातमप्रभा।

यह सातों पृथिवी एक दूसरी के नीचे २, तीन वातवलय और आकाश के आश्रय स्थिर हैं, अर्थात् समस्त भूमियां घनोदधि वातवलय के आधार हैं, घनोदधि वातवलय घनवातवलय के आधार है, घनवातवलय तनुवातवलय के आधार है, तनुवातवलय आकाश के आधार है और आकाश स्वयं अपने ही आधार है।

२—प्रथम पृथिवी में तीस लाख, दूसरी में पच्चीस लाख, तीसरी में पन्द्रह लाख, चौथी में दश लाख, पांचवीं में तीन लाख, छटी में पांच कम एक लाख और सातवीं में कुल पांच ही नरक अर्थात् नारकावास हैं।

३—नारकी जीव सदा ही अशुभतर लेश्या वाले, अशुभतर परिणाम वाले, अशुभतर देह के धारक, अशुभतर वेदना वाले, और अशुभतर विक्रिया वाले होते हैं।

४—वह परस्पर एक दूसरे को दुःख उत्पन्न करते रहते हैं।

५—तीसरे नरक तक उन नारकी जीवों को संक्लिष्ट परिणाम वाले असुर-कुमार देव भी दुःखी किया करते हैं।

६—प्रथम नरक की उत्कृष्ट (अधिक से अधिक) आयु एक सागर, दूसरे की तीन सागर, तीसरे की सात सागर, चौथे की दश सागर, पांचवें को सतरह सागर, छटे की बाइस सागर और सातवें नरक की उत्कृष्ट आयु तेंतीस सागर की है।

मध्य लोक का वर्णन—

७—[इस पृथ्वी पर] जम्बूद्वीप आदि तथा लवण समुद्र आदि उत्तम २ नाम वाले द्वीप और समुद्र हैं।

८—प्रत्येक द्वीप समुद्र गोल चूड़ी के आकार, पहिले २ द्वीप तथा समुद्र को घेरे हुए और एक दूसरे से दुगुने २ विस्तार वाला है।

जम्बू द्वीप—

९—उन सब द्वीप समुद्रों के बीच में सुमेरु पर्वत को नाभि के समान धारण करने वाला, गोलाकार तथा एक लाख योजन लम्बा चौड़ा जम्बू द्वीप है।

१०—इस जम्बू द्वीप में भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत, और ऐरावत यह सात क्षेत्र हैं।

११—उन सात क्षेत्रों का विभाग करने वाले, पूर्व से पश्चिम तक लंबे—हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी यह छह क्षेत्रों को धारण करने वाले अर्थात् वर्षधर पर्वत हैं।

१२—हिमवान् पर्वत सुवर्णमय अर्थात् पीतवर्ण का है, महाहिमवान् सफेद चांदी के समान रंग वाला है, निषध पर्वत ताये हुए सुवर्ण के समान है, नील पर्वत वैडूर्यमय अर्थात् मोर के कंठ के समान नीले रंग का है, रुक्मी पर्वत चांदी के समान श्वेत वर्ण है और छटा शिखरी पर्वत सुवर्ण के समान पीत वर्ण का है।

१३—उनके पसवाड़े नाना प्रकार के रंग तथा प्रभा वाली मणियों से चित्रित हो रहे हैं। वह ऊपर, नीचे और मध्य में एक से लम्बे चौड़े—दीवार के समान हैं।

१४—उन छहों पर्वतों के ऊपर क्रम से निम्नलिखित छै ह्रद हैं—पद्म, महापद्म, तिगिंछ, केसरि, महापुण्डरीक और पुण्डरीक।

१५—इनमें से पहला पद्म सरोवर पूर्व से पश्चिम तक एक सहस्र योजन लम्बा और उत्तर से दक्षिण तक पांच सौ योजन चौड़ा है।

१६—वह पद्म सरोवर दश योजन गहरा है।

१७—उस पद्महृद के बीच में एक योजन का लंबा चौड़ा एक कमल है।

१८—इस प्रथम सरोवर और कमल से अगले २ तालाब और कमल [तीसरे तक] दुगुने हैं।

१९—इन छहों कमलों में निम्नलिखित छै देवियां सामानिक और पारिषद् के देवों सहित निवास करतीं हैं—

श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी।

इनकी आयु एक २ पल्य की होती है।

२०—उन सातों क्षेत्रों में क्रमशः दो २ के जोड़े से निम्नलिखित चौदह नदियां बहती हैं—

गंगा, सिन्धु, रोहित्, रोहितास्या, हरित्, हरिकान्ता, सीता, सीतोदा, नारी, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता और रक्तोदा।

२१—इन सात युगल में से पहली २ नदियां पूर्व की ओर जाती हुई पूर्व समुद्र में मिलती हैं।

२२—और शेष सात नदियां पश्चिम की ओर जाती हुई पश्चिम के समुद्र में मिलती हैं।

२३—गंगा सिन्धु आदि नदियां चौदह २ हज़ार नदियों के परिवार सहित हैं। अर्थात् इनको चौदह २ हजार सहायक नदियां हैं।

२४—भरत क्षेत्र का उत्तर दक्षिण विस्तार पांच सौ छब्बीस सही छै बटा उन्नीस ($५२६\frac{६}{१९}$) योजन है।

२५—भरतक्षेत्र से आगे विदेह क्षेत्र तक पर्वत और क्षेत्र दुगुने २ विस्तार वाले हैं।

२६—विदेह क्षेत्र से उत्तर के तीन पर्वत और तीन क्षेत्र विदेह क्षेत्र से दक्षिण के पर्वतों और क्षेत्रों के बराबर विस्तार वाले हैं।

२७—इनमें से भरत और ऐरावत क्षेत्र में उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के छै २ कालों में [प्राणियों के आयु, काय, भोग, उपभोग, सम्पदा, वीर्य, और बुद्धि आदि] बढ़ते और घटते रहते हैं।

२८—उन भरत और ऐरावत के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों की पांच पृथिवी ज्यों की त्यों नित्य हैं। अर्थात् उनमें कालचक्र की हानि और वृद्धि नहीं होती।

२९—हैमवत क्षेत्र के मनुष्यों की आयु एक पल्य, हरिवर्ष वालों की दो पल्य और देवकुरु वालों की तीन पल्य होती है।

३०—इन दक्षिण के क्षेत्रों के समान ही उत्तर के क्षेत्रों की रचना और आयु है।

३१—विदेह क्षेत्रों में संख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्य होते हैं।

३२—भरत क्षेत्र जम्बूद्वीप का एक सौ नव्वेवां ($\frac{१}{१९०}$) भाग है।

अढाई द्वीप का वर्णन—

३३—धातकीखंड नाम के दूसरे द्वीप में भरत आदि क्षेत्र दो २ हैं।

३४—पुष्करद्वीप के आधे भाग में भी भरत आदि क्षेत्र दो २ हैं।

३५—मनुष्य मानुषोत्तर पर्वत से पहिले २ ही रहते हैं।

३६—मनुष्यों के दो भेद हैं—आर्य और म्लेच्छ।

३७—देवकुरु तथा उत्तरकुरु को छोड़कर पांच भरत, पांच ऐरावत और पांच विदेह इस प्रकार पन्द्रह कर्मभूमियां हैं।

३८—मनुष्यों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य और जघन्य अन्तर्मुहूर्त है।

३९—तिर्यञ्चों की भी उत्कृष्ट आयु तीन पल्य और जघन्य अन्तर्मुहूर्त होती है।

—:o:—

चतुर्थ अध्याय

चार प्रकार के देव—

१—देवों के चार समूह हैं—(भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक)।

२—भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्कों में कृष्ण, नील, कापोत और पीत ये चार लेश्या होती हैं।

३—भवनवासियों के दश भेद, व्यन्तरों के आठ, ज्योतिष्कों के पांच और कल्पोपपन्नों के बारह भेद होते हैं।

† देखो अध्याय ४ सूत्र १७.

देवों के इन्द्र आदि दश भेद—

४—इन भेदों में से भी प्रत्येक के निम्नलिखित दश २ भेद होते हैं—

इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद्, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य, और किल्बिषिक ।

५—व्यन्तर और ज्योतिष्कों में त्रायस्त्रिंश और लोकपाल नहीं होते ।

६—भवनवासी और व्यन्तरों के प्रत्येक भेद में दो दो इन्द्र होते हैं ।

देवों का काम सेवन—

७—भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष्क, सौधर्म स्वर्ग और ईशान स्वर्ग के देव [मनुष्यों के समान] शरीर से काम सेवन करते हैं ।

८—ऊपर के स्वर्गों के देव केवल स्पर्श करने, रूप देखने, शब्द सुनने और मन से ही काम सेवन का रस ले लेते हैं ।

९—स्वर्गों (कल्पों) के परे के देव काम सेवन रहित हैं ।

देवों के अवान्तर भेद—

१०—भवनवासियों के दश भेद हैं—

असुरकुमार, नागकुमार, विद्युतकुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमार ।

११—व्यंतरों के आठ भेद हैं—

किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच ।

१२—ज्योतिष्कों के पांच भेद हैं—

सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णकतारे ।

१३—यह सब ज्योतिष्कदेव मनुष्य लोक अर्थात् अढ़ाईद्वीप और दो समुद्रों में सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा देते हुए निरंतर गमन करते रहते हैं ।

१४—इन के द्वारा ही समय का विभाग किया जाता है ।

१५—मनुष्य लोक से बाहिर के ज्योतिष्कदेव निश्चित अर्थात् गति रहित हैं ।

१६—इनके ऊपर विमानों में रहने वाले देव वैमानिक कहलाते हैं ।

१७—वैमानिकों के दो भेद होते हैं—

कल्पोपपन्न और कल्पातीत ।

स्वर्ग और उनके ऊपर की रचना—

१८—यह सब निम्नलिखित क्रम से ऊपर २ हैं ।

१९—सौधर्म, ईशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म ब्रह्मोत्तर, लांतव कापिष्ठ, शुक्र महाशुक्र, सतार सहस्रार, आनत प्राणत और आरण अच्युत में कल्पोपपन्न देव रहते हैं । और नवग्रैवेयक के नौ पटल, नौ अनुदिश के एक पटल तथा विजय, वैजयंत, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि नाम के पांच अनुत्तर विमानों के एक पटल में कल्पातीत देव रहते हैं । (यह सब अहमिन्द्र कहलाते हैं ।)

२०— ऊपर २ के वैमानिकों की आयु, प्रभाव, सुख, द्युति, लेश्या की विशुद्धता, इन्द्रिय विषय और अवधि ज्ञान का विषय अधिक २ है ।

२१— किन्तु गमन, शरीर की उच्चता, परिग्रह और अभिमान ऊपर २ के देवों का कम २ है ।

२२— सौधर्म ईशान में पीत लेश्या; सानत्कुमार माहेन्द्र में पीत पद्म दोनों; ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव और कापिष्ठ में पद्म लेश्या; शुक्र, महाशुक्र, सतार और सहस्रार में पद्म शुक्ल दोनों तथा आनत आदि शेष विमानों में शुक्ल लेश्या है । परन्तु अनुदिश और अनुत्तर विमानों में परम शुक्ल लेश्या होती है ।

२३— ग्रैवेयकों से पहिले २ के सोलह स्वर्ग कल्प कहलाते हैं ।

लौकान्तिक देव—

२४—पांचवें स्वर्ग ब्रह्मलोक के अंत में रहने वाले लौकान्तिक देव कहलाते हैं ।

२५—इनके आठ भेद होते हैं—

सारस्वत, आदित्य, वन्हि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध, और अरिष्ट ।

२६—विजय आदि चार विमानों के देव दो जन्म लेकर मोक्ष जाते हैं ।

तिर्यञ्च जीव—

२७—देव, नारकी और मनुष्यों के अतिरिक्त शेष सब जीव तिर्यञ्च हैं।

देवों की आयु—

२८—असुरकुमारों की आयु एक सागर, नागकुमारों की तीन पल्य, सुपर्णकुमारों की अढाई पल्य, द्वीपकुमारों की दो पल्य और शेष छह कुमारों की उत्कृष्ट आयु डेढ़ डेढ़ पल्य की है।

२९—सौधर्म और ईशान स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट आयु दो सागर से कुछ अधिक है।

३०—सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट आयु सात सागर से कुछ अधिक है।

३१—ब्रह्म ब्रह्मोत्तर के देवों की आयु दश सागर से कुछ अधिक, लान्तव और कापिष्ठ में चौदह सागर से कुछ अधिक, शुक्र और महाशुक्र में सोलह सागर से कुछ अधिक, सतार और सहस्रार में अठारह सागर से कुछ अधिक, आनत और प्राणत में बीस सागर की, तथा आरण और अच्युत स्वर्ग में बाईस सागर की उत्कृष्ट आयु है।

३२—आरण और अच्युत युगल से ऊपर नव ग्रैवेयकों, नव अनुदिशों, विजयादिक चार विमानों और सर्वार्थसिद्धि विमान में एक २ सागर आयु अधिक है। अर्थात् प्रथम ग्रैवेयक में तेईस सागर, नवम ग्रैवेयक में इकत्तीस सागर, नव अनुदिशों में बत्तीस सागर और पांचो अनुत्तर विमानों में तेंतीस सागर उत्कृष्ट आयु है।

३३—सौधर्म ईशान स्वर्ग की जघन्य आयु एक पल्य से कुछ अधिक है।

३४—पहिले २ युगल की उत्कृष्ट आयु अगले अगले युगलों में जघन्य है।

३५—नारकी जीवों की जघन्य आयु भी इसी प्रकार दूसरे तीसरे आदि नरकों में पूर्व २ की उत्कृष्ट आगे २ जघन्य है।

३६—प्रथम नरक की जघन्य आयु दश सहस्र वर्ष है।

३७— भवन वासियों की जघन्य आयु भी दश हजार वर्ष है।

३८— व्यन्तरों की जघन्य आयु भी दश हजार वर्ष है।

३९— व्यन्तरों की उत्कृष्ट आयु एक पल्य से कुछ अधिक है।

४०— ज्योतिष्कों की उत्कृष्ट आयु भी एक पल्य से कुछ अधिक है।

४१— ज्योतिष्कों की जघन्य आयु पल्य का आठवां भाग है।

४२— सभी लौकान्तिक देवों की उत्कृष्ट और जघन्य आयु आठ सागर है।

———.o:———

पंचम अध्याय

छै द्रव्य—

१—धर्म, अधर्म, आकाश और काल अजीवकाय अर्थात् अचेतन और बहुप्रदेशी पदार्थ हैं।

२—उक्त चारों पदार्थ द्रव्य हैं।

३—जीव भी द्रव्य हैं।

४—यह सब द्रव्य [इसी अध्याय के ३९ वें सूत्र के काल द्रव्य सहित] नित्य अर्थात कभी न नष्ट होने वाले, अवस्थित अर्थात् संख्या में न घटने बढ़ने वाले और अरूपी हैं।

५—किन्तु इनमें से केवल पुद्गल द्रव्य रूपी हैं।

६—धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, और आकाश द्रव्य एक २ ही हैं।

७—यह तीनों ही द्रव्य निष्क्रिय भी हैं।

द्रव्यों के प्रदेश—

८—धर्म, अधर्म और एक जीव द्रव्य के प्रदेश असंख्यात २ हैं।

९—आकाश के अनन्त प्रदेश हैं [किन्तु लोकाकाश के असंख्यात प्रदेश हैं]।

१०—पुद्गलों के प्रदेश [स्कन्धों के अनुसार] संख्यात, असंख्यात और अनंत हैं।

११—पुद्गल परमाणु के एक प्रदेश मात्र होने से प्रदेश नहीं कहे गये हैं।

द्रव्यों का अवगाह—

१२—इन सब द्रव्यों का अवगाह (स्थिति) लोकाकाश में है।

१३—धर्म और अधर्म द्रव्य सम्पूर्ण लोकाकाश में हैं।

१४—पुद्गलों का अवगाह लोक के एक प्रदेश आदि में है।

१५—जीवों का अवगाह लोक के असंख्यातवें भाग आदि में है।

जीव के छोटे बड़े शरीर को ग्रहण करने का दृष्टान्त—

१६—जीव के प्रदेश संकोच और विस्तार से दीपक के समान [छोटे बड़े सभी शरीरों में व्याप्त रहते हैं।]

द्रव्यों का उपकार

१७—धर्म द्रव्य का उपकार जीवों और पुद्गलों को गमन में सहायता देना तथा अधर्म द्रव्य का उपकार स्थिति में सहायता देना है।

१८—सब द्रव्यों को जगह देना आकाश द्रव्य का उपकार है।

१९—शरीर, वचन, मन और श्वासोच्छ्वास आदि बनना पुद्गलों का उपकार है।

२०—सुख, दुःख, जीना और मरना यह उपकार भी पुद्गलों के ही हैं।

२१—जीवों का परस्पर उपकार है।

२२—वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व काल द्रव्य के उपकार हैं।

पुद्गल द्रव्य का वर्णन—

२३—स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण वाले पुद्गल होते हैं।

२४—शब्द, बंध, सूक्ष्मता, स्थूलता, संस्थान, भेद, तम, छाया, आतप (धूप) और उद्योत सहित भी पुद्गल होते हैं। [सारांश यह है कि यह भी पुद्गल की ही पर्यायें होती हैं।]

२५—पुद्गलों के दो भेद होते हैं—
अणु और स्कन्ध।

२६—पुद्गलों के स्कन्ध भेद (टूटने) और संघात (जुड़ने) से उत्पन्न होते हैं।

२७—किन्तु अणु भेद से ही होता है, संघात से नहीं होता।

२८ नेत्र इन्द्रिय से दिखाई देने वाला स्कन्ध भेद और संघात दोनों से ही होता है।

द्रव्य का लक्षण—

२९—द्रव्य का लक्षण सत है।

३०—उत्पाद (उत्पत्ति), व्यय (विनाश), और ध्रौव्य (स्थिर मौजूदगी) सहित को सत् कहते हैं

३१—जो तद्भाव रूप से अव्यय अर्थात् तीनों काल में विनाश रहित हो उसे नित्य कहते हैं।

३२—मुख्य करने वाली अर्पित और गौण करने वाली अनर्पित से वस्तु की सिद्ध होती है।

स्कन्धों के बन्ध का वर्णन—

३३—परमाणुओं के स्कन्धों का बन्ध स्निग्धता अथवा चिकनाई और रूक्षता अर्थात् रूखेपन से होता है।

३४— जघन्यगुण* सहित परमाणु में बंध नहीं होता।

३५—गुण की समानता होने पर सदृशों का बन्ध नहीं होता।

३६—किंतु दो अधिक गुण वालों का ही बन्ध होता है।

३७—और बन्ध अवस्था में अधिक गुण सहित पुद्गल अल्प गुण सहित को परिणमाते हैं। अर्थात् अल्पगुण के धारक स्कन्ध अधिक गुण के स्कन्ध रूप हो जाते हैं।

द्रव्य का दूसरा लक्षण

३८—गुण और पर्याय वाला द्रव्य होता है।

---

*जिस परमाणु में स्निग्धता अथवा रूक्षता का एक अविभागी प्रतिच्छेद रह जावे वह जघन्य गुण वाला है।

काल द्रव्य—

३९—काल भी द्रव्य है ।

४०—वह काल द्रव्य अनन्त समय वाला है ।

गुण का लक्षण—

४१—जो द्रव्य के नित्य आश्रित हों अर्थात् बिना द्रव्य के आश्रय के न रह सकें तथा स्वयं अन्य गुणों से रहित हों वह गुण हैं ।

पर्याय का लक्षण—

४२—द्रव्यों के जिस रूप में वह हैं उसी रूप में होने को परिणाम या पर्याय कहते हैं ।

———o:———

षष्ठ अध्याय

आस्रव का वर्णन—

१—काय, वचन और मन की क्रिया को योग कहते हैं ।

२—वह योग ही कर्मों के आगमन का द्वार रूप आस्रव है ।

३—शुभ परिणामों से उत्पन्न हुआ योग पुण्य प्रकृतियों के आस्रव का कारण है तथा अशुभ परिणामों से उत्पन्न हुआ योग पापरूप कर्मप्रकृतियों के आस्रव का कारण है ।

४—कषाय सहित जीवों के होने वाला सांपरायिक आस्रव तथा कषायरहित जीवों के होने वाला ईर्यापथ आस्रव होता है ।

साम्परायिक आस्रव के भेद—

५—प्रथम साम्परायिक आस्रव के निम्नलिखित भेद हैं—
पांच इन्द्रिय, चार कषाय, पांच अव्रत, और पचीस क्रिया ।

६—उस आस्रव में भी तीव्रभाव, मन्दभाव, ज्ञातभाव, अज्ञातभाव, अधिकरण और वीर्य की विशेषता से न्यूनाधिकता होती है ।

आस्रव के अधिकरण—

७—आस्रव का अधिकरण (आधार) जीव और अजीव दोनों हैं।

जीवाधिकरण के १०८ भेद—

८—आदि के जीवाधिकरण के निम्न भेद हैं:—

संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ। फिर उनको मन, वचन और काय योग से करना (कृत), कराना (कारित) अथवा करते हुए को भला मानना (अनुमोदना)। फिर उसमें क्रोध, मान, माया अथवा लोभ करना। इस प्रकार तीन, तीन, तीन और चार को परस्पर गुणा देने से एक सौ आठ भेद होते हैं।

अजीवाधिकरण—

९—निर्वर्तनाधिकरण, निक्षेपाधिकरण, संयोगाधिकरण और निसर्गाधिकरण यह चार अजीवाधिकरण के भेद हैं।

आठों कर्मों के आस्रव के कारण—

१०—ज्ञान तथा दर्शन के विषय में प्रदोष, निन्हव, मात्सर्य, अंतराय, आसादन और उपघात करने से ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्मों का आस्रव होता है।

११—स्वयं दुःख, शोक, ताप, आक्रन्दन, वध, और परिदेवन करने, दूसरे को कराने अथवा दोनों को एक साथ उत्पन्न करने से असाता वेदनीय कर्म का आस्रव होता है।

१२—प्राणियों और व्रतियों में दया, दान, सरागसंयम आदि योग, क्षमा और शौच आदि भावों से साता वेदनीय कर्म का आस्रव होता है।

१३—केवलज्ञानी, शास्त्र, मुनियों के संघ, अहिंसामय धर्म, और देवों का अवर्णवाद करने से दर्शनमोहनीय कर्म का आस्रव होता है।

१४—कषायों के उदय से तीव्र परिणाम होने से चारित्र मोहनीय कर्म का आस्रव होता है।

१५—बहुत आरम्भ करने और बहुत परिग्रह रखने से नरक आयु कर्म का आस्रव होता है।

१६—कुटिल स्वभाव रखने से तिर्यंच आयु कर्म का आस्रव होता है।

१७—थोड़ा आरम्भ करने और थोड़ा परिग्रह रखने से मनुष्य आयु का आस्रव होता है।

१८—स्वाभाविक कोमलता से भी मनुष्य आयु का आस्रव होता है।

१९—सातों शील तथा अहिंसा आदि पांचों व्रतों का पालन न करने से चारों गतियों का आस्रव होता है।

२०—सरागसंयम, संयमासंयम (देशव्रत) अकाम निर्जरा और बालतप से देव आयु कर्म का आस्रव होता है।

२१—सम्यग्दर्शन भी देव आयु का कारण है।

२२—मन, वचन और काय के योगों की कुटिलता और अन्यथा प्रवृत्ति से अशुभ नाम कर्म का आस्रव होता है।

२३—इसके विपरीत मन, वचन और काय की सरलता और विसंवाद न करने से शुभ नाम कर्म का आस्रव होता हैं।

२४—१ दर्शन विशुद्धि, २ विनयसम्पन्नता ३ शीलों और व्रतों का अतिचार रहित पालन करना, ४ निरन्तर ज्ञान के अभ्यास में रहना, ५ संसार के दुखों से भयभीत होना ६ शक्ति अनुसार दान करना, ७ शक्ति अनुसार तप करना ८ मुनियों की सेवा करना, ९ रोगी मुनियों की परिचर्या करना, १० अर्हद्भक्ति ११ आचार्य भक्ति, १२ बहुश्रुत भक्ति, १३ प्रवचन भक्ति, १४ सामायिक स्तवन, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग इन छह आवश्यकीय क्रियाओं में कमी न करना, १५ जैनधर्म का प्रचार करने रूप मार्ग-प्रभावना और १६ सहधर्मी जन से अत्यन्त प्रेम मानना—यह सोलह भावनाएं तीर्थंकर प्रकृति के आस्रव का कारण हैं।

२५—पर की निन्दा करने, अपनी प्रशंसा करने, पर के विद्यमान गुणों को

छिपाने और अपने अविद्यमान गुणों को प्रगट करने से नीच गोत्र कर्म का आस्रव होता है ।

२६—इसके विपरीत अपनी निंदा करने, पर की प्रशंसा करने, अपने विद्यमान गुणों को छिपाने पर के गुणों को प्रकाशित करने और अपने से गुणाधिक के सामने विनय रूप से रहने तथा गुणों में बड़ा होते हुए भी मद न करने (अनुत्सेक) से उच्चगोत्र कर्म का आस्रव होता है ।

२७—दूसरे के दान, भोग आदि में विघ्न करने से अन्तराय कर्म का आस्रव होता है ।

—:o:—

सप्तम अध्याय

पांच व्रत—

१—हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह से ज्ञान पूर्वक विरक्त होना व्रत है ।

२—उक्त पांचों पापों का एक देश त्याग करना अणुव्रत कहलाता है । और पूर्ण त्याग करना महाव्रत है ।

३—उन व्रतों को स्थिर करने के लिये प्रत्येक व्रत की पांच २ भावनाएं हैं ।

४—वचनगुप्ति, मनो गुप्ति, ईर्यासमिति, आदाननिक्षेपण समिति और आलोकितपान भोजन यह पांच अहिंसाव्रत की भावनाएं हैं ।

५— क्रोध का त्याग, लोभ का त्याग, भय का त्याग, हास्य का त्याग और शास्त्र के अनुसार निर्दोष वचन बोलना यह पांच सत्यव्रत की भावनाएं हैं ।

६—खाली घर में रहना, किसी के छोड़े हुए स्थान में रहना, अन्य को रोकना नहीं, शास्त्रविहित आहार की विधि को शुद्ध रखना और सहधर्मी भाइयों से विसंवाद नहीं करना यह पांच अचौर्यव्रत की भावनाएं हैं ।

७—स्त्रियों में प्रीति उत्पन्न करने वाली कथाओं का त्याग, स्त्रियों के मनो-

हर अंगों को देखने का त्याग, पूर्वकाल में भोगे हुए भोगों को स्मरण करने का त्याग, पौष्टिक तथा प्रिय रसों का त्याग और अपने शरीर को शृंगार युक्त करने अथवा सजाने का त्याग यह पांच ब्रह्मचर्य व्रत की भावनाएं हैं।

८—पांचों इन्द्रियों के स्पर्श रस आदि इष्ट अथवा अनिष्ट रूप पांचों विषयों में राग द्वेष का त्याग करना परिग्रह त्याग व्रत की पांच भावनाएं हैं।

९—हिंसा आदि पांचों पापों में इस लोक में दण्ड मिलने तथा परलोक में पाप बन्ध होने का चिन्तवन करे।

१०—अथवा यह चिन्तवन करे कि यह पांचों पाप दुःख रूप ही हैं।

११—सर्व साधारण जीवों में मैत्री भावना, गुणाधिकों में प्रमोद भावना, दुःखियों में कारुण्य भावना और अविनयी अथवा मिथ्यादृष्टियों में माध्यस्थ भावना रखे।

१२—अथवा संवेग* और वैराग्य† के लिये जगत् और काय के स्वभाव का भी बारम्बार चिन्तवन करे।

पांचों पापों के लक्षण—

१३—प्रमाद के योग से द्रव्य§ अथवा भाव प्राणों‡ का वियोग करना हिंसा है।

१४—असत् वचन कहना अनृत अथवा असत्य है।

१५—बिना दी हुई वस्तु को ले लेना चोरी है।

१६—मैथुन करना अब्रह्म अर्थात् कुशील है।

१७—[चेतन अचेतन रूप परिग्रह में] ममत्वरूप परिणाम ही परिग्रह है।

१८— जो शल्य रहित है वही व्रती है।

---

* संसार के दुःख से डरना, † संसार से विरक्त होना, § पांच इन्द्रिय, मन बल, वचन बल कायबल, आयु और श्वासोच्छ्वास यह दश प्राण हैं, ‡आत्मा के ज्ञान दर्शन आदि स्वभावों को भाव प्राण कहते हैं।

१९—[व्रती जीव दो प्रकार के होते हैं], अगारी (गृहस्थी) और गृहत्यागी साधु ।

अणुव्रती श्रावक

२०—अणुव्रतों का पालन करने वाले को अगारी कहते हैं ।

२१—दिग्विरति, देशविरति, अनर्थदंडविरति [इन तीन गुण व्रतों] सामायिक, प्रोषधोपवास, उपभोगपरिभोग परिमाण और अतिथिसंविभाग व्रत [इन चार शिक्षाव्रतों का] भी अगारी पालन करे ।

२२—और मृत्यु के समय होने वाली सल्लेखना का पालन करे ।

व्रतों और शीलों के अतिचार

२३—शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टिप्रशंसा और अन्यदृष्टिसंस्तव यह पांच सम्यग्दर्शन के अतीचार हैं ।

२४—पांचों व्रत और सात शीलों के भी क्रम से पांच २ अतीचार हैं ।

२५—बंध, वध, छेद, अत्यन्त बोझ लादना, और अन्न पानी न देना यह पांच अहिंसाणुव्रत के अतीचार हैं ।

२६—झूठा उपदेश देना, किसी की गुप्त बात को प्रगट कर देना, झूठे स्टाम्प आदि लिखना, किसी की धरोहर को अपना लेना, और किसी की चेष्टा आदि से उसके मन की बात को जानकर प्रगट कर देना यह पांच सत्याणुव्रत के अतीचार हैं ।

२७—चोरी करने का उपाय बताना, चोरी की वस्तु को लेना, राज्य (देश) के विरुद्ध चलना, नाप और तोल के बाट आदि को कमती बढ़ती रखना, और असली माल में खोटा माल मिला कर बेचना (प्रतिरूपक व्यवहार) यह पांच अचौर्याणुव्रत के अतीचार हैं ।

२८—दूसरे का विवाह करना या कराना, परिगृहीतेत्वरिकागमन, अपरिगृहीतेत्वरिकागमन, अनंगक्रीडा, और कामतीव्राभिनिवेश* यह पांच ब्रह्मचर्याणुव्रत के अतीचार हैं ।

---

* इनका लक्षण इसी ग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्र जैनागमसमन्वय के पृ० १७० पर देखो

२९—क्षेत्रवास्तु, हिरण्यसुवर्ण, धनधान्य, दासीदास और कुप्य इन पांचों के परिमाण को उल्लंघन करना परिग्रह परिमाणव्रत के पांच अतीचार हैं।

३०—ऊर्ध्वातिक्रम, अधोऽतिक्रम, तिर्यगतिक्रम, क्षेत्रवृध्दि और स्मृत्यंतराधान यह पांच दिग्व्रत के अतिचार हैं।

३१—आनयन, प्रेष्यप्रयोग, शब्दानुपात, रूपानुपात और पुद्गलक्षेप यह पांच देशव्रत के अतिचार हैं।

३२—कन्दर्प, कौत्कुच्य, मौखर्य, असमीक्ष्याधिकरण, और उपभोगपरिभोगानर्थक्य यह पांच अनर्थदंडव्रत के अतिचार हैं।

३३—तीन प्रकार के योग दुःप्रणिधान, अनादर और स्मृत्यनुपस्थान यह पांच सामायिकव्रत के अतिचार हैं।

३४—अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जितोत्सर्ग, अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जितादान, अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित संस्तरोपक्रमण, अनादर और स्मृत्यनुपस्थान यह पांच प्रोषधोपवास व्रत के अतिचार हैं।

३५—सचित्त, सचित्त सम्बन्ध, सचित्तसम्मिश्र, अभिषव और दुःपक्व ऐसे पांच प्रकार के पदार्थों का आहार करना उपभोग परिभोग परिमाणव्रत के पांच अतिचार हैं।

३६—सचित्तनिक्षेप, सचित्तपिधान, परव्यपदेश, मात्सर्य और कालातिक्रम यह पांच अतिथि संविभाग व्रत के अतिचार हैं।

३७—जीविताशंसा, मरणाशंसा, मित्रानुराग, सुखानुबंध और निदान यह पांच सल्लेखनामरण के अतिचार हैं।

दान का वर्णन—

३८—[अपने और पराये] उपकार के लिये अपने [पदार्थ] का त्याग करना दान है।

समणोवासए णं भंते! तहारूवं समणं वा जाव पडिला-भेमाणे किं चयति? गोयमा! जीवियं चयति दुच्चयं चयति

३९—विधिविशेष, द्रव्यविशेष, दातारविशेष और पात्रविशेष के कारण उस दान में भी विशेषता होती है।

———:o:———

अष्टम अध्याय

बंध के कारण—

१—मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग यह पांच बन्ध के कारण हैं।

बंध का स्वरूप—

२—जीव कषाय सहित होने से कर्मों के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है वह बंध है।

बंध के भेद—

३—प्रकृति बन्ध, स्थिति बन्ध, अनुभाग बन्ध और प्रदेश बन्ध यह चार उस बन्ध की विधियां (भेद) हैं।

प्रकृति बंध—आठों कर्मों की प्रकृतियां—

४—आदि का प्रकृति बन्ध, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय इस तरह आठ प्रकार का है। [इनमें से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय यह चार घाति कर्म हैं और शेष चार अघाति कर्म हैं।]

५—उन कर्मों के क्रम से पांच, नौ, दो अट्ठाईस, चार, बयालीस, दो और पांच भेद हैं।

दुक्करं करेति दुल्लहं लहइ बोहिं बुज्झइ तओ पच्छा सिज्झति जाव अंतं करेति।

व्याख्याप्रज्ञप्ति शतक ७ उ० १ सूत्र २६४

इस सूत्र के आगमपाठों में इस पाठ को भी मिला लेना चाहिये।

६—मति ज्ञानावरण, श्रुत ज्ञानावरण, अवधि ज्ञानावरण, मनःपर्यय ज्ञानावरण, और केवल ज्ञानावरण यह पांच भेद ज्ञानावरण कर्म के हैं।

७—चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण अवधि दर्शनावरण, केवल दर्शनावरण, निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला, और स्त्यानगृद्धि यह नौ प्रकृति दर्शनावरण कर्म की हैं।

८—सातावेदनीय और असातावेदनीय यह दो प्रकृति वेदनीय कर्म की हैं।

९—मोहनीय कर्म के दो भेद हैं, दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय इनमें से दर्शन मोहनीय के तीन भेद होते हैं—

सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व।

चारित्रमोहनीय के दो भेद होते हैं—

कषाय वेदनीय और नोकषाय वेदनीय।

अकषाय वेदनीय अर्थात् नोकषाय वेदनीय के नौ भेद हैं—

हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, और नपुंसकवेद।

कषाय वेदनीय के सोलह भेद होते हैं।

अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ, अप्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ, प्रत्याख्यान क्रोध, मान माया लोभ और संज्वलन क्रोध मान माया और लोभ, [यह मोहनीय कर्म की अट्ठाइस प्रकृतियां हैं।]

१०—नारकायु, तैर्यगायु, मानुषायु और देवायु यह चार आयु कर्म की प्रकृतियां हैं।

११—गति, जाति, शरीर, अंगोपांग, निर्माण, बन्धन, संघात, संस्थान, संहनन, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, आनुपूर्व्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, विहायोगति, प्रत्येक शरीर, साधारण शरीर, त्रस, स्थावर, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, शुभ, अशुभ, सूक्ष्म, बादर, पर्याप्ति, अपर्याप्ति, स्थिर, अस्थिर, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति और

तीर्थंकरत्व यह बयालीस नाम कर्म* की मूल प्रकृतियां हैं ।

१२—उच्च गोत्र और नीच गोत्र यह दो गोत्र कर्म की प्रकृतियां हैं ।

१३—दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य का विघ्न करना रूप पांच प्रकृतियां अन्तराय कर्म की हैं ।

स्थिति बन्ध—

१४—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अंतरायकर्म की उतकृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागर की है ।

१५—मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर की है।

१६—नाम और गोत्र कर्म की उतकृष्ट स्थिति बीस कोड़ाकोड़ी सागर की है

१७—आयु कर्म की उतकृष्ट स्थिति तेंतीस सागर की है।

१८—वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति बारह मुहुर्त की है।

१९—नाम और गोत्र कर्म की जघन्य स्थिति आठ मुहुर्त की है।

२०—शेष ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय, और आयु कर्मों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहुर्त है।

अनुभाग बन्ध—

२१—कर्मों का जो विपाक† है सो अनुभव अथवा अनुभाग है।

२२—वह अनुभाग बंध कर्म की प्रकृतियों के नामानुसार होता है।

२३—अनुभव के पश्चात् उन कर्मों की निर्जरा हो जाती है।

प्रदेश बन्ध—

२४—ज्ञानावरण आदि कर्मों की प्रकृतियों के नामानुसार कारणभूत समस्त भावों अथवा सब समयों में मन वचन काय की क्रिया रूप योगों की

---

* नाम कर्म की उत्तर प्रकृतियां ९३ हैं, जिनका वर्णन इस ग्रन्थ में पृष्ठ १८७ से १९३ तक किया गया है।

† बद्ध कर्मों में फलदान शक्ति पड़कर उनके उदय में आने पर अनुभव होने को *विपाक कहते हैं।*

विशेषता से आत्मा के समस्त प्रदेशों में एक क्षेत्रावगाह रूप से स्थित जो सूक्ष्म अनंतानंत कर्मपुद्गलों के प्रदेश हैं उनको प्रदेश बंध कहते हैं।

पुण्य तथा पाप प्रकृतियां—

२५—सातावेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम और शुभ गोत्र यह पुण्य रूप प्रकृतियां हैं।

२६—इन प्रकृतियों से बाकी बची हुई कर्मप्रकृतियां पाप रूप अशुभ हैं।

नवम अध्याय

संवर का लक्षण—

१—आस्रव के रोकने को संवर कहते हैं।

संवर के कारण—

२—वह संवर तीन गुप्तियों पांच समितियों, दश धर्म के पालन करने, बारह अनुप्रेक्षाओं के चितवन, बाईस परीषहों के जीतने और पांच प्रकार के चारित्र के पालने से होता है।

निर्जरा के कारण—

३—बारह प्रकार के तप करने से निर्जरा और संवर दोनों होते हैं।

तीन गुप्तियां—

४—भले प्रकार मन, वचन, और काय की यथेष्ट प्रवृत्ति को रोकना सो गुप्ति हैं।

पांच समितियां—

५—ईर्या, भाषा, एषणा, आदान निक्षेप और उत्सर्ग यह पांच समितियां हैं।

दश धर्म—

६—उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य,

उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग (दान), उत्तम आकिंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य यह दश प्रकार के धर्म हैं ।

बारह भावनाएं—

७—अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्मस्वाख्यातत्व इनका बारम्बार चिन्तवन करना सो अनुप्रेक्षा हैं ।

बाईस परीषय जय—

८—रत्नत्रय रूप मार्ग से च्युत न होने और कर्मों की निर्जरा के लिये परीसह सहनी चाहिये ।

९—१ क्षुधा, २ तृषा, ३ शीत, ४ उष्ण, ५ दंशमशक, ६ नाग्न्य, ७ अरति, ८ स्त्री, ९ चर्या, १० निषद्या, ११ शय्या, १२ आक्रोश, १३ बध, १४ याचना, १५ अलाभ, १६ रोग, १७ तृणस्पर्श, १८ मल, १९ सत्कारपुरस्कार, २० प्रज्ञा, २१ अज्ञान और अदर्शन यह बाईस परीषह हैं।

१०—सूक्ष्म सांपराय नामक दशवें गुणस्थान वालों के तथा छद्मस्थवीतराग अर्थात् उपशांत कषाय नामक ग्यारहवें और क्षीणकषाय नामक बारहवें गुणस्थान वालों के चौदह परीषह होती हैं ।

११—तेरहवें गुणस्थानवर्ती जिन अर्थात् केवली भगवान के ग्यारह परीषह होती हैं।

१२—स्थूल कषाय वाले अर्थात् छटे, सातवें, आठवें और नौवें गुणस्थान वालों के सब परीषह होती हैं ।

१३—प्रज्ञा और अज्ञान परीषह ज्ञानावरण कर्म के उदय होने पर होती हैं ।

१४—अदर्शन परीषह दर्शनमोह के उदय से और अलाभ परीषह अन्तराय कर्म के उदय से होती हैं ।

१५—नाग्न्य, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना और सत्कारपुरस्कार यह सात परीषह चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से होती हैं ।

१६—शेष [क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्य्या, शय्या, बध, रोग,

तृणस्पर्श और मल यह ग्यारह परीषह] वेदनीय कर्म के उदय से होती हैं।

१७—एक ही जीव में एक को आदि लेकर एक साथ उन्नीस परीषह तक विभाग करनी चाहियें।

पांच प्रकार का चारित्र

१८—सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात यह पांच प्रकार का चारित्र है।

बारह प्रकार के तपों का वर्णन -

१९—अनशन, अवमौर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्त शय्यासन और कायक्लेश यह छह प्रकार के बाह्य तप हैं।

२०—प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान यह छह अभ्यन्तर तप हैं।

२१—प्रायश्चित के नौ, विनय के चार, वैयावृत्य के दश, स्वाध्याय के पांच और व्युत्सर्ग के दो भेद हैं।

२२—आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तपः, छेद, परिहार और उपस्थापना यह प्रायश्चित के नौ भेद हैं।

२३—ज्ञानविनय, दर्शनविनय, चारित्रविनय और उपचार विनय यह चार विनय के भेद हैं।

२४—आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु और मनोज्ञ इन दश प्रकार के साधुओं की सेवा टहल करना सो दश प्रकार का वैयावृत्य है।

२५—वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेश यह स्वाध्याय के पांच भेद हैं।

२६—बाह्य उपधि और अभ्यन्तर आदि का त्याग करना सो दो प्रकार का व्युत्सर्ग तप है।

ध्यान का वर्णन--

२७—उत्तम संहनन वाले का अन्तर्मुहुर्त पर्यन्त एकाग्रचिन्तानिरोध करना ध्यान है।

२८—आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्म्यध्यान, और शुक्लध्यान यह चार प्रकार के ध्यान हैं।

२९—धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान मोक्ष के कारण हैं।

चार प्रकार के आर्त्तध्यान—

३०—अप्रिय पदार्थ का संयोग होने पर उसके दूर करने के लिये बारंबार चिन्तवन करना सो [अनिष्टसंयोगज नाम का प्रथम] आर्त्तध्यान है।

३१—प्रिय पदार्थ का वियोग होने पर उसको प्राप्ति के लिये बारंबार चिन्तवन करना [सो इष्टवियोगज नामका द्वितीय आर्त्तध्यान है।

३२—वेदना का बारंबार चिन्तवन करना [सो वेदना जनित तीसरा आर्त्त ध्यान है।]

३३—और आगामी विषय भोगादिक का निदान करना सो निदान नामका चौथा आर्त्तध्यान है।

३४—वह आर्त्तध्यान मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरत, देशविरत और छटें प्रमत्तसंयत गुणस्थान वालों के होता है।

चार प्रकार के रौद्रध्यान—

३५—हिंसा, अनृत, चोरी, और विषयों की रक्षा से रौद्रध्यान चार प्रकार का होता है। यह प्रथम पांच गुणस्थान वालों के होता है।

धर्म्यध्यान के चार भेद—

३६—आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थान विचय यह चार प्रकार का धर्म्यध्यान है।

चार प्रकार के शुक्ल ध्यान का वर्णन—

३७—आदि के दो शुक्ल ध्यान श्रुतकेवली के होते हैं, श्रुत केवली के धर्म्य-

ध्यान भी होते हैं ।

३८—बाद के दो शुक्ल ध्यान सयोगकेवली और अयोगकेवली के ही होते हैं।

३९—पृथक्त्ववितर्क एकत्ववितर्क, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरतक्रियानिवर्ति यह चार शुक्लध्यान के भेद हैं ।

४०—पृथक्त्ववितर्क तीनों योगों के धारक के, एकत्ववितर्क तीनों में से किसी एक योग वाले के, तीसरा सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति काययोग वालों के और व्युपरत क्रियानिवर्त्ति अयोगी केवली के ही होता है ।

४१—पहिले के दो ध्यान श्रुतकेवली के आश्रय होते हैं और वितर्क तथा विचार सहित होते हैं ।

४२—दूसरा शुक्लध्यान विचार रहित है।

४३—श्रुतज्ञान को वितर्क कहते हैं ।

४४—अर्थ, व्यञ्जन और योगों के पलटने को विचार कहते हैं ।

निर्जरा का परिमाण—

४५—सम्यग्दृष्टि, श्रावक, मुनी, अनंतानुबंधी का विसंयोजन करने वाला, दर्शनमोह को नष्ट करने वाला, चारित्रमोह को उपशम करने वाला, उपशांत मोह वाला, क्षपकश्रेणी चढ़ता हुआ, क्षीणमोही और जिनेन्द्र भगवान इन सब के क्रमसे असंख्यात गुणी निर्जरा होती है ।

मुनियों के भेद—

४६—पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रंथ और स्नातक यह पांच प्रकार के निर्ग्रंथ साधु हैं।

४७—संयम, श्रुत, प्रतिसेवना, तीर्थ, लिंग, लेश्या, उपपाद और स्थान इन आठ प्रकार से उन मुनियों के और भी भेद होते हैं ।

———:o:———

दशम अध्याय

केवल ज्ञान का उत्पत्ति क्रम—

१—मोहनीय कर्म के क्षय होने के पश्चात् [अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त क्षीणकषाय नाम का बारहवां गुण स्थान पाकर] फिर एक साथ ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मों का क्षय होने से केवल ज्ञान होता है।

मोक्ष प्राप्ति क्रम -

२—बंध के कारणों के अभाव और निर्जरा से समस्त कर्मों का अत्यन्त अभाव हो जाना सो मोक्ष है।

३—मुक्त जीव के औपशमिक आदि भावों और पारिणामिक भावों में से भव्यत्व भाव का भी अभाव हो जाता है।

४—केवल सम्यक्त्व, केवल ज्ञान, केवल दर्शन, और केवल सिद्धत्व इन चार भावों के सिवाय अन्य भावों का मुक्त जीव के अभाव है।

५—समस्त कर्मों के नष्ट हो जाने के पश्चात् मुक्त जीव लोक के अन्त भाग तक ऊपर को जाता है।

ऊर्ध्वगमन का कारण -

६-७—कुम्हार के द्वारा घुमाये हुये चाक के समान पूर्व प्रयोग से, दूर हुई मिट्टी के लेप वाली तुम्बी के समान असंग होने से, एरंड के बीज के समान बंध के नष्ट होने से और अग्नि शिखा के समान अपना निजी-स्वभाव होने से मुक्त जीव ऊपर को गमन करता है।

अलोक में न जाने कारण -

८—अलोकाकाश में धर्मास्तिकाय का अभाव होने से गमन नहीं होता है।

सिद्धों के भेद -

९—क्षेत्र, काल, गति, लिंग, तीर्थ, चारित्र, प्रत्येक बुद्ध बोधित, ज्ञान, अवगाहना, अन्तर, संख्या और अल्पबहुत्व इन बारह अनुयोगों से सिद्धों में भी भेद साधने चाहियें।

परिशिष्ट नं० ३

दिगम्बर और श्वेताम्बराम्नाय के सूत्र पाठों का भेद प्रदर्शक कोष्टक।

:०:

प्रथमोध्याय

सूत्राङ्क	दिगम्बराम्नायां सूत्रपाठः	सूत्राङ्क	श्वेताम्बराम्नायां सूत्रपाठः
१५	अवग्रहेहावायधारणा:	१५	अवग्रहेहापायधारणा:
×	×	२१	द्विविधोऽवधि:
२१	भवप्रत्ययोवधिर्देवनारकाणाम्	२२	भवप्रत्ययो नारकदेवानाम्
२२	क्षयोपशमनिमित्त: षड्विकल्प: शेषाणाम्	२३	यथोक्तनिमित्त:······ ··
२३	ऋजुविपुलमती मन:पर्यय:	२४	··· ··· * पर्याय:
२५	विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेष: ... विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमन: पर्यययो:	२६	·· ··· पर्याययो:
२८	तदनन्तभागे मन:पर्ययस्य	२९	·· ··· पर्यायस्य
३३	नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवम्भूता नया:	३४	··· सूत्रशब्दा नया:
×	×	३५	आद्यशब्दौ द्वित्रिभेदौ

द्वितीयोऽध्याय

सूत्राङ्क	दिगम्बराम्नायां सूत्रपाठः	सूत्राङ्क	श्वेताम्बराम्नायां सूत्रपाठः
५	ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदा: सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च	५	········ दर्शनदानादिलब्धय: ···
७	जीवभव्याभव्यत्वानि च	७	भव्यत्वादीनि च

* भाष्य के सूत्रों में सर्वत्र मन: पर्यय के बदले मन:पर्याय पाठ है।

सूत्राङ्क	दिगम्बराम्नायी सूत्रपाठः	सूत्राङ्क	श्वेताम्बराम्नायी सूत्रपाठः
१३	पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः	१३	पृथिव्यम्बुवनस्पतयः स्थावराः
१४	द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः	१४	तेजोवायू द्वीन्द्रियादयश्च त्रसाः
× × ×		१९	उपयोगः स्पर्शादिषु
२०	स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तदर्थाः	२१	········ शब्दास्तेषामर्थाः
२२	वनस्पत्यन्तानामेकम्	२३	वाय्वन्तानामेकम्
२९	एकसमयाऽविग्रहा	३०	एकसमयाऽविग्रहः
३०	एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः	३१	एक द्वौ वानाहारकः
३१	सम्मूर्छनगर्भोपपादा जन्मः	३२	सम्मूर्च्छनगर्भोपपाता जन्मः
३३	जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः	३४	जराय्वण्डपोतजानां गर्भः
३४	देवनारकाणामुपपादः	३५	नारकदेवानामुपपातः
३७	परं परं सूक्ष्मम्	३८	तेषां परं परं सूक्ष्मम्
४०	अप्रतीघाते	४१	अप्रतिघाते
४३	तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना चतुर्भ्यः	४४	. . . कस्याऽऽचतुर्भ्यः
४६	औपपादिकं वैक्रियिकम्	४७	वैक्रियमौपपातिकम्
४८	तैजसमपि		× × ×
४९	शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव	४९	. . . चतुर्दशपूर्वधरस्यैव
			× × ×
५२	शेषास्त्रिवेदाः		
५३	औपपादिकचरमोत्तमदेहाः सङ्ख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः	५२	औपपातिकचरमदेहोत्तमपुरुषासङ्ख्येय···

तृतीयोऽध्यायः

१	रत्नशर्कराबालुकापङ्कधूमतमोमहातमः प्रभाभूमयो घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः	१	. सप्ताधोऽधःपृथुतराः

सूत्राङ्क	दिगम्बराम्नायी सूत्रपाठ:	सूत्राङ्क	श्वेताम्बराम्नायी सूत्रपाठ:
२	तासु त्रिंशत्पञ्चविंशतिपञ्चदशदशत्रिपञ्चोनैकनरकशतसहस्राणि पञ्च चैव यथाक्रमम्	२	तासु नरका:
३	नारका नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रिया:	३	नित्याशुभतरलेश्या: . . . .
७	जम्बूद्वीपलवणोदादय: शुभनामानो द्वीपसमुद्रा:	७	जम्बूद्वीपलवणादय: शुभनामानो द्वीपसमुद्रा: ।
१०	भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षा: क्षेत्राणि	१०	तत्र भरत .
१२	हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममया:	×	×
१३	मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्तारा:	×	×
१४	पद्ममहापद्मतिगिञ्छकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि	×	×
१५	प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्धविष्कम्भो ह्रद:	×	×
१६	दशयोजनावगाह:	×	×
१७	तन्मध्ये योजनं पुष्करम्	×	×
१८	तद्द्विगुणद्विगुणा ह्रदा: पुष्कराणि च	×	×
१९	तन्निवासिन्यो देव्य: श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्य: पल्योपमस्थितय: ससामानिकपरिषत्का:	×	×
२०	गङ्गासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकान्तासीतासीतोदानारीनरकान्तासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदा: सरितस्तन्मध्यगा:	×	×

सूत्राङ्क	दिगम्बराम्नायी सूत्रपाठः	सूत्राङ्क	श्वेताम्बराम्नायी सूत्रपाठः
२१	द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः	×	×
२२	शेषास्त्वपरगाः	×	×
२३	चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृत्ता गङ्गासिन्ध्वादयो नद्यः	×	×
२४	भरतः षड्विंशतिपञ्चयोजनशतविस्तारः षट् चैकोनविंशतिभागा योजनस्य	×	×
२५	तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षाविदेहान्ताः	×	×
२६	उत्तरा दक्षिणतुल्याः	×	×
२७	भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्	×	×
२८	ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः	×	×
२९	एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवकाः	×	×
३०	तथोत्तराः	×	×
३१	विदेहेषु सङ्ख्येयकालाः	×	×
३२	भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः	×	×
३८	नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते	१७	... परापरे ..
३९	तिर्यग्योनिजानाञ्च	१८	तिर्यग्योनीनाञ्च

चतुर्थोऽध्यायः

सूत्राङ्क	दिगम्बराम्नायी सूत्रपाठः	सूत्राङ्क	श्वेताम्बराम्नायी सूत्रपाठः
२	आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः	३	तृतीयः पीतलेश्यः
×	×	७	पीतान्तलेश्याः
८	शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः	९	.... प्रवीचारा द्वयोर्द्वयोः
१२	ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च	१३	.. सूर्याश्चन्द्रमसो ..... प्रकीर्णतारकाश्च
१९	सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्टशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राण-	२०	सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोकलान्तकमहाशुक्रसहस्रारे ... .

सूत्राङ्क	दिगम्बराम्नायी सूत्रपाठः	सूत्राङ्क	श्वेताम्बराम्नायी सूत्रपाठः
	तयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु		... ...
	विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु		... ...
	सर्वार्थसिद्धौ च		... ...सर्वार्थसिद्धे च
२२	पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु	२३	... ... लेश्या हि विशेषेषु
२४	ब्रह्मलोकालया लौकान्तिकाः	२५	... .. लोकान्तिकाः
२५	सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च	२६	. ... व्याबाधमरुतः (अरिष्टाश्च), ४
२८	स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां	२९	स्थितिः
	सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्धहीनमिता	३०	भवनेषु दक्षिणार्धाधिपतीनां पल्योपममध्यर्धम्
	×	३१	शेषाणां पादोने
	× ×	३२	असुरेन्द्रयोः सागरोपममधिकं च
२९	सौधर्मैशानयोः सागरोपमेऽधिके	३३	सौधर्मादिषु यथाक्रमम्
		३४	सागरोपमे
		३५	अधिके च
३०	सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त	३६	सप्त सानत्कुमारे
३१	त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानि तु	३७	विशेषत्रिसप्तदशैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानि च
३३	अपरा पल्योपममधिकम्	३९	अपरा पल्योपममधिकं च
		४०	सागरोपमे
		४१	अधिके च
३९	परा पल्योपममधिकम्	४७	परा पल्योपमम्
४०	ज्योतिष्काणां च	४८	ज्योतिष्काणामधिकम्
		४९	ग्रहाणामेकम्
		५०	नक्षत्राणामर्धम्
		५१	तारकाणां चतुर्भागः

सूत्राङ्क	दिगम्बराम्नायी सूत्रपाठः	सूत्राङ्क	श्वेताम्बराम्नायी सूत्रपाठः
४१	तदष्टभागोऽपरा	५२	जघन्या त्वष्टभागः
	× ×	५३	चतुर्भागः शेषाणाम्
४२	लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम्		× ×

पञ्चमोऽध्याय

सूत्राङ्क	दिगम्बराम्नायी सूत्रपाठः	सूत्राङ्क	श्वेताम्बराम्नायी सूत्रपाठः
२	द्रव्याणि	२	द्रव्याणि जीवाश्च
३	जीवाश्च		×
८	असङ्ख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम्	७	असङ्ख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मयोः
	× ×	८	जीवस्य च
१६	प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत्	१६	.. विसर्गाभ्यां .
२६	भेदसङ्घातेभ्य उत्पद्यन्ते	२६	संघातभेदेभ्य उत्पद्यन्ते
२९	सद्द्रव्यलक्षणम्		× ×
३७	बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च	३६	बन्धे समाधिकौ पारिणामिकौ
३९	कालश्च	३८	कालश्चेत्येके
	× ×	४२	अनादिरादिमांश्च
	× ×	४३	रूपिष्वादिमान्
	× ×	४४	योगोपयोगौ जीवेषु

षष्ठोऽध्याय

सूत्राङ्क	दिगम्बराम्नायी सूत्रपाठः	सूत्राङ्क	श्वेताम्बराम्नायी सूत्रपाठः
३	शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य	३	शुभः पुण्यस्य
		४	अशुभः पापस्य
५	इन्द्रियकषायाव्रतक्रियाः पञ्चचतुःपञ्चपञ्चविंशतिसंख्या पूर्वस्य भेदाः	६	अव्रतकषायेन्द्रियक्रिया .
६	तीव्रमन्दज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः	७	भाववीर्याधिकरणविशेषे— ...
१७	अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य	१८	अल्पारम्भपरिग्रहत्वं स्वभावमार्दवं च मानुषस्य

सूत्राङ्क	दिगम्बराम्नायी सूत्रपाठः	सूत्राङ्क	श्वेताम्बराम्नायी सूत्रपाठः
१८	स्वभावमार्दवं च	×	×
२१	सम्यक्त्वं च	×	×
२३	तद्विपरीतं शुभस्य	२२	विपरीतं शुभस्य
२४	दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता शील-व्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोग-संवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधु-समाधिर्वैयावृत्त्यकरणमर्हदाचार्य-बहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यका-परिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रवचन-वत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य	२३	... ... ऽभीक्ष्णं ... सङ्घसाधुसमाधिवैयावृत्यकरण ... ... तीर्थकृत्वस्य

सप्तमोऽध्यायः

सूत्राङ्क	दिगम्बराम्नायी सूत्रपाठः	सूत्राङ्क	श्वेताम्बराम्नायी सूत्रपाठः
४	वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पञ्च	×	×
५	क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पञ्च	×	×
६	शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माविसंवादाः पञ्च	×	×
७	स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पञ्च	×	×
८	मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च	×	×
९	हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम्	४	हिंसादिष्विहामुत्र चापायावद्यदर्शनम्
१२	जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम्	७	जगत्कायस्वभावौ च संवेगवैराग्यार्थम्

सूत्राङ्क	दिगम्बराम्नायी सूत्रपाठः	सूत्राङ्क	श्वेताम्बराम्नायी सूत्रपाठः
२८	परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीता परिगृहीतागमनानङ्गक्रीडाकामतीव्राभिनिवेशाः	२३	परविवाहकरणेत्वरपरिगृहीता ... ...
३२	कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि	२७	कन्दर्पकौकुच्य .. ... णोपभोगाधिकत्वानि
३४	अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि	२९	... . संस्तारो . .. नुपस्थापनानि
३७	जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबंधनिदानानि	३२	. .. निदानकरणानि

अष्टमोऽध्यायः

सूत्राङ्क	दिगम्बराम्नायी सूत्रपाठः	सूत्राङ्क	श्वेताम्बराम्नायी सूत्रपाठः
२	सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बन्धः	२	. ... पुद्गलानादत्ते
×	×	३	स बन्धः
४	आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाः	५	. . मोहनीयायुष्कनाम
६	मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानाम्	७	मत्यादीनाम्
७	चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च	८	.. .. स्त्यानगृद्धिवेदनीयानि च
९	दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायाकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडशभेदाः सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयान्यकषायकषायौ हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुन्नपुंसकवेदा अनन्तानुबन्ध्यप्रत्या-	१०	... मोहनीयकषायनोकषाय ... .. द्विषोडशनव ... ... तदुभयानि कषायनोकषायावनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमाया-

सूत्रांक	दिगम्बराम्नायी सूत्रपाठः	सूत्रांक	श्वेताम्बराम्नायी सूत्रपाठः
	ख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाः		लोभाः हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुन्नपुंसकवेदाः
१३	दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम्	१४	दानादीनाम्
१६	विंशतिर्नामगोत्रयोः	१७	नामगोत्रयोर्विंशतिः
१७	त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः	१८	... ... युष्कस्य
१९	शेषाणामन्तर्मुहूर्ता	२१	... ... मुहूर्तम्
२४	नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः	२५	... . क्षेत्रावगाहस्थिताः .. ...
२५	सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम्	२६	सद्वेद्यसम्यक्त्वहास्यरतिपुरुषवेदशुभायु
२६	अतोऽन्यत्पापम्		×

नवमोऽध्यायः

सूत्रांक	दिगम्बराम्नायी सूत्रपाठः	सूत्रांक	श्वेताम्बराम्नायी सूत्रपाठः
६	उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः	६	उत्तमः क्षमा ... .
१७	एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नेकान्नविंशति	१७	.. .. विंशतेः
१८	सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्परायययथाख्यातमिति चारित्रम्	१८	.. छेदोपस्थाप्य ... .. यथाख्यातानि चारित्रम्
२२	आलोचनप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपश्छेदपरिहारोपस्थापनाः	२२	... ... स्थापनानि
२७	उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तमुहूर्तात्	२७	... .. निरोधो ध्यानम्
	×	२८	आमुहूर्तात्
३०	आर्तममनोज्ञस्य सम्प्रयोगे त	३१	आर्तममनोज्ञानां ...

सूत्रांक	दिगम्बराम्नाया सूत्रपाठः	सूत्रांक	श्वेताम्बराम्नाया सूत्रपाठः
	द्विप्रयोगायस्मृतिसमन्वाहार		... ..
३१	विपरीतं मनोज्ञस्य	३३	विपरीतंमनोज्ञानाम्
३६	आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यम्	३७	... ... धर्ममप्रमत्तसंयतस्य
	× ×	३८	उपशान्तक्षीणकषाययोश्च
३७	शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः	३९	शुक्ले चाद्ये
४०	त्र्येकयोगकाययोगायोगानाम्	४२	तत्र्येककाययोगायोगानाम्
४१	एकाश्रये सवितर्कविचारे पूर्वे	४३	. . सवितर्के !

दशमोऽध्यायः

सूत्रांक	दिगम्बराम्नाया सूत्रपाठः	सूत्रांक	श्वेताम्बराम्नाया सूत्रपाठः
२	बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः	२	बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां
	× ×	३	कृत्स्नकर्मक्षयो मोक्षः
३	औपशमिकादिभव्यत्वानां च	४	औपशमिकादिभव्यत्वाभावाच्चान्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः
४	अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः		× ×
६	पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद्बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च	६	. परिणामाच्च तद्गतिः
७	आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्च		×
८	धर्मास्तिकायाभावात्		× ×